हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिन्दी दलित उपन्यासों में

THE SEARCH OF IDENTITY OF THE MARGINALIZED PEOPLE AS DEPICTED IN THE DALIT NOVELS OF HINDI

शोध प्रबंन्ध

(Thesis)

कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ़ फिलोसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

Thesis is submitted to the University of Calicut for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक:
डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता:
सुनन्दा ए.एम.
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

Supervising Teacher
Dr. **Pramod Kovvaprath**
Professor and Head

Submitted by
Sunantha A.M.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF CALICUT
2017

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis entitled **"THE SEARCH OF IDENTITY OF THE MARGINALIZED PEOPLE AS DEPICTED IN THE DALIT NOVELS OF HINDI"** is a bonafide record of research work carried out by **Smt. Sunantha A.M.,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any other University.

Cu campus
Date

Dr. Pramod Kovvaprath
(Research Guide)
Professor and Head
Department of Hindi
University of Calicut

DECLARATION

I, Sunantha A.M., do hereby declare that this Thesis entitled **"THE SEARCH OF IDENTITY OF THE MARGINALIZED PEOPLE AS DEPICTED IN THE DALIT NOVELS OF HINDI"** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis the for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar Title or Recognition.

This research work was supervised by **Dr. Pramod Kovvaprath** Professor and Head, Department of Hindi, University of Calicut.

Sunantha A.M
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

विषय सूची

पहला अध्याय

अस्मिता,हाशियेकृत और दलित साहित्य - एक परिचय 1-54

1.1. हाशियेकरण या पार्श्वीकरण

1.1.1. पार्श्वीकरण के स्तर

1.1.2. हाशियेकृत वर्ग

1.1.2.1. आदिवासी

1.1.2.2. स्त्री

1.1.2.2.1. नारी दासता की कहानी

1.1.2.2.2. भारतीय संस्कृति में स्त्री

1.1.2.2.3. दलित महिलाएँ

1.1.2.3. दलित

1.1.2.3.1. दलित शब्द का अर्थ

1.1.2.3.2. दलित जाति - एक परिचय

1.1.2.3.3 दलित जातियाँ और सामाजिक सोच

1.2. अस्मिता

1.2.1. अस्मिता का अर्थ

1.2.2. हाशियेकृतों की अस्मिता

1.2.3. जोतिबा फुले - दलित अस्मिता का सूत्रधार

1.2.4. अंबेडकर - दलित अस्मिता के उन्नायक

1.2.4.1. अंबेडकर दर्शन

1.2.5. दलित आंदोलन - अस्मिता का संघर्ष

1.3. दलित साहित्य

1.3.1. दलित साहित्य - गैर दलित साहित्य

1.3.2. दलित साहित्य का उद्देश्य

1.4. निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

हिन्दी दलित साहित्य का संक्षिप्त इतिहास 55-120

2.1. दलित उपन्यास

2.1.1. मानस की परख

2.1.2. बंधन मुक्त

2.1.3. अमर ज्योति

2.1.4. पहला खत

2.1.5. करुणा

2.1.6. छप्पर

2.1.7. मिट्टी की सौगंध

2.1.8. जस तस भई सवेर

2.1.9. मिस रमिया

2.1.10. थमेगा नहीं विद्रोह

2.1.11. उधर के लोग

2.1.12. मुक्ति पर्व

2.1.13. डंक

2.1.14. सुअरदान

2.1.15. आज बाज़ार बंद है

2.1.16. ज़ख्म हमारे

2.1.17. नीला आकाश

2.1.18. तुम्हें बदलना ही होगा

2.2. दलित आत्मकथा

2.2.1. अपने अपने पिंजरे

2.2.2. जूठन

2.2.3. तिरस्कृत

2.2.4. संतप्त

2.2.5. मेरा बचपन मेरे कंधों पर

2.2.6. नागफणी

2.2.7. झोंपडी से राजभवन तक

2.2.8. मुर्दहिया

2.2.9. दोहरा अभिशाप

2.2.10. शिकंजे का दर्द

2.3. दलित कविता

2.4. दलित कहानी

2.5. दलित नाटक

2.6. दलित एकांकी

2.7. दलित जीवनी

2.8. दलित आलोचना

2.9. दलित पत्रकारिता

2.10. निष्कर्ष

तीसरा अध्याय - हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में (सन् 2010 तक) 121 - 223

3.1. छप्पर

3.1.1. शिक्षा

3.1.2. जागृति

3.1.3. संगठन

3.1.4. दृढ़ता

3.1.5. आत्मसम्मान

3.1.6. सत्चरित्र का समर्थन

3.1.7. आंदोलन

3.1.8. सवर्णों का सहयोग

3.1.9. मानवता

3.2. मिट्टी की सौगंध

3.2.1. नारी अस्मिता

3.2.2. आत्मविश्वास

3.2.3. संगठन

3.2.4. मानवता

3.2.5. अंतर्जातीय विवाह

3.3. जस तस भई सवेर

3.3.1. अंधविश्वास का विरोध

3.3.2. जागृति

3.3.3. सवर्ण राजनीति का पर्दाफाश

3.3.4. शिक्षा

3.3.5. आत्मविश्वास

3.3.6. आरक्षण का समर्थन

3.3.7. निर्धनता के कुचक्र को तोडना

3.3.8. नारी अस्मिता

3.3.9. शोषण का विरोध

3.3.10. अंतर्जातीय विवाह

3.4. मिस रमिया

3.4.1. जागृति

3.4.2. शिक्षा

3.4.3. सवर्ण दंभ पर प्रहार

3.4.4. अत्याचार का विरोध

3.4.5. नारी अस्मिता

3.4.6. मौन विद्रोह

3.4.7. संयम

3.4.8. संघर्ष

3.4.9. संगठन

3.5. उधर के लोग

3.5.1. जागृति

3.5.2. शिक्षा

3.5.3. पुश्तैनी धंधों का विरोध

3.5.4. संगठन

3.5.5. अंतर्जातीय झगडों से मुक्ति

3.5.6. नारी अस्मिता

3.5.7. नयी सोच

3.6. थमेगा नहीं विद्रोह

3.6.1. जागृति

3.6.2. गाँधीवाद पर प्रहार

3.6.3. संघर्ष

3.6.4. पुनर्जन्म का विरोध

3.6.5. एकल विरोध

3.6.6. संगठन

3.6.7. आत्मसम्मान की भावना

3.6.8. धर्मांतरण

3.6.9. मौन विद्रोह

3.6.10. नारी अस्मिता

3.6.11. पुरुष वर्चस्ववाद पर प्रहार

3.6.12. संस्कृति के झूठे पहलुओं पर प्रहार

3.6.13. अंबेडकर विचारधारा का प्रचार

3.7. आज बाज़ार बन्द है

3.7.1. धार्मिक व्यवस्था का विरोध

3.7.2. जागृति

3.7.3. आत्मविश्वास

3.7.4. पुरुषों का समर्थन

3.7.5. संघर्ष

3.7.6. नारी शोषण का विरोध

3.7.7. निर्भीकता का साथ लेना

3.7.8. वेश्यावृत्ति छोडना

3.7.9. शोषण का विरोध

3.7.10. संगठन

3.7.11. आंदोलन

3.8. सुअरदान

3.8.1 शोषण का विरोध

3.8.2. कानूनी जानकारी प्राप्त करना

3.8.3. शिक्षा

3.8.4. सामाजिक तत्वों की पुनर्व्याख्या
3.8.5. मानसिकता में परिवर्तन
3.8.6. धर्मांधता से मुक्ति
3.8.7. मिथकों का विरोध
3.8.8. नयी जाति
3.8.9. आर्थिक स्वावलंबन
3.8.10. मानवता
3.8.11. नयी सोच
3.8.12. नारी अस्मिता
3.8.13. जातिवाद का विरोध
3.8.14. गाँवोन्मुखता
3.8.15. संगठन
3.8.16. अंतर्जातीय विवाह
3.8.17. सवर्ण - अवर्ण संयोग
3.8.18. आत्मविश्वास
3.9. निष्कर्ष

चौथा अध्याय - **हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में (सन् 2010 के बाद)** **224 - 305**

4.1. डंक

4.1.1. दासता का विरोध

4.1.2 जागृति

4.1.3. काम का विरोध

4.1.4. नारी अस्मिता

4.1.5. शिक्षा

4.1.6. संघर्ष

4.1.7. शोषण का विरोध

4.1.8. नारी अस्मिता

4.2. मुक्तिपर्व

4.2.1. जागृति

4.2.2. तिरस्कारों का तिरस्कार

4.2.3. गुलामी का विरोध

4.2.4. रीति रिवाज़ों का विरोध

4.2.5. शिक्षा

4.2.6. संघर्ष

4.2.7. अंबेडकर के प्रति श्रद्धा

4.2.8. आरक्षण का अस्वीकार

4.2.9. सवर्णों का योगदान

4.3. ज़ख्म हमारे

4.3.1. दलित-मुसलमान एकता

4.3.2. अंबेडकर के प्रति श्रद्धा

4.3.3. नारी अस्मिता

4.3.4. मानवता

4.3.5. सवर्ण राजनीति पर प्रहार

4.3.6. बौद्ध धर्म की स्वीकृति

4.3.7. शोषण का विरोध

4.3.8. षड्यंत्र का विरोध

4.3.9. संगठन

4.3.10. संघर्ष

4.3.11. धर्मांतरण

4.4. नीला आकाश

4.4.1. जागृति

4.4.2. शिक्षा

4.4.3. जातीयता का विरोध

4.4.4. लक्ष्य केलिए कठिन परिश्रम

4.4.5. हिंदुत्व बोध से मुक्ति

4.4.6. परिवार नियोजन

4.4.7. संगठन

4.4.8. नारी अस्मिता

4.4.9. अस्पृश्यता का विरोध

4.4.10. आत्मविश्वास

4.4.11. काम को जाति से मुक्त करना

4.4.12. अंबेडकर के प्रति श्रद्धा

4.4.13. बौद्ध धर्म के प्रति लगाव

4.4.14. अंतर्जातीय विवाह

4.4.15. नये रिवाज़ और नया समाज

4.5. तुम्हें बदलना ही होगा

4.5.1. जागृति

4.5.2. दलित नाम पर गर्व महसूस करना

4.5.3. संयम

4.5.4. कामयाब दलितों का सहारा

4.5.5. नारी अस्मिता

4.5.6. मिथकों का विरोध

4.5.7. सवर्ण मानसिकता का विरोध

4.5.8. शिक्षा

4.5.9. संघर्ष

4.5.10. योग्यताओं को बढावा देना

4.5.11. आत्मसम्मान की भावना

4.5.12. नारी अस्मिता का नया रास्ता

4.5.13. बालश्रम का विरोध

4.5.14. संगठन

4.5.15. निकम्मे दलित युवाओं को सक्रिय बनाना

4.5.16. अधिकारियों से अपनी जरूरतों की माँग करना

4.5.17. अंतर्जातीय विवाह

4.6. निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय - दलित उपन्यासः भाषा शैली **306 - 361**

5.1. दलित उपन्यास की भाषा

5.1.1. संकेत भाषा

5.1.2. बिंबात्मक भाषा

5.1.3. प्रतीकात्मक भाषा

5.1.4. सहज भाषा

5.1.5. आक्रात्मक भाषा

5.1.6. अकृत्रिम भाषा

5.1.7. लोक भाषा

5.1.8. व्यंग्यात्मक भाषा

5.1.9. मुहावरेदार भाषा

5.1.10. काव्यात्मक भाषा

5.1.11. मिथकीय भाषा

5.2. दलित उपन्यास की शैलियाँ

5.2.1. वर्णनात्मक शैली

5.2.2. विश्लेषणात्मक शैली

5.2.3. फ्लाशबॉक शैली

5.2.4. लाक्षणिक शैली

5.2.5. चेतना प्रवाहशैली

5.2.6. आत्मकथात्मक शैली

5.3. निष्कर्ष

छठा अध्याय - उपसंहार 362 - 374

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्राक्कथन

दलित साहित्य शोषण,दमन और उत्पीडन से मुक्ति का साहित्य है। दलित साहित्य दलितों द्वारा दलितों केलिए लिखा गया साहित्य नहीं ,हाशियेकृतों केलिए लिखा गया साहित्य है। इसमें दलितों की वेदनाएँ और मुक्ति की कामनाएँ हैं। साथ ही साथ नारी और हाशियेकृतों की मुक्ति की आशाएँ भी हैं।

हाशियेकृत का अर्थ है समाज की मुख्यधारा से अलग रखे गये लोग।जिनके होना या न होना समाज की मुख्यधारा केलिए कोई विशेष बात नहीं है। वे मुख्यधारा के निर्णयों को बिना कुछ कहे सहन केलिए मजबूर लोग हैं। विशाल अर्थ में इसके अन्तर्गत दलित ,नारी ,हिजडा, अल्पसंख्यक, मजदूर, आदिवासी ,गरीब किसान सब आते हैं । लेकिन ' हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में ' नामक इस शोध अध्ययन में ऐतिहासिक काल से लेकर सामाजिक ,धार्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से दलित माने गये लोगों को ही लिया है। इस दृष्टि से भारत में तीन लोग ही हाशियेकृत वर्ग के हैं- दलित , नारी और आदिवासी। ये पुराने ज़माने से लेकर आधुनिक ज़माने तक हाशियेकृत रहे हैं। उनके जीवन स्तर पर परिवर्तन तो बहुत आया है। लेकिन उन्हें देखनेवाली दृष्टि में कोई खास परिवर्तन अभी तक नहीं आये हैं। इनके हाथों से समानता का अधिकार बलपूर्वक छीनकर उन्हें मानवता से वंचित कर दिया गया है। ये सामाजिक परिस्थितियों के कारण हाशियेकृत नहीं हैं । सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वनिर्धारित योजना के कारण हाशियेकृत हुए हैं।ये राजनीतिक षड्यंत्र के गुलाम हैं।

मुक्ति का सपना हर मनुष्य देखता है ।किन्तु भारत के हाशियेकृतों में 75 प्रतिशत लोग मुक्ति के विमर्श से अनजान हैं । दलितों में अस्मिता का बोध जगाना ही हिंदी दलित उपन्यासों का लक्ष्य है। खासकर हिंदी दलित उपन्यासों में नारी और दलितों की अस्मिता के संघर्ष पर विचार किया है।

दलित लोगों में ,दलन किये गये लोगों के शाब्दिक अर्थ से बढकर संस्कृति द्वारा दलन किये गये लोगों को लिया है । इसमें शूद्र वर्ग में आनेवाली सैकडों जनजातियों के लोग आते हैं । नारी सभी वर्गों और जातियों में है। दलित उपन्यासों में भारतीय परिवेश में नारी की स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है ।खास कर दलित नारी की। क्योंकि दलित नारी की वेदना ,पीडा तथा शोषण अन्य महिलाओं से भिन्न है। दलित स्त्री तिहरे शोषण का शिकार है। उनकी वेदना और मुक्ति की चेतना की आवश्यकता अन्य महिलाओं से अलग है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है - 'हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में'।अध्ययन की सुविधा केलिए इसे छह अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय है 'अस्मिता, हाशियेकृत और दलित साहित्य एक परिचय'।इसमें हाशियेकरण ,हाशियेकृत वर्ग और अस्मिता पर विचार किया गया है। इस अध्याय में दलित ,नारी और आदिवासी के हाशियेकृत होने की ऐतिहासिक कारणों पर प्रकाश डाला है ।हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश करने केलिए दलितों के बीच से आये ज्योतिबा फुले और अंबेडकर के योगदानों पर विचार किया है। अंबेडकर दर्शन और उसके मूल से उपजे दलित साहित्य के सिद्धांतों की चर्चा की गयी है।

दूसरा अध्याय है -'हिंदी दलित साहित्य एक सर्वेक्षण'।इसमें हिंदी दलित साहित्य का संक्षिप्त इतिहास और हिंदी दलित साहित्यकारों द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में रची रचनाओं का परिचय दिया है। बौद्ध रचनाओं से शुरू होनेवाले दलित साहित्य का आधुनिक काल प्रगति को शब्दों में बाँधने का प्रयास किया है। आत्मकथा, कहानी ,जीवनी, आलोचना , नाटक आदि के विकास और प्रमुख रचनाकारों का परिचय यहाँ दिया

है। दलित साहित्य के प्रहरी के समान काम करनेवाली दलित पत्र –पत्रिकाओं की चर्चा भी की है।

तीसरा अध्याय है - 'हाशिएकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में (सन् 2010 तक) '।इसमें दलित और नारी की अस्मिता की तलाश पर अध्ययन किया है। इसमें हिंदी के प्रमुख दलित उपन्यासकारों के बारह उपन्यासों को आधार बनाकर हाशियेकृतों की अस्मिता बोध के विभिन्न स्तरों को प्रस्तुत किया है। इसमें उनके सोच विचारों को गहराई में प्रस्तुत करने के साथ उसके आत्मसम्मान की अदम्य लालसा और अश्रांत परिश्रमों को भी दिखाया है।

चौथा अध्याय है - 'हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में (सन् 2010 के बाद)' ।इसमें इक्कीसवीं सदी में हाशियेकृतों के जीवन में आये परिवर्तन के साथ दलितों में आये अस्मिता बोध पर भी प्रकाश डाला है।

पाँचवाँ अध्याय है - ' हिंदी दलित उपन्यास - भाषा शैली ' ।इसमें हिंदी दलित उपन्यासों की भाषा और शिल्प पर प्रकाश डाला है । दलित उपन्यासकारों ने भाषा को अपने विचारों के आदान प्रदान केलिए इस्तेमाल किया है। उपन्यासों की शैली की विशेषता पर भी प्रकाश डाला है।

छठा अध्याय है उपसंहार। यह प्रस्तुत अध्ययन का सारांश है। यहाँ इस अध्ययन में उभरे मुख्य बिंदुओं को उजागर किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कालिकट विश्व विद्यालय के विभागाध्यक्ष आचार्य डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत के मार्ग निर्देशन में संपन्न हुआ है। जिनके योग्य निर्देशन से यह शोध सुगमता से पूरा हुआ है। विषय चयन से लेकर प्रस्तुतीकरण तक के विभिन्न पडाओं पर उनके सुझाव एवं पथप्रदर्शन बराबर प्राप्त हुए हैं। उनकी प्रेरणा एवं मार्गनिर्देशन केलिए मैं तहे दिल से

आभारी हूँ । इस शोध - प्रबंध को तैयार करने में मुझे हिंदी की प्रमुख दलित लेखिका डॉ. सुशीला टाकभौरे जी से बहुमूल्य सहायता मिली है । वे अपने अनमोल वचनों से मुझे प्रेरणा देती रहीं। उन्होंने अनुपलब्ध दलित उपन्यासों की प्रतियाँ मुझे भेजकर मेरे शोध - प्रबंध केलिए बहुत अधिक सहायता दी । हिंदी के प्रमुख दलित साहित्यकार रूपनारायण सोनकर ने अपने उपन्यासों और तत्संबधी रचनाओं को भेजकर मेरे शोध लेखन केलिए सहारा दिया है। हिदी दलित साहित्य के साहित्यकार दंपति दयानंद बटोही जी और कावेरी जी ने मेरी काफी सहायता की है। इन सभी लेखकों ने अपने बहुमूल्य समय मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन देने केलिए व्यतीत किया है। उनके प्रति मैं दिल से आभारी हूँ।

शोध प्रबंध को संपन्न करने केलिए कालिकट विश्व विद्यालय के हिंदी विभाग के सभी गुरुजनों ने अपने महत्वपूर्ण सुझावों से मुझे आशिर्वाद देते रहे हैं। उनके आशिर्वाद केलिए मैं तहे दिल से आभार प्रकट करती हूँ।

प्रस्तुत शोध - प्रबंधं को पूरा करने केलिए मेरे सभी दोस्तों और परिवारवालों ने मेरा साथ दिया है। उनके हर शब्द और मधुर वचन मेरे मानसिक संघर्ष को कम करने केलिए मदद दी है। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

सुनन्दा .ए .एम
शोध छात्रा

हिंदी विभाग
कालिकट विश्व विद्यालय

पहला अध्याय

अस्मिता ,हाशियेकृत और दलित साहित्य -एक परिचय

भारत विभिन्न संस्कार,धर्म,वेश-भूषा और भाषाओं का देश है। अन्तर सिर्फ यहाँ तक सीमित नहीं है बल्कि यहाँ के मानव के रूप, नक्शे,रंग तथा मानसिक स्तर में भी अन्तर है। एक ही देश में रहनेवाले लोगों में इतना अन्तर कैसे आ गया, यह हमें भारतीय संस्कृति की नींव पर ढूँढना पडेगा।सांस्कृतिक विविधता हमारा वैशिष्ट्य रहा है।हमारी महान परंपरा है।वेद ,उपनिषद,महाभारत तथा पौराणिक ग्रंथों में मूल्यों के अनेक बिंदु मिलते हैं।समय समय पर लोग इससे प्रेरित एवं प्रभावित रहे हैं।भारतीयों की अस्मिता पर सोचते समय हमारी संस्कृति ,विरासत ,इतिहास ,मिथकीय परंपरा,मूल्यबोध आदि महत्वपूर्ण रहे हैं।

भारतीय समाज की एक विशेषता यह रही है कि पहले यहाँ विभाजन कर्म के आधार पर रहा पर बाद में जन्म के आधार पर बना इससे उच्च जातिवालों को सारी सुविधाएँ प्राप्त हो गयी तो निम्न लोग हमेशा पीडित एवं शोषित रहे।वे आगे नहीं आ पा रहे हैं। अब ये मूक प्राणी पर्दे से बाहर आकर अपना मुँह खोलने लगे हैं।

हाशियेकृत वर्ग वह है जिसे मुख्य धारा से दूर रखा गया है।मानव होकर भी जिसे जानवरों से भी निकृष्ट माना गया है। जिसके ऊपर कुछ भी अत्याचार करने की मौन सहमति समाज में अलिखित नियम के रूप में कायम है। वैश्विक संदर्भ में नीग्रो और अश्वेत हाशियेकृत हैं तो भारतीय संदर्भ में दलित,नारी और आदिवासी हाशियेकृत हैं।

साहित्य संस्कृति का वाहक है। भारतीय साहित्य हिन्दू संस्कृति से अधिक प्रभावित होने के कारण वह समाज के कुछ विशेष समुदायों की मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है। भारतीय संस्कृति अब हिन्दू संस्कृति बन गयी है। इसलिए भारतीय संस्कृति के वाहक साहित्य में हिन्दू समाज के आचार - विचारों का स्तुतिगान करना, पुराणों के आधार पर बनाए गए मूल्यों और संप्रदायों के प्रति

आस्था दिखाना,उसी में ही समानता ढूँढ़ना आदि का आना स्वाभाविक है। इससे समाज के उच्च वर्ग के लोगों को ऐश-आराम की ज़िन्दगी का प्रावधान मिल रहा है। लेकिन इन्हीं के कारणों से भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से को समाज से दूर रखा गया है। इस हाशियेकृत समाज की कामनाओं, आचार- विचारों और जीवन- धाराओं हमारे साहित्य में कम स्थान दिया गया है। इन लोगों की वेदना,टीस, कसक आदि को सामने लाने केलिए हाशियेकृतों का साहित्य उभरकर आया। अमेरिका का नीग्रो साहित्य, आफ्रिका का अश्वेत साहित्य,भारतीय परिवेश में दलित साहित्य इस हाशियेकृतों के साहित्य के लिए उदाहरण हैं। इसका प्रेरणा -स्रोत दलित-दमित जातियों का जीवन क्षेत्र है।

1.1 हाशियेकरण या पार्श्वीकरण

पार्श्वीकरण एक सर्वव्यापी शब्द है। यह अंग्रेज़ी शब्द मार्जिनलाईसेशन का पर्यायवाची शब्द है। हिन्दी में इसके अलावा सीमान्तीकरण, उपान्तीकरण, मुख्यधारा से विस्थापित, हाशिये पर खडे हुए, किनारे पर खडे हुए आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलते हैं। पार्श्वीकरण ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप जाति, वर्ग, समूह या व्यक्ति विशेष को समाज के किनारे की ओर धकेल दिया जाता है। यह एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। जाति विशेष का पार्श्वीकरण, भाषा विशेष का पार्श्वीकरण आदि इसके उदाहरण हैं। पार्श्वीकरण का भीषण परिणाम यह है कि पार्श्वीकृतों के समुदाय , जाति ,सभ्यता - संस्कृति एवं भाषा को भारी क्षति पहूँचती है और कभी-कभी उनका उन्मूलन भी हो जाता है।

प्रत्येक युग में सामाजिक स्तरीकरण के नियम बदलते रहते हैं। इसके अनुसार कुछ वर्ग, समूह, जाति, लोग हाशिये पर पड जाते हैं। पार्श्वीकरण की सतत प्रक्रिया में कुछ जाति समूह केन्द्र से बहिष्कृत होकर हाशिये पर खडे हो जाते हैं।

पाश्र्वीकरण में दो बातें प्रमुख हैं - केन्द्र और सीमा। यह विभाजन रेखा जीवन के प्रलय प्रवाह में कभी भी उलट पुलट सकती है। कभी केन्द्रवर्ती पार्श्ववर्ती हो सकते हैं, कभी पार्श्ववर्ती केन्द्रवर्ती हो सकते हैं।

पाश्र्वीकृत व्यक्ति,समूह,जाति,वर्ग समाज सत्ता,नियम,सेवा, अधिकार आदि से बहिष्कृत या वंचित होकर किनारे पर रहने केलिए बाध्य हो जाते हैं। मुख्यधारा के लोग पाश्र्वीकृत लोगों की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य,भाषा आदि को भी समाज के अंग के रूप में स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होते। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या अन्य कई कारणों से पाश्र्वीकृत लोग सामग्रियों और अधिकारों से वंचित हो जाते हैं।

1.1.1. पाश्र्वीकरण के स्तर

पाश्र्वीकरण के तीन स्तर हो सकते हैं- व्यक्तिगत, सामूहिक और भूमंडलीय।अर्थ, राजनीति, वंशीयता और संस्कृति इसके महत्वपूर्ण आयाम हैं। आर्थिक पाश्र्वीकरण, आर्थिक पुनर्गठन, भूमंडलीकरण, प्रशासकीय आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप उभरनेवाली प्रतियोगिताओं पर बल देता है। राजनीतिक तौर पर पाश्र्वीकरण जातीय कमजोर लोगों को एक ओर धकेलकर ताकतवार और चालाक लोगों के नेतृत्व में आना है। वंशीय, धार्मिक और भाषापरक पेचीदगियों से उभर कर आयी तीव्र वंशीयता, राष्ट्रीय लक्ष्य और प्रशासनिक नीतियों का निर्णायात्मक बिन्दु बनते समय उसका प्रतिफलन पाश्र्वीकृत समूह के रूप में होता है। वर्तमान भूमंडलीकरण के परिदृश्य में अच्छाईयों को अपनाने तथा बुराईयों के प्रति प्रतिशोध की सृष्टि करने का प्रयास भी पाश्र्वीकरण की सृष्टि करती है। इसके परिणाम स्वरूप आदिवासी, दलित और स्त्रियाँ पाश्र्वीकृत हो गये हैं। लेकिन इन लोगों का पाश्र्वीकरण सदियों से पहले हो चुका है।

1.1.2 .हाशियेकृत वर्ग

हाशियेकृत शब्द का अर्थ है उपेक्षित या तिरस्कृत। समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत वर्ग को हशियेकृत वर्ग कहते हैं। पाश्र्वीकरण की प्रक्रिया कब शुरू हुई यह बताना कठिन है। पाश्र्वीकरण सत्ताधारियों या समाज की मुख्य धारा के लोगों द्वारा पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु बनायी जानेवाली नीतियों का अवांछित परिणाम है। मुख्यधारा समूहों या व्यक्तियों के द्वारा किसी व्यक्ति या समूह विशेष को साधन सामग्री और सेवा आदि की पहूँच में रोक लगाने से उस व्यक्ति या समाज का पाश्र्वीकरण हो जाता है। समूह के दूसरों के अधिकारों पर अतिक्रमण करने पर भी पाश्र्वीकरण होता है।

भारत में प्राचीनकाल से ही समाज के एक बडे भाग को हाशिये की ओर धकेलने का प्रयास होता आया है। उन किनारे पर किये गये लोग समय समय पर दास, दस्यु, राक्षस, असुर, अछूत, निषाद, पंचम, चंडाल, म्लेछ, हरिजन, दलित आदि नामों से पुकारे गये। इन्हें पाश्र्वीकृत बनाये रखने केलिए तरह तरह की व्यवस्थाएँ भी बनायी गयीं। इसे एक परंपरा बनाने केलिए जाति व्यवस्था का निर्माण किया और जनम से ही जाति नामक अफ़ीम खिलाने लगा। परंपरा तोडनेवालों को या उसके खिलाफ आवाज़ उठानेवालों को कडी से कडी सज़ा भी दी जाने लगी। यहाँ पाश्र्वीकृत बनाने की स्थिति एक प्रकार की जीवन स्थिति है। सामाजिक, आर्थिक,सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली ब्राहमणवादी विचारधारा के द्वारा दलितों, आदिवासियों और स्त्रियों का शोषण और पार्श्विकरण हुआ है।

दलित, आदिवासी और स्त्री को हाशियेकृत करके हमेशा पीछे की ओर धकेलने केलिए राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से शोषण तंत्र का निर्माण हुआ है। शोषण को स्थाई बनाने केलिए हाशियेकृत वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने नहीं

दिया।वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध सामाजिक सांस्कृतिक विरासत के अधिकारी होते हुए भी उसे प्रकट करने या विकास करने का अवसर उन्हें नहीं दिया। पार्श्वीकरण दलित, आदिवासी और नारी के आत्मसम्मान को पूरी तरह तोड़ दिया। हाशियेकृत वर्गों में अधिकांश लोग आज भी इस बात पर विश्वास करते है कि वे और उनकी संस्कृति हीन और घटिया है, और जो उन्हें मिल रहा है वही उस केलिए काफी है।

भारतीय समाज में पार्श्वीकरण का मुख्य कारण जाति व्यवस्था है और यह परंपरागत रूप से चली आ रही है। यह अब इतना रूढ हो गया है कि शिक्षित लोग भी इसके सशक्त समर्थक बन गये हैं। इसलिए यहाँ जाति पर आधारित या लिंग पर आधारित पार्श्वीकरण आज भी दिखाई देता है। यहाँ सैकडों जातियाँ पार्श्वीकृत हैं। कबूतरे, बावरिया,बनजारे, हाबूडे, पादरे,सँपरी,मदारी, नट, साँसी, कंजर आदि इनमें कुछ हैं। विश्व भर की स्त्रियाँ युग-युगों से किसी न किसी रूप में समाज और जीवन की ही मुख्य धारा से बहिष्कृत होकर किनारे पर रही हैं।

समय समय पर आनेवाले सत्ताधारी वर्ग के पक्षधर इतिहासकारों ने हाशियेकृतों के जीवन और संस्कृति की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। मुख्यधारा साहित्यकारों ने हाशियेकृतों पर कम ध्यान दिया। हाशियेकृतों में दलित और आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। इतिहासकारों ने उन्हें पियक्कड, चोर, झगड़ालू और अपराधी की तरह चित्रित किया। इस प्रकार भारत का साहित्य मुख्यधारा लोगों केलिए आरक्षित हो गया। हम ब्राह्मणवादी या वर्चस्ववादी बन गया। भारतीय साहित्य ने वही कहा जो ब्राह्मणों ने कहा। यह ब्राह्मण संस्कृति की सशक्त वाहिका बन गयी। वे दलितों की समृद्ध संस्कृति और जीवन मूल्यों को पहचानने में असमर्थ हुए। इस प्रकार साहित्य में भी इनका पार्श्वीकरण हुआ। साहित्य का केन्द्र ब्राह्मणवादी समाज ही रहा है। इसके पात्र, कथावस्तु ,सौंदर्यशास्त्र सब ब्राह्मण्यमय

था। ब्राहमणों की श्रेष्ठता और महानता को बनाए रखने के साधन के रूप में दलित पात्रों का इस्तेमाल किया जाता था।

सत्ताधारी वर्ग ने इन्हें नकारने केलिए साहित्य को एक सशक्त माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया। इतिहासकार और लेखकों ने दलितों के जीवन और संस्कृति की तरफ ध्यान नहीं दिया। मुख्य धारा के साहित्यकार दलितों को हीन माना। उन्होंने उन्हें निकृष्ट जीव के रूप में चित्रित किया। इस प्रकार समृद्ध जीवन मूल्यों और संस्कृति से संपन्न जनता को हीन बना दिया गया। उन्हें अपनी ही नज़र में गिरा कर ऐसा सोचने तक बाध्य किया कि उनकी अपनी संस्कृति,जो दुनिया के इने गिने नागरिक संस्कृतियों में एक है, हीन और घटिया है।

भारत की विशेषता पर बात करते हुए हमेशा कहा जाता है कि भारत में अनेकता में एकता है। यह सुनकर आत्मविभोर होनेवाले हम कभी भी इसके बारे में नहीं सोचते कि यह भिन्नता कैसे आ गयी। एक ही भू भाग की,एक ही नरवंश के मानव में एक द्विज के रूप में सम्मान का पात्र और दूसरा अपवित्र शूद्र के रूप में अपमान का पात्र किस प्रकार बन गया,यह विचारणीय बात है। पाश्चात्य उपनिवेश की बात करनेवाले हम कभी भी ईसा पूर्व सदी में हुए आर्यों के उपनिवश के बारे में नहीं कहते। आर्यों द्वारा बोयी गयी सामाजिक गुलामी के बारे में नहीं कहते, जिसमें आज हम भी घुट-घुट के जी रहे हैं। दलित साहित्य में आज इस पर ज्यादा खोज हो रहा है कि दलित कौन है, उनके पूर्वज कौन थे, उनकी आज की स्थिति कैसे निर्मित हुई।

सिन्धुघाटी के मोहन जदडो,हाडपा की खोज से यह साबित होता है कि भारत में आर्यों के आगमन से पहले ही एक सुव्यवस्थित नागरिक सभ्यता मौजूद थी। तब तक ऐसा माना जाता था कि आर्यों ने एक विकसित सभ्यता के साथ भारत में

अपना अधिकार जमाया था। अधिकांश विद्वानों के अनुसार भारत में आर्यों के आगमन से पहले (3500 ई.पू) आदिवासी या द्राविडों की एक बहुत ऊँची सभ्यता देश के पश्चिमोत्तर भाग में मौजूद थी। जिन्हें हम सिन्धु नागरिक संस्कृति कहते हैं। यह दुनिया के इने - गिने प्राचीन नागरिक संस्कृतियों में एक है।

भारत के आदिम मनुष्यों के बीच कोई वर्ग विभाजन नहीं था और न कोई राजतंत्रीय संस्थाएँ थी। वे कुल और गोत्रों में संगठित थे। ई.पूर्व 3500 से ईसा पूर्व 1500 तक वे यहाँ के एकमात्र अधिकारी बनकर रहे। ई.पूर्व 1500 में आर्यों का आगमन हुआ। आर्य और मूल निवासियों के बीच घोर संघर्ष हुआ। इसका उल्लेख देवासुर युद्ध के नाम से वेदों में मिलता है। आर्यों ने अग्नि और तलवार के बल पर इस विकसित सुव्यवस्थित सभ्यता को ध्वस्त कर दिया। इसके बहुत सारा वर्णन ऋग्वेद में मिलता है।

ऋग्वेद असल में तत्कालीन भारत का एक परिच्छेद है।इसमें जितनी भी कहानियाँ और घटनाएँ मिलती हैं वह सब आर्यों के उपनिवेश का प्रतीकात्मक चित्रण है।साथ ही साथ मूलनिवासियों की संस्कृति और सभ्यता का भी परिचय मिलता है।ई.पू बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में उत्तर पश्चिम भारत में जो लोग रहते थे उनके बारे में वेदों में कई उल्लेख मिलता है।भारत के मूल निवासी गोत्रों में विभक्त थे।वे काली त्वचा और चपडी नाकवाले थे।उनके नगर और किले सुचारू रूप से निर्मित थे।उनमें धनी व्यापारी भी थे जो सुसज्जित महलों में रहते थे।उनके पास उपजाऊ खेत थे।वे खेतीबारी,कटाई और बुनाई की कलाओं से परिचित थे।वे मिट्टी और ताँबे के बर्तन,चाँदी और सोने के गहने और हथियार बनाते थे और उनको इस्तेमाल करते थे।ऋग्वेद से पता चलता है कि मूलवासियों की संस्कृति आर्य संस्कृति से उच्च स्तर की थी।अनार्य किले बहुत मजबूत बनाते थे। उनके धार्मिक

विश्वास आर्यों से बिलकुल अलग थे, क्योंकि उनके देवता आर्यों के देवताओं के समान प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि नहीं थे।वे शिव,देवी माता,लिंग और पवित्र ऋषभ की पूजा करते थे।

सिन्धु नदी के तट पर सुखी शान्त वातावण में जी रहे मूल निवासी युद्ध शस्त्रास्त्र आर्यों के समान तेज नहीं थे। आर्यों के पास कवच और लोहे के शिरस्त्राण थे तथा अच्छे किस्म के घोड़े और रथ भी थे। भारत के मूल निवासी युद्ध तंत्र में आर्यों जैसा निपुण भी नहीं थे। साथ ही साथ लोहे के हथियार से भी वे अनजान थे। लोहे के हथियारों के सहारे एक साधारण नागरिक भी काँसे के युग के महाबली से लोहा लेने में अधिक समर्थ था। इन हथियारों के सहारे ही मामूली और पिछडे हुए लोग भी सभ्य राज्यों की सेनाओं को ललकार सकते थे। फिर भी उन्होंने अपने काँसे युगीन औजारों से लोहयुगीन औजारों का ऐसा सामना किया कि आर्यों को उत्तर भारत में पूरी तरह पर कब्जा करने केलिए दो बार घमासान आक्रमण करना पडा।

मूलवासियों को पूरी तरह परास्त करके भारत में अधिकार स्थापित करने केलिए आर्यों को सैकडों साल युद्ध करना पडा। उन्होंने स्थानीय जातियों को जीतकर अपनी संस्कृति का विकास किया। साथ ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक प्रारूप भी तैयार किया। इसके अनुसार समाज को प्रमुख रूप में चार वर्ण या जातियों विभक्त किया-ब्राहमण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र। पहले तीनों वर्गों में आर्यों को रखा और चौथे में अनार्यों को। शूद्र आर्यों द्वारा युद्ध में परास्त मूल निवासी हैं, जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार करने केलिए तैयार हुए। शूद्र भी दो तरह के हैं। शूद्र और अति शूद्र।

युद्ध में हारे कुछ मूलवासी आर्यों के धर्म और संस्कृति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्हें अपनी संस्कृति पर अडिंग विश्वास था। परिणाम स्वरूप आर्यों ने उन्हें गुलाम बनाकर गाँव से बहिष्कार किया। जो लोग आर्यों से डरकर उनका लोहा माना वे गाँव के अंतर ही रहे। ये है आज के शूद्र या पिछडी हुई जाति। आर्यों को जिन्होंने जितना विरोध किया आर्य उन्हें उतना ही निकृष्ट और बहिष्कृत बनाया। इन्हें ही आज हम दलित या अतिशूद्र तथा आदिवासी के रूप में देखते हैं। अतिशूद्रों को निकृष्ट बनाये रखने केलिए कठोर व्यवस्था का निर्माण भी किया। इसलिए आज भी दलित और आदिवासी भारतीय गाँवों के बाहर ही रह रहे हैं।

आर्यो के आगमन से उथल पुथल हुई भारत भूमि मनु महाराज के आविर्भाव से और भी विकृत हो गयी। आज भारतीय समाज में जो विभाजन दिखाई दे रहा है उसका प्रणेता मनु माने जाते हैं। हिन्दुओं के समस्त धार्मिक ग्रंथों की रीढ़ मनुस्मृति है। इसमें समाज में सबसे ऊँचा स्थान ब्राहमण को, उसके नीचे क्षत्रिय, फिर वैश्य सबसे निम्न शूद्र को दिया है। चातुर्वर्ण्य को एक व्यवस्थित और परिमार्जित रूप उन्होंने दिया। मनुस्मृति ने भारत की सामाजिक व्यवस्था को पूरी तरह बदल दिया।

उत्तरवैदिक काल में मनुसंहिता का प्रचार-प्रसार हुआ। मनु के आगमन से भारत के समाजिक सांस्कृतिक जीवन में आमूल चूल परिवर्तन आया। मनुसंहिता के आधार पर कर्म के सिद्धांत के स्थान पर जन्म के सिद्धांत को समाज ने अपना लिया। नालायक और अयोग्य ब्राहमण भी पूजनीय हो गये। सुयोग्य और विद्वान शूद्र भी नीच माने जाने लगे।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशेषता है। बाबु डॉ.दोड्डा भेष के शब्दों में- "मनु ने समाज को चार वर्णों में विभाजित करके आर्यों को अग्र स्थान में रखा है। स्थानीय लोगों के जो लोग आर्यों के साथ समझौता किया है

उनको शूद्र में रखा है। विशेष बात यह है कि जो लोग आर्यों के अधिकारों का विरोध किये थे,आर्यों के साथ युद्ध किये थे,जिन लोगों को आर्यों ने युद्ध में हरा कर गाँव से बहिष्कार किये थे वह दलित अछूत बन गया,इन लोगों को भी शूद्रों में स्थान दिया गया है लेकिन इनकी नीति आम शूद्रों की नाति से अलग है। अगर हम असाधारण भाषा में कहना चाहेंगे तो वह पंचम वर्ण है।"[1]

मनुस्मृति में सभी वर्णों के लोगों का कर्म भी निर्धारित किया गया था।ब्राह्मणों को षटकर्म पढना, पढाना,यज्ञ करना,कराना,दान देना और लेना बताया है। प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ कराना, विषयों में न पडना ये सब क्षत्रियों का काम है। पशुओं का पोषण करना, दान देना,यज्ञ कराना, पढना, व्यापार करना, ब्याज लेना वैश्यों का कर्म है। शूद्रों का कर्म निर्धारित करते हुए उन्होंने कहा कि प्रभू ने शूद्रों का एक ही कर्म बताया है,इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित सेवा करना। इस प्रकार उसे शिक्षा, कृषि, व्यापार आदि मानवीय अधिकारों से अलग रखा। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "भारतीय संस्कृति की रीढ मनुसंहिता यानी मनुस्मृति का विधान है। इस विधान के अनुसार व्यक्ति जाति से पहचाना जाता है, उसकी बुद्धि का कोई महत्व नहीं होता। इस विधान के तहत वैचारिक स्वतंत्रता नाम की कोई चीज़ नहीं है और मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों एवं भाग्य के अनुसार इस जन्म में जीता है। इस व्यवस्था में शूद्र सवर्ण की सेवा केलिए जन्मे हैं-अपने पिछले जन्म के पाप के कारण।"[2]

मनुस्मृति ने शूद्रों को शिक्षा प्राप्ति के सामान्य और मानवीय अधिकार से वंचित किया। मनुसंहिता ब्राह्मणवादी संहिता है। जो यह मानते हैं कि जाति मिट नहीं सकतीं, पेशगत ऊँच-नीच हमेशा रहेगा ही या उच्च जाति में रहनेवाला लोग ही ऊँचा रहेगा या रहना चाहिए। उनके अनुसार यही भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता या

विशेषता है। इसे थोपने या अमल करने केलिए कोशिश करनेवाले मनुष्यता, मनुष्य की बराबरी, भाईचारा आदि मूल्यों को स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। इससे सवर्ण जातियाँ अवर्णों पर अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपना आदेश थोपा। मनु ने अपने वर्ग को सुविधा संपन्न करने के लिए एक अधिकार विहीन, सम्मान रहित, अपने को हेय समझनेवाले संतुष्ट सेवक वर्ग खडा किया। इस सेवक वर्ग में दलित, स्त्री और आदिवासी आते हैं।

भारत की सामाजिक, राजनीतिक,धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के अनुसार स्त्री, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ हाशिएकृत वर्ग हैं। ये भारतीय नागरिक होते हुए भी सभी अधिकारों से वंचित है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि ये इंसान के दर्जे से भी वंचित हो गए है। शोषण भरी जिन्दगी की दास्तान इन लोगों के साथ जुडी हुई है।

1.1.2.1. आदिवासी

'आदिवासी' यह शब्द खुद ही भारत में उनके विरासत की पहचान देने केलिए काफी है। किसी देश या प्रान्त के निवासी जो बहुत पहले से ही वहाँ रहते आये हो उन्हें वहाँ के आदिवासी कहते हैं। आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ ही आदि से रहनेवाला है। अनुसूचित जनजातियाँ या आदिवासी जातियाँ वे हैं, जिन्होंने भारत भूमि में सबसे पहले अपना बसेरा बनाया। वे आधुनिक सभ्य समाज से दूर पर्वतीय अंचलों और मैदानी भागों में रहना पसंद करते हैं। वे अन्य लोगों की बस्तियों से अलग हटकर दूर रहते हैं।वे गैर जातियों से घुलना - मिलना नहीं चाहते। इनका अस्तित्व बहुत प्राचीन है। उनके लिए अपना अलग संस्कार, वेश-भूषा, भाषा, संगीत और रीति-रिवाज़ हैं।

भारत में आर्यों के आक्रमण के समय उनसे परास्त होकर जो अपनी संस्कृति की बचाव करते हुए जंगलों में रहने लगे, वही भारत के मूल निवासी बाद में आदिवासी कहलाये। आधुनिक भारत में उडीसा, बीहार, मध्यप्रदेश जैसे प्रदेशों में रहनेवाले ओरॉव, खरिया, पहाडिया, मुंडा और संथाली जनजातियाँ इनमें कुछ हैं। घोर जंगल में रहनेवाले आदिवासी आधुनिक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दायरे से बिलकुल अलग हैं। भारत भूभाग के स्वामी असल में नाटे, काले, दबी हुई नाकवाले ये गोत्रवासियाँ ही हैं। स्वच्छ, शान्ति प्रिय सभ्यतावाले उन मूलवासियों को पश्चिम एशिया पार करके आये बंजारे ग्राम संस्कृतिवाले आर्यों ने परास्त करके गुलाम बनाया। उनकी संस्कृति इस तरह तहस नहस कर दिया कि वे अपने अस्तित्व ही खो बैठे, और उसे हाशिये की ओर धकेल दिये गये।

रतनाकर भेंगरा और एस . आर विजय द्वारा लिखित 'आदिवासी किसे कहते हैं', 'उनकी सांस्कृतिक पहचान क्या है' नामक लेख में वे लिखते हैं " यह भी माना जाता है कि आर्यों को अतिक्रमण के समय आदिवासी पहले से ही भारतीय उपमहाद्वीप में रह रहे थे। आर्यों ने कुछ आदिवासियों को युद्ध में परास्त कर दास बना लिया। अलबता उत्तर पूर्वी भारत उनकी पहूँच से बाहर ही रहा। अन्य आदिवासी जंगलों या पहाडी प्रदेशों में पलायन कर गए। इस प्रकार जो भी आदिवासी समुदाय आर्यों के आक्रमण से बच निकले वे अपनी संस्कृति और पहचान कायम रखने में कामयाब हुए।" [3]

आदिवासी भारत के 26 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में फैले हुए हैं। ये मुख्यतः जंगल, पहाडी इलाकों में बसे हुए हैं। जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा है। के . एस सिंह ने 'पीपिल आफ इंडिया' में भारत में 461

आदिवासी समूहों की पहचान की है। यह देश की संपूर्ण जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत है। इनकी कुल संख्या 5 करोड के ऊपर है।

आदिवासी केलिए प्रयुक्त अंग्रेज़ी भाषा का शब्द 'ट्राइब' लाटिन भाषा से बना है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है। प्राचीन काल में ये समूह अपने विशिष्ट नामों से जाने जाते थे। मध्यप्रदेश में असुर, साबरा, औराँव, गौण्ड, संथाल एवं भील, उत्तर तथा पूर्वी भाग में बोडो, अहो तथा दक्षिण भारत में कुरूम्ब, इरूला, पणिया आदि। गोड जाति मध्यप्रदेश में सबसे अधिक हैं। यद्‌यपि स्थानीय विभिन्नताओं के कारण इन जातियों की संस्कृतियों में थोडा बहुत अंतर मिलता है, किन्तु व्यापक रूप में इनमें बहुत अधिक समानताएँ हैं। प्रायः सभी जातियाँ सबसे पहले जन्मे स्त्री - पुरुष को अपना पितर मानते हैं।

आदिवासी संपूर्ण देश में बिखरे पडे हैं। वे विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हैं। देश में ऐसे भी आदिवासी वर्ग हैं जो विकास की दृष्टि से एकदम पिछडे हैं। वे प्रमुखतः प्रकृति प्रेमी हैं। हिंदू धर्म से उनका कोई संबंध नहीं है। पंचशील के सिद्धांतों में नेहरू जी ने लिखा है कि " आदिवासी जंगलों और पहाडों में रहनेवाले हैं और हिंदुओं के रीति रिवाजों और जीवन पद्धति को हमें इन लोगों पर लागू नहीं करना चाहिए इनका विकास तो इनकी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। " [4]

आदिवासी साँवले रंग के, उभरी हुई मांस पेशियोंवाले, नंगे बदन और सादगी युक्त भोले -भाले चेहरेवाले हैं। आदिवासी वन या किसी पहाड पर ही रहना पसंद करते हैं।वस्त्र वे किसी विशेष आयोजन के समय ही पहनते हैं। मैदानी प्रदेशों से दूर रहने के कारण इनमें शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम है। प्रकृति की अधिकांश वस्तुओं को वे अपने अदृश्य देवता द्‌वारा दिये हुए वरदान मानते हैं। इसलिए उनका संबंध बहुत सहज और घनिष्ठ है। प्रकृति उनकेलिए पिकनिक स्थल नहीं, बल्कि जीवन का

आधार है। कई जनजातियाँ आज भी अपने मूल रूप में रह रही हैं। वे जंगल के फूल फल जडी बूटियाँ आदि बेचकर, पशुपालन, शिकार तथा खेती करके अपना जीवन-यापन करते हैं।

आदिवासियों का आर्थिक शोषण ही नहीं, शारीरिक शोषण भी किया जा रहा है। ये भोले भाले आदिवासी बिना यह समझे कि इनका शोषण किया जा रहा है, एक बडी या एक चुटकी तंबाकू के लिए अपने दिन भर का श्रम बेचते हैं। वर्तमान ही इनका जीवन दर्शन है। न तो इनमें बीते हुए कल के प्रति पछतावा है और न ही आनेवाले कल की चिन्ता। प्रकृति की तरह सहज सरल, स्वाभाविक और सामूहिक जीवन यापन इनका जीवन दर्शन है। आदिवासी नारी अशिक्षित, निर्धन और ऋण ग्रस्त होने के कारण हमेशा ही शारीरिक शोषण का शिकार होती आयी है। आदिवासी शिक्षा प्राप्त कर समाज में सम्मान पाना चाहते हैं।पर ऊँचे समाज की मानसिकता उसका पाँव को पीछे खींच लेता है।

आदिवासी स्त्री पति को ईश्वर नहीं समझते। पति को ईश्वर मानकर या धन के लोभ से सबकुछ सहन करने की परंपरा आदिवासियों में नहीं है। पति के सताए जाने और सास -ससुर द्वारा तंग किये जाने पर घुट -घुटकर मरने की अपेक्षा पति को छोडकर दूसरा पति चुनना या अपनी पसंद साथी के साथ जीने का अधिकार आदिवासी स्त्री को है। आदिवासी समाज भी पुरुष प्रधान ही है। फिर भी नारी सम्मान की अनुधावन करने योग्य बातें इसमें बहुत हैं। लडकेवालों की ओर से लडकीवालों को आवश्यक सामान देने की रिवाज़ उसकी संस्कृति में है,जो भारत की मुख्यधारा संस्कृति सोच भी नहीं सकते। असभ्य कहे जानेवाले आदिवासी समाज में नारी प्रति के एक विशेष सम्मान का भाव है। लडके और लडकियों को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता है।

आदिवासियों में आम तौर पर एक पत्नी रखने की व्यवस्था है। पर पत्नी से संतान न होने की स्थिति में पुरुष किसी कुमारी लडकी से विवाह कर सकता है। आदिवासियों में विवाह विच्छेद की भी प्रथा है। विवाह विच्छेद के बाद स्त्री और पुरुष दोनों के लिए दूसरी शादी कर लेना मुश्किल की बात नहीं है। तलाक लेने केलिए कोई विशेष रस्म पूरी नहीं करनी होती। आदिवासियों में नारियाँ सिर्फ संतानोत्पत्ति का साधन नहीं, बल्कि पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीविकोपार्जन के हर कार्य में सहयोग देनेवाली अपना अस्तित्व रखनेवाली है। सामूहिक त्योहारों में भी नारियाँ पुरुषों के साथ मिलकर सामूहिक नृत्य करती हैं।

आदिवासियों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। वे टूटी -फूटी झोंपडी में रहते हैं। उच्च वर्ग का दबाव उनपर हमेशा बना रहता है। उच्च वर्ग के लोग आदिवासी युवतियों से संबंध तो बनाते हैं पर विवाह नहीं करते। युवती आजीवन अविवाहित माँ बनकर अपने बच्चों का पालन पोषण करती रहती है। बच्चों को यह भी पता नहीं रहता कि उसका पिता कौन है। आदिवासियों के पास औरतों और बच्चों के तन ढकने केलिए ढंग का कपडा भी नहीं है। वे अनपढ़ है साथ ही साथ अंधविश्वासी भी हैं। हिंदू, मुसलमान और ईसाई भारत के प्रमुख धर्म हैं। इनके अनुयायी आदिवासियों की धार्मिक आस्थाओं को नीची दृष्टि से देखते हैं और इन पर बाहरी मूल्य लादने की कोशिश करते हैं। तथापि वे प्रमुख धर्मों से अलग अपनी पहचान बनाने केलिए प्रयत्नशील हैं। शारीरिक रूप से शक्तिशाली कर्मठ,मेहनती होते हुए भी सही शिक्षा की कमी, अज्ञता और अंधविश्वास के कारण वे सदियों से कमज़ोर हैं। इनकी कमज़ोरी का फायदा जमींदार और ठेकेदार उठाते हैं।

आर्थिक अभाव में जीवन व्यतीत कर रहे आदिवासियों में हमेशा पैसे की कमी रही है। ऐसा लगता है कि मानवता का सिद्धान्त इन आदिवासियों के संदर्भ में

भूल गया है। देखा जाय तो भारत का समग्र विकास आदिवासियों के विकास पर भी निर्भर है। आज भी आदिम व्यस्था में जी रहे आदिवासी और तमाम जनजातियों के कारण हमारा राष्ट्रीय विकास उस व्यक्ति की तरह है जिसका एक पैर चलता है और दूसरा घसीटता है। कला ,संस्कृति ,लोक संस्कृति की दृष्टि से आदिवासी परंपरा समृद्ध है।

1.1.2.2 स्त्री

मुख्यधारा समाज वर्चस्ववादी पुरुषों केलिए है। वहाँ स्त्री हाशियेकृत है। चाहे वह ऊँचे कुल में जन्मी भी क्यों न हो। नारी ईश्वर की अनुपम सृष्टि है। सारे संसार में दो ही जातियाँ हैं एक स्त्री और एक पुरूष। लेकिन समाज पुरुष प्रधान है। भारतीय समाज में पुरुषों का अधिकार स्त्रियों की तुलना में ज़्यादा है। भारतीय इतिहास में नारी पूजा की जाती थी। आधुनिक युग में भी नारी शिक्षा, साहित्य, ज्ञान विज्ञान राजनीति के तमाम बौद्धिक और तकनीकि क्षेत्र में अपनी योग्यता तथा क्षमता का सफल परिचय देती है। किंतु संपूर्ण विकास क्रम में पुरुष की तुलना में नारी अब भी पिछडी हुई है। उस केलिए राजनीति में 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग उठाना यह सिद्ध करता है कि राजनीति या अन्य क्षेत्रों में नारी की सहभागिता अब भी बहुत कम है।

आज की नारी स्वावलंबी हो कर पुरुष के समान कमा रही है और उच्च शिक्षा भी पा रही है। आज वह स्वतंत्र जीवन बिता रही है। सामाजिक, आर्थिक और राजनातिक क्षेत्र में नारी के स्थान में परिवर्तन आ गया है। जीवन के प्रति स्त्री और पुरुष के बदलते दृष्टिकोण, संविधान का निर्माण, शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार तथा समाज सुधारकों के द्‌वारा नारी के जीवन में परिवर्तन आया।

1.1.2.2.1 नारी -दासता की कहानी

मानव उत्पत्ति के काल में मानव बंजारों की तरह भटकते रहते थे। स्त्री और पुरुष दोनों अपने- अपने भोजन की सामग्री ढूँढकर एक जगह से दूसरी जगह जानेवाला दल थे। वे खाने की चीज़ बटोरते और एक साथ बैठकर खाते तथा मौज उठाते थे। उस समय केवल दो ही वर्ग थे, स्त्री और पुरुष। उनके बीच कोई भेद -भाव की भावना नहीं थी। उस ज़माने में मानव -मानव के बीच ज्यादा समत्व भावना दिखाई देती है। नारी को भी स्वतंत्र व्यक्ति के समान माना जाता था। नरतत्व विद्वान और इतिहासकारों के अनुसार उस काल में नारी को दल में श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था। क्योंकि वही सृष्टि की कारयत्री है। माँ के नाम से गोत्र जाने जाते थे। पिता से बच्चों का कोई संबन्ध नहीं रहता था। पिता अज्ञात है तो भी माँ को मान्यता मिलती थी। यह सिलसिला बहुत दिनों तक चलता रहा। पुराने ज़माने में परिवार में नारी को ही अधिकार था। यह व्यवस्था पिछली शताब्दी तक केरल में मौजूद थी।

कालान्तर में खेती का आविर्भाव हुआ और आवश्यकता से ज्यादा फसल होने लगा तो अधिकार की बातें उभरने लगीं। कमज़ोर लोगों को अपने अधीन कर गुलाम बनाये जाने लगे। शारीरिक रूप से कमज़ोर नारी पर ताकतवार मर्द एकाधिकार साबित करने लगा।पुरुषों के पास इस अधिकार हरण केलिए अनेक कारण हैं। गर्भवती होना, प्रसूती, बच्चों का पालन आदि कारणों से उत्पन्न शारीरिक परेशानियाँ और विषमताएँ आदि। लेकिन नारी के स्वतंत्र संभोग के अधिकार से उत्पन्न ईर्ष्या मिश्रित गुस्सा और गोत्र का पितृ सत्ता का तिरस्कार से उत्पन्न उत्कंठा ही असल में इस अधिकार हरण के प्रमुख कारण थे। अपने लिए स्वतंत्र भोग की व्यवस्था

बनानेवाला पुरुष स्त्री की इस आज़ादी बर्दाशत नहीं कर सका। समाज में वर्चस्व ना बनने केलिए पुरुष ने नारी को निजी संपत्ति बनाया।

उत्तराधिकार का निर्णय लेकर रानी की तरह जीनेवाली नारी की स्थिति पूरी तरह उलट गयी। व्यक्तिगत संपत्ति के आविष्कार होने के बाद परिवार में पुरुष का स्थान बढ गया। यहाँ से नारी को हाशिये की ओर धकेलने का सिलसिला शुरू हुआ। श्रम विभाजन के नाम पर नारी को संतति पालन सौंप दिया और परिवार के पोषण और संरक्षण का कार्य पुरुष को सौंप दिया। पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष का कार्य समान महत्व का है। किन्तु संपत्ति अर्जन का कार्य पुरुषों को सौंपने के कारण परिववार के भीतर और बाहर वह परिवार का नियामक बन गया, परिवार का केन्द्र बन गया। सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में नारी के साथ किया ।यह धोखा किसी एक क्षेत्र में न होकर कालांतर में शैक्षिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में फैल गया।

1.1.2.2.2 भारतीय संस्कृति में स्त्री

नरवंश विज्ञान और समाजशास्र विज्ञान के अनुसार प्राचीन समाज में नारी को भी वही स्थान मिलता था जो नर को मिला करते थे, शायद पुरुष से ज्यादा। धर्म ग्रन्थों में नारी को आदि शक्ति के विभिन्न रूपों में देखने की परंपरा है। स्त्री पुरुष संकल्पनाओं के गहरा अध्ययन करने से पता चलता है कि प्रत्येक ज़माने में नारी का स्थान अलग अलग थे।प्राचीन भारत में नारियों को पुरुष के समान वेदों के अध्ययन करने की स्वतंत्रता थी। वैदिक काल में स्त्री को समाज में उन्नत स्थान मिलता था। गार्गी, अत्रेयी, लोपामुद्रा ,अपाला जैसी साध्वी स्त्रियाँ इस देश में थीं। वैदिक संहिता के निर्माण में इनका बडा हाथ है। लडकों की तरह लडकियों का भी

उपनयन होता था। उच्च शिक्षा जिसमें वैदिक अध्ययन भी था, स्त्रियों को भी दिया जाता था। परिवार में स्वामित्व का अधिकार स्त्री और पुरुष को समान रूप से था।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के ऊपर पतिव्रता का मुखौटा डाल दिया। समाज में अपना अधिकार स्थापित करने केलिए व्याकुल पुरुष ने अधिकार को चिर स्थाई बनने केलिए कठोर नियम व्यवस्था का निर्माण किया। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह काम मनु ने किया। उनकी मनुसंहिता में नारी केलिए कर्तव्यों का बौछार है।मनु ने समाज में पुरुष और नारी केलिए अलग -अलग कामों को निर्धारित किया। इसके द्‌वारा उसे पुरुषों ने अपना गुलाम बना दिया। कुआँरीपन, स्त्रीत्व,पतिव्रता आदि मान्यताओं का रूपान्वयन करके नारी को पूरी तरह बंदिश में रख दिया, घर के चार दीवारों में कैद किया। बाहरी दुनिया के सभी कार्य व्यापार मर्दों की मुट्ठी में आ गये। नारी की संभोग स्वतंत्रता को खतम करके पुरुष वर्चस्व ने समाज में अपना अधिकार जमाया। नारी संभोग में मुक्त है तो समाज में पुरुषों को कोई स्थान नहीं मिलनेवाला है। इतिहास इसके लिए साक्षी है। पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नारी की दशा कालातंर में उसकी पैरों की जूती से भी बदत्तर हो गयी।

मनुसंहिता में पुरुषों के लिए सीमित कर्तव्य ही है। साथ ही साथ अनेक स्वतंत्रताएँ भी । इसने ऐसी एक मान्यता समाज में फैला दी कि नारी की टाँगों में समाज खडा है यदि वह फिसल गयी तो सबकुछ इधर का उधर हो जाएगा। इसलिए वह अनुशासन में रहे तो सब ठीक हो जायेगा। अतः स्त्री को विविध रूप में चित्रित करके उनके कर्तव्यों का निर्धारण किया गया। पुराण,इतिहास को ही नहीं लोक कथाओं तक को इनके प्रचार का माध्यम बनाया। इसके द्‌वारा नारी भी एक प्रोपर्टी बन गयी।

नारी प्राचीनकाल से ही अपने अधिकारों से वंचित है। पुरुषवादी समाज हमेशा स्त्री पर अपना अधिकार चलाता रहा है। स्त्री को साग-सब्जी की तरह बिकनेवाली चीज़ के रुप में माना जाता है। इसलिए उसे दासी के रूप में, वेश्या के रूप में बेची जाती है। यह केवल भारत की स्थिति नहीं है पूरी दुनिया की स्थिति है। नारी को अबला का जीवन जीने केलिए बाध्य करनेवाला मुख्य कारण धर्म है।

हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था ने नारी की स्वतंत्रताओं पर बेडियाँ डाल दीं। वर्णाश्रम व्यवस्था के विरुद्ध खडे बुद्ध ने नारी को शिक्षा दी और उनके उद्धार करने की कोशिश भी की। लेकिन यह दौर ज़्यादा समय तक नहीं रह सका। बुद्ध और उनका दर्शन जला दिया गया। फीके पडे रहे सवर्णाधिकार पुनःस्थापित हो गया। वे स्त्री के व्यवहार में पाबंदी लगा दी। उसे फिर से गुलाम बना दिया। पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने उसे कभी भी समान का अधिकार नहीं दिया। नारी का स्वतंत्र अधिकार उन्हें कभी सह्य नहीं था।

पुरुष- प्रधान समाज नारी के अस्तित्व को मानने केलिए भी तैयार नहीं है।ज़्यादातर पुरुष नारी को भोग वस्तु मात्र मानते हैं। बच्चों को पैदा करने का एक मशीन। जब लडकी घर से बाहर जाती है तब उसके घरवालों को सदैव चिंता बनी रहती है कि कहीं ऊँच नीच न हो जाय। कहीं वह पेट से न रह जाय। भारत के प्रत्येक घर में यह डर विराजमान है।

नारी के विभिन्न रूपों में सबसे अनुपम रूप पत्नी का है। लेकिन पुरुषों का पत्नी संबन्धी दृष्टिकोण बस यहीं तक ही है कि मेरी इच्छा या मेरे कहने के अनुसार चलनेवाली व्यक्ति।पति केलिए जीनेवाली, पति केलिए रहनेवाली, बच्चों को पैदा करनेवाली, धनी, सहनशील नारी को ही भारतीय समाज ने अच्छी पत्नी का दर्जा

दिया है। अपनी इच्छाओं और अनिच्छाओं को खुलकर कहने से वह कुलटा बन जाती है।

मुसलमानों के आक्रमण से नारियों की स्थिति में बहुत बडा पतन हुआ। इससे बाल विवाह आरंभ हुआ। पुरुष वर्चस्ववाद या सवर्ण अधिकार ने नारी को एक अभिशप्त जन्म के रूप में परिवर्तित किया और शिक्षा पाने का अधिकार उनसे छीन लिया। नारी की सभी स्वतंत्रता छीन लिया गया। उसके हँसने की, रोने की, खाने की, सोचने की, बाहर निकलने की, देखने की, उठने की, बैठने की यहाँ तक कि उसके सोचने तक का स्तर पुरुष निर्धारित करने लगा। धर्म की झोला पहनकर आये इन नियमों को नारी चाहकर भी विरोध नहीं कर पायी, या विरोध को धार्मिक नियमों ने दबा दिया।

सरकारी गैर -सरकारी क्षेत्रों में स्त्री की भागीदारी बहुत कम है। फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोउवर कहती हैं "दरअसल स्त्री की सबसे बडी त्रासदी उनका स्त्री होना ही है। नयी समाजिक व्यवस्था में उसका अस्तित्व एक ऐसी स्त्री के रूप में प्रचलित हुआ है कि उन्हें अपने आप को अन्यनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ मान लेने केलिए बाध्य होना पडा।" [5]

1975 में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा नारी दशक की घोषणा से नारी मुक्ति आंदोलन का देश -विदेश में तीव्र गति से प्रचार -प्रसार हुआ था। नारी मुक्ति आंदोलन भारत में भी ज़ोरों पर है। इसकेलिए बहुत संस्थाएँ भी काम कर रहे हैं। लेकिन इन संस्थाओं में आपसी संबंध बहुत कम है। इन संस्थाओं के बीच जाति और वर्ग की अदृश्य रेखा है। कहने केलिए नारी वर्ग एक ही है। लेकिन वह कुल, गोत्र और जाति के अनेक खेमों में बँटा हुआ है।

अधिकांश बलात्कार की घटनाएँ दलित महिलाओं पर ही होती हैं। क्योंकि भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने सवर्णों को दलित नारियों को मुक्त रूप में भोगने की अधिकार दिया है। इसलिए उसपर गली, सड़क ,भरी समाज सब कहीं सामूहिक बलात्कार किया जाता है। इसके बाद सवर्ण अपराधी सीना तानकर चलता भी है। भारतीय समाज दलित महिला पर होनेवाले इस जघन्य अपराध को अपराध मानने केलिए ही तैयार नहीं है। सवर्ण महिलाएँ इस खौफनाक दर्द से एक सीमा तक अब भी दूर है।

1.1.2.2.3 दलित महिलाएँ

अधिकतर दलित महिलाएँ खेतीहर मज़दूर हैं। हर रोज़ बेरोज़गारी का सामना करनेवाली, कम मज़दूरी में काम करनेवाली महिलाएँ हैं। आर्थिक रूप से उच्च जाति के अमीर लोगों से आश्रित होने से उन्हें बलात्कार और सब तरह की हिंसा का शिकार होना पडता है। भारत में हर साल बीस लाख महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है। इनमें ज्यादातर दलित महिलाएँ ही हैं।

दलित भारतीय समाज में सबसे निचली श्रेणी में है। उसे हमेशा मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार होना पडता है।लेकिन दलित नारी की दशा दूसरी नारियों से भी बदत्तर है। उसे पुरुष समाज को ही नहीं सवर्ण आधिपत्य को भी झेलनी पडती है। दलितों से छुआछूत रखनेवाले सवर्ण दलित नारी के शरीर से कोई परहेज नहीं करते। दलित नारियों को उन्मुक्त रूप से भोगने केलिए उनके द्वारा बनायी व्यवस्था है देवदेसी प्रथा। यह पुरुष की शारीरिक पिपासा को तृप्त करने केलिए नारी शरीर को उन्मुक्त रूप में भोगने केलिए पुरुष -सत्तात्मक समाज द्वारा बनाया गया षड्यंत्र मात्र नहीं है, अपितु दलितों को हमेशा दलित बनाए रखने का मनोवैज्ञानिक तरीका भी है। हमारी अपनी वस्तु पर दूसरों का कब्जा असल में हमें

यह अहसास दिलाना है कि तुम्हारे जो कुछ भी है वह मेरा है;तुम मेरे अधीन हो। अक्सर हर लडाई में विजेता अपनी जीत का झंडा नारी की शरीर पर ही लगाता है।

1.1.2.3 दलित

अनुसूचित जातियों,अनुसूचित जनजातियों सभी केलिए दलित शब्द का प्रयोग सबसे पहले महाराष्ट्र में हुआ।अब भारतीय समाज में निम्न जाति में बँटे समस्त लोगों को दलित कहते हैं। दलित शब्द का भारतीय संदर्भ में अर्थ होता है कि समाजिक और राजनीतिक सुविधाओं से सदियों से वंचित और उच्च वर्ग द्वारा शोषित जनता।लेकिन दलित शब्द हमेशा विवादास्पद रहा है।दलित किसे कहा जाय इस पर अनेक मुद्दे सामने आते हैं।कुछ लोग अस्पृश्य निचली जाति को दलित कहते हैं तो कुछ उसे व्याप्ति बढाकर दलित शब्द का वास्तविक अर्थ शोषित पीडित,रौंदा हुआ,विनष्ट किया हुआ कुछला हुआ आदि कहते हैं। कुछ लोगों ने उसे जाति के दायरे से बचाकर दलित का दलन किया हुआ के अर्थ की व्यापक पृष्ठभूमि पर खडा किया है।

1.1.2.3.1 दलित शब्द का अर्थ

1972 में गाजा ढाले ने 'काला स्वतंत्रता दिवस' शीर्षक लेख में दलित शब्द का प्रयोग किया,जो काफी विवादास्पद हुआ।इसी के साथ दलित शब्द प्रचलित हो गया।पैंथर और दलित लेखकों की रचनाओं ने युवा दलितों को आकर्षित करने के साथ गैर दलितों को भी इसकी ओर आकर्षित किया।

डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर दलित के संबंध में कहते हैं " दलित यानी अनुसूचित जातियाँ, बौधिक कष्ट उठानेवाली जनता, मज़दूर भूमिहीन,गरीब किसान खानबदेश जातियाँ,आदिवासी। दलित शब्द की यह जाति निरपेक्षक व्यापक परिभाषा

है। असल में जिन जातियों को गाँधीजी ने हरिजन कहा था, वे ही जातियाँ दलित के नाम से पहचानी गयी।" [6]

1931 में भारत के तत्कालीन जनगणना कमिश्नर ने दलित जातियों का अर्थ कुछ इस प्रकार दिए है – " मैंने दलित जाति उन जातियों को माना है, जिनके साथ शारीरिक स्पर्श होने के फलस्वरूप उच्च जाति के हिन्दुओं को अपनी शुद्धि करना आवश्यक हो जाता है।" [7] इसका अर्थ यह नहीं है कि इस शब्द को किसी पेशे से संबंध कर दिया जाय वरन् यह शब्द उन्हीं जातियों केलिए प्रयुक्त होगा, जिनका उदाहरण के तौर पर, हिन्दू समाज में अपनी परंपरागत स्थिति के कारण, मंदिर में प्रवेश निषिद्ध हैं या जिनके कुएँ अलग हैं, या जिन्हें पाठशालओं में नहीं बैठने दिया जाता और बाहर ही रहना पडता है या जो इसी प्रकार की अन्य सामाजिक असमानताओं से पीडित हैं।

1973 में दलित पैंथर के घोषणा पत्र में दलित की परिभाषा इस प्रकार दी है- "राजसत्ता संपत्ति, धर्म और सामाजिक हैसियत के आधार पर होनेवाली सभी नाइंसाफियों के खिलाफ संघर्ष केलिए प्रतिबद्ध अनुसूचित जातियाँ और जन जातियाँ दलित मानी जाएगी।" [8] कुछ कार्यकर्ताओं ने इस श्रेणी में महिलाओं को भी शामिल किया।

भारतीय संदर्भ में दलित शब्द का एक ही अर्थ है औपनिवेशिक संस्कृति के ठेकेदार आर्यों द्वारा गुलाम बनाया गया वर्ग।स्वलाभ के लिए उच्च वर्ग के लोगों द्वारा दबाया गया समुदाय।भारत के पहले उपनिवेश के द्वारा अपने ही देश में पराए बन गए लोग।सभी सताए लोगों को भी दलित मानने में दिक्कत है।

1.1.2.3.2 दलित जाति -एक परिचय

शूद्र समुदाय को काम के आधार पर अन्य अनेक जातियों और उपजातियों में भी बाँटा है।जैसे नाई, बढई, सुनार,भंगी,चमार, आदि। इनमें सबसे घृणित काम करनेवाले अतिशूद्र जाति को दलित कहते हैं।दलितों को धर्म के बाहर रखा गया है।समाज की संपत्ति पर उन्हें कोई अधिकार नहीं है।ये लोग पशुओं या घरेलू इस्तेमाल की चीज़ों के समान धनी या सवर्णों की निजी संपत्ति होती थी। देश में दलित जनसंख्या करीब बीस करोड है।लेकिन किसी भी प्रमुख निजी कार्यालयों में दलित किसी भी बडे प्रशासनिक पद में नहीं है।आबादी के पच्चास प्रतिशत दलित हैं लेकिन समाचार व विचार में एक प्रतिशत भी दलित समस्याओं पर केन्द्रित नहीं है।

दलित पुरूषों के शरीर को पशुवत,पालतु और व्याहारिक उद्द्श्यों के लिए प्रशिक्षित माना गया है।उनकी महत्ता उनके परिश्रम,उत्पादक गतिविधियों और टिकाऊपन में है। काम के मामले में उन्हें पशु माना जाता है। उनके शरीर को सुबह से शाम तक घोर इस्तेमाल करता था। कई भू स्वामियों के घर में दलित घरेलू काम करते थे। वे गुलाम और नौकर है। उनकी बात और व्यवहार सेवा योग्य है। उन्हें विरोध करने और न्यायालय जाने का हिम्मत नहीं था। इस प्रकार अपने शोषण के समर्थन में ऊँची जाति के पुरूषों और अधिकारियों ने दलित पुरूष की एक चालू कमजोर छवी को समाज के सामने रखा।

दलित पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं को भी निम्न और कच्चा बता कर उनके शरीर को मस्तिष्क पर हावी कर दिया गया।दलित पुरुषों को सोचने समझने में निम्न, मंद और मूर्ख दिखाकर यह साबित किया गया कि उनका मस्तिष्क किसी काम का नहीं है, केवल उनका शरीर ही काम का है।दलितों के बारें आर्यों ने यह धारणा फैला दी कि शूद्र कोई काम स्वयं नहीं कर सकते।वे केवल दूसरों के आज्ञा

का पालन ही कर सकते हैं।यदि वे किसी विद्यार्थी के पास हैं तो उसकी पुस्तकों को संभाल सकते हैं,यदि किसी सिपाही के साथ हैं तो उसकी तलवार झाड पोंछ सकते हैं,यदि किसी व्यापारी के पास हैं तो उसकी दूकान में झाड़ू दे सकते हैं। वेदों के अनुसार दलित सवर्णों के पैरों की जूती है।वे इन्हें अनावश्यक नहीं मानते।परन्तु यही मानते है कि इनसे कोई मौलिक कार्य नहीं हो सकता।ये केवल दूसरों का अनुसरण कर सकते है।

दलितों की मुक्ति के लिए सबसे पहले बीगुल बजानेवाले सिद्ध और संत कवि थे।उनके पद और दोहे ने दलित वर्ग के उद्धार केलिए क्रान्तिकारी कार्य किये।उन्होंने दलित वर्ग पर हो रहे अत्याचारों,शोषण और तिरस्कार का विरोध करके मिथ्याडंबरों की धज्जियाँ उठाई। 15वीं शती में अंग्रेजों का शासन शुरू हुआ।अंग्रेज़ों के शासन काल में दलितों की पतित स्थिति में परिवर्तन आने लगी।

1.1.2.3.3 दलित जातियाँ और सामाजिक सोच

सामाज और साहित्य में जो सम्मान व्यक्ति को दिया जाता है वही उनकी आगामी पीढियों को भी मिलेगा।प्राचीन साहित्य और समाज एक अर्थ से दलित विरोधी है। यह बेरूखी दलितों के प्रति आनेवाली पीढी ने भी बनायी रखी। नवजागरण को बढा -चढकर बोलनेवालों ने कभी इसके अन्तर्विरोधों की ओर ध्यान नहीं दिया है। दलितों को समाज की मुख्यधारा से काटनेवाली जाति -प्रथा को खतम करने केलिए नवजागरण में कोई प्रयास नहीं किया गया बल्कि जाति प्रथा इस काल में और बलवती हुई। इस समय सर्वाधिक जातिगत संस्थाएँ बनायी गयी। वे अपनी- अपनी जातियों को उन्नत करने तथा शिक्षा आदि में ऊपर आने केलिए जातियों के नाम पर संस्थाएँ खोलने के लिये प्रयत्नरत रहे। पूरे उत्तर भारत में इस प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ खोली गयी,जो उच्च जातियों के बच्चों को पढाने केलिए कार्य करती थीं।

क्योंकि इस समय ऊँची जाति के जमींदारों द्वारा अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में नहीं बेजने का मुख्य कारण जाति जाने का डर है। स्कूलों में उनके बच्चे निचली जातियों और कामगारों के बच्चों के संपर्क में आएँगे। यह बात केवल जमींदारों तक सीमित नहीं थी, आम उच्च जाति के व्यक्ति भी इसी मानसिकता का शिकार थे।इसलिए वे भी नहीं चाहते थे कि उसके बच्चे दलित बच्चों के साथ बैठकर पढें।उस समस्या से मुँह चुराया जा रहा था जो सैकडों वर्षों से समाज के पिछडेपन का कारण है।

दलितों का विस्तृत ब्योरा सवर्ण साहित्य में ही नहीं विदेशियों की सोच में भी एक ही प्रकार के है। उन्होंने दलितों को अर्ध नग्न, घुटनों के बल झुके और डरे - सहमे चित्रित किया है औपनिवेशिक नजरियों से ऐसे साँचे और मजबूत हुए। मुख्यधारा समाज में दलितों को हमेशा गंदा, छोटा और कुरूप दिखाया गया है।

दलितों को इंसान मानने केलिए कोई तैयार नहीं होते। 1940 में बेगार विरोधी आंदोलन में भाग लेनेवालों को हिंसा के आग्रही के रूप में चित्रित किया। ऊँची जाति के लोगों ने अपनी पितृसत्तात्मक क्रूर प्रवृत्तियों की ओर से समाज का ध्यान हटाने केलिए दलितों को खतरनाक चित्रित किया। दलित लोगों को चरित्रहीन चित्रित करके ऐसी धारणा फैला दी कि उनसे ऊँची जाति के लोगों को खतरा है। दलित पुरुषों की संभावित कामलोलुपता के कारण सवर्ण जाति की स्त्रियों को दलित पुरुषों से दूर रहने के निर्देश दिये गये। इसके साथ दलित स्त्री की एक वासना लिप्त तस्वीर भी जुडी हुई है।

सवर्ण जाति ने अपनी क्रूरता पर पर्दा डालने केलिए दलित पुरुषों की छवी खराब कर दी। दलितपन को कुरूप, जंगली पैशाचिक घोषित किया। इस प्रकार दलितों की वैचारिक निर्मिति में दो परस्पर विरोधी तत्व सामने आते हैं। एक सवर्णों के लिए

आवश्यक है जिन्हें वे अपनी इच्छा और उपयोगिता के अनुसार परिभाषित और परिचालित किया जा सकता है।दलित शरीर को मेहनती, विनम्र और आज्ञानुवर्ती नौकर के गुणों से सजाया गया। दूसरा बेकार और खतरनाक शरीर, जो सेवा से इनकार करता है, अपराधी है और ऊँची जाति के वर्चस्व को चुनौती देने का हिम्मत करता है।

1.2 अस्मिता

जब व्यक्ति समझने लगता है उसकी बिसात कितनी है तब समझ लो कि उसके सामने अस्मिता का संकट आ गया है।जब बाहरी परिवेश व्यक्ति की आस्थाओं और वैचारिक मूल्यों को समूल रौंद डालकर उसके अस्तित्व के नकारने तक की सीमा तक संकुचित होता है,उसकी उपस्थिति को पहचानरहित करके महत्वहीन बना देती है ऐसी स्थिति में अस्मिताबोध जाग उठता है।

जब व्यक्ति या समूह उसे बडे समाज में अपने योगदान को भी चिन्हित करना चाहता है तब उसका अस्मिता बोध जाग उठता है। यह इच्छा कई प्रकार क्रियाशील होती है।समता,महत्व,प्रभाव आदि की इच्छा मनुष्य को अपने होने के अनुभव से परिचित कराता है। अपने होने का यह बोध ही व्यक्ति को अपने अस्तित्व की भौतिकता से संबद्ध करके समानान्तरता पर खडा कर देता है। यह प्रतिक्रिया या विरोध से उत्पन्न प्रतिफल नहीं। इसके मूल में सामाजिक इकाई में संपूर्णतः स्थान पाने केलिए अपना भी योगदान की इच्छा कार्यरत है, जो उनमें यह भाव उत्पन्न करें कि मैं भी अपना योगदान करूँ। दलित अस्मिता पर बात करते हुए डॉ. कालीचरण सनेही कहते है कि "दलित लेखकों को अपनी अस्मिता को पुनः खोजना है। उन्हें पुनः अपने समाज को महिमा मंडित करना है।जब तक स्वप्न साकार नहीं होता दलित लेखकों का मिशन अधूरा है। दलित लेखकों बुद्धिजीवियों को

अपनी हीन दशा की खोज खबर सवर्ण साहित्य में ही करनी है। सवर्ण साहित्य में वे सूत्र मौजूद हैं,पर उन्हें पकडने की खोजी दृष्टि चाहिए।"[9]

अस्मिता एवं समानान्तरता की भावना है जो अपनी पहचान केलिए भीतर ही भीतर कसमसाती है। इस कसमसाहट को उत्पन्न करने में आधुनिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक शिक्षा विभिन्न वैज्ञानिक, नृवंशात्मक और सामाजिक सांस्कृतिक शोधों के माध्यम से निर्णय पर पहूँचा है कि प्राकृतिक रूप से जो भिन्नता मानव समूहों में बाह्य रूप से दिखाई देती है उसी के अनुसार मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी भिन्नता दिखाई देती है। इसकी प्रतिष्ठा उत्कृष्ट एवं हेय रूप में किया गया है।

भारतीय समाज की स्वतंत्र अस्मिता की खोज को ज्ञान की प्रक्रिया से जोडने पर उसकी सार्वभौमिकता पर सवाल खडा होगा। भारत में आर्यों द्वारा प्राचीनकाल से ही बनाया गया एक राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था कायम है। इसे तोडते हुए अस्मिता की लडाई करना दलितों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है।

1.2.1 अस्मिता का अर्थ

अस्मिता का अर्थ है अपने अस्तित्व का बोध। मैं कौन था, अब कौन हूँ और कौन होना चाहिए ये तत्व इसके अन्दर में निहित हैं। जब तक अस्मिता का बोध नहीं होता तब तक इंसान जानवर से भी निकृष्ट माना जाएगा। अस्मिता दलित, नारी, आदिवासी और शोषित समाज केलिए मुक्ति के समाजशास्त्र का निर्माण करती है।

अस्मिता का अर्थ है 'आत्मश्लाघा', अर्थात् अपने मुख से अपने ही गुण का वर्णन करना। दूसरा अर्थ है 'अहंकार' अर्थात खुद पर घमंड करना। वर्तमान संदर्भ में

अस्मिता का अर्थ 'मैं हूँ' ले सकते हैं। अस्मिता की आधुनिक परिभाषा है मैं हूँ। फ्रायड ने भी मैं को हम से अलग किया है। उनके अनुसार-अहम् -ईगो - में जहाँ विवेक होता है वहाँ इदं में मूल वृत्तियाँ,वासनाएँ और इच्छाएँ होती हैं। जब हम सोते हैं, तब हमारे अचेतन में दबे संस्कार उभरते हैं। हमारे स्वप्न में हमारे चित्तीय जीवन की सूचनाएँ व्यक्त होती है। हमारी अस्मिता का केन्द्र यथार्थ आत्मा का यहीं निवास होता है। इसी अचेतन संसार से लालसाएँ और इच्छाएँ हमारे भाग्य को संचालित एवं नियंत्रित करती हैं।"[10]

परंपरागत चार दीवारी और बंधनों के कटघरों को तोडना ही आधुनिक संदर्भ में अस्मिता की परिभाषा है। अहं बोध से अंधी एक समाज से बहिष्कृत किये गये एक समाज के लडने की हौसला है यह। आन्तरिकता,सामान्य जीवन दृष्टि और आत्माभिव्यक्ति मिलकर अस्मिता का निर्णय करते हैं। यूरोप की श्रेष्ठता के सामने हमारी संस्कृति की अस्मिता अपना संघर्ष कर रही है तो भारतीय समाज की सवर्णवादी सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं प्रदर्शन के सामने दलितों की अस्मिता अपने संघर्ष के द्‍वारा भारतीय समाज में समता की स्थापना में संलग्न है।

अस्मिता का पहला कदम महानता से मुक्त होना है। समाज के मुट्ठी भर लोगों ने जन्मगत जाति के प्रमाण पत्र के आधार पर महानता को परिभाषित किया है। महानता के गुणगान सुनकर अपने को तुच्छ माननेवाले लोग इस परिभाषा को बदलकर नयी परिभाषा की तलाश कर रहे हैं। जाति से कुछ लोगों को यहाँ हमेशा के लिए महान रखा गया है जैसे कोई प्रोडेक्ट का ब्रांड नाम हो। जाति ही वह चीज़ है जो मानव को ब्रांड नाम देता है। जाति के बिना हिन्दू समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। जाति का प्रभाव इतना गहरा है कि समाज में व्यक्ति की पहचान उसके,गुण,कर्म और योग्यता से न होकर उसकी जाति से होती है।जाति व्यवस्था बंद

कोठरियों का एक मकान है। एक व्यक्ति जिस वर्ण या जाति में जन्म लेता है आजीवन उसी वर्ण अथवा जाति का सदस्य रहकर सुख या संत्रास भोगता है।

हिन्दू समाज जातियों में बँटा है। जातियाँ उपजातियों में बँटी हैं।उप जातियाँ कुल और गोत्र में।इस तरह पूरा समाज खंड -खंड में विभाजित हैं। सामाजिक एकता और प्रेम के साथ- साथ समाज और राष्ट्रीयता के विकास में भी जाति ने बडी बाधा उत्पन्न की है। इसने कभी भारत को एक सशक्त संपन्न और अखंड राष्ट्र बनने नहीं दिया। एक स्वयं को हिन्दु होने पर गर्व करता है दूसरा इसे अपना दुर्भाग्य और अभिशाप मानता है। जाति व्यवस्था के बारे में अंबेडकर कहते हैं– "श्रम का विभाजन नहीं श्रमिकों का विभाजन भी हुआ है, क्योंकि जाति व्यवस्था पर ही श्रम विभाजन खडा हुआ है।"[11]

1.2.2 हाशियेकृतों की अस्मिता

हाशियेकृतों को अस्मिताविहीन करने की परिस्थितियाँ भारतीय समाज में बहुत पहले ही उपस्थित है।उसने किसी न किसी रूप में इसका समर्थन दिया है। सवर्ण आर्य उनके वर्चस्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। हाशियेकृतों की स्व पर हमेशा आर्यों का अतिक्रमण होता रहा है। इससे मुक्त होने की इच्छा,अंग्रेज़ों का आगमन उनके द्वारा प्रचारित शिक्षाप्रणालियों ने भारतीय जनमानस को संस्कृति के खोटे पहलुओं पर तर्क की कसौटी पर कसने लगा। इसके परिणामस्वरूप समय समय पर आये सामाजिक परिवर्तन ने दलित जीवन और नारी जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। इससे उनका अस्मिता बोध धीरे- धीरे जाग उठा। एक से एक पीढ़ी आगे आने के साथ उनके जीवन में क्रमिक विकास और परिवर्तन आता रहा। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में ये अलग -अलग आंदोलन का रूप ले लिया। इन

आंदोलनों द्‌वारा अनेक दलित समाज -सुधारक हाशियेकृतों की अस्मिता की बात को लेकर मुख्यधारा समाज के सामने मोर्चाबंदी लिए खडे हो गये।

प्रत्येक आंदोलन के गर्भ से अपने अलग साहित्य का भी निर्माण हुआ। इनमें दलित आंदोलन अपनी सीमा लांघकर सभी हाशियेकृत वर्गों का वक्ता बन गया।

1.2.3 फुले -दलित अस्मिता का सूत्रधार

वैदिक काल से बौद्धकाल, फिर अशोक के काल से सामाजिक परिवर्तन की दिशा में अनेक महान पुरुषों ने जनम लिया। इनमें जोतिबा फुले का नाम अद्‌वितीय है। आधुनिक भारत में दलित आंदोलन के इतिहास में फुले पहले प्रवक्ता हैं। वे महान शिक्षाविद्, सामाजिक सुधारों के पुरोधा, अस्पृश्यता और जाति के कलंक को धोने केलिए आये महान कार्यकर्ता थे। उन्होंने दलित और अस्पृश्यों में ज्ञान तथा शिक्षा की किरणें बिखेरी, उनमें आत्मसम्मान की भावना जागृत की।

फुले का प्रादुर्भाव पुनर्जागरण और पुरातनवाद के संधिकाल में हुआ। फुले का जन्म पूणे में शूद्र माली जाति में 1827 को हुआ। इस युग में पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता से भारत के आभिजात्य वर्ग में एक नई चेतना आयी। लेकिन दलितों और शोषितों में इस चेतना का कोई प्रभाव नहीं पडा। महाराष्ट्र में अकेले फुले ने सामाजिक क्रांति का बीगुल बजाया। उन्होंने 25 साल की आयु में समाज में अपनी जगह बना ली। पूना जैसे धार्मिक कट्टरता के गढ में क्रांति का बीगुल बजाया। उन्होंने समानतावादी समाज की स्थापना केलिए दलितों में शिक्षा का प्रचार प्रसार किया। इसकेलिए उन्होंने पूणे को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। वे दलित और स्त्री शिक्षा के अग्रणी महापुरुष बन गये।उन दिनों अछूतों, शूद्रों और निम्न जातियों के बालकों को स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने केलिए हतोत्साहित किया जाता था। ऐसे समय में उन्होंने पूणे के दलित पिछडे वर्ग की कन्याओं केलिए अगस्त 1848 में पेठ मुहल्ले में

एक विद्यालय खोला। उसकी पत्नी सावित्री बाई बालिकाओं को पढाने लगी। यह दलित अस्मिता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम थी।

फुले ने लिखा - " मेरे भाईयों में से महार, मांग,चमार, कोल, माली जैसी अछूत शूद्र जातियों के नर नारी दुख, अंधकार ,अंधविश्वास और प्रवंचना के शिकार हैं। उनकी स्थिति सुधारने केलिए मेरे मित्रों ने सदैव मेरा उत्साह बढाया और साथ दिया। उनमें ऊँची जाति के भी मित्र थे। कई सौ मील की दूरी से अमेरिका से आकर फर्राट जैसी विदेशी युवा स्त्री शिक्षा के काम में तन्मयता से लगी है। पूर्व की दलित पिछडे वर्गों की कन्याओं केलिए मैं भी क्यों न एक पाठशाला खोल दूँ। इस समय महिला शिक्षा की नितांत आवश्यकता है। आगे वे शिक्षित बनेगी, तो संतानें स्वयं शिक्षित और सुसंस्कृत हो जाएगी।"[12]

ज्योतिबा फुले न ईसाई धर्म से प्रभावित है, न मुसलमान धर्म से। वे मानव धर्म के पूजारी हैं। सभी धर्मों में जो भी अच्छाईयाँ हैं उनकी प्रशंसा उन्होंने किया। उन्हें सच्चे मुसलमान और ईसाई से प्यार था। उनके अनेक सहयोगी और प्रेरक ब्राह्मण जातियों के थे। उन्हें आगे आने केलिए सबसे अधिक प्रेरणा ब्राह्मण जाति के लोगों ने दिया। उन्हें ऐसे कई ईसाई और मुसलमान मित्र भी थे जिन्होंने उनकी दलित क्रांति के मिशन में भरपूर सहायता और मार्गदर्शन दिया। वे व्यक्तिगत जीवन में किसी के विरोधी नहीं थे। लेकिन धर्म और जातिगत बुराईयों पर सशक्त प्रहार भी करते थे। "ना काहू से दोस्ती, न काहू से बैर,कबीरा खडा बाजार में सबकी मांगे खैर।"[13]

1.2.4 अंबेडकर - दलित अस्मिता के उन्नायक

सामाज के अन्यायों को जितना डॉ.अंबेडकर ने झेला है, उतना किसी अन्य समाज सुधारक ने नहीं झेला होगा। दलित जातियों में अंबेडकर सर्वप्रथम व्यक्ति है

जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। भारत में कहने केलिए तो बहुत अधिक समाज सुधारक हुए हैं। लेकिन अंबेडकर के समान सही अर्थ में क्रान्तिकारी ढंग से भारतीय समाज का सुधार करनेवाले और कोई सुधारक नहीं आये। वे भारतीय समाज में आमूल चूल परिवर्तन लाना चाहते थे।वे भारत की जर्जर परंपराओं को तोड़कर उसे मानवता के नये गहनों से सजाना चाहते थे। डॉ.अंबेडकर का दर्शन,उनका साहित्य और उनके द्वारा चलाया गया आंदोलन ही दलित समाज की सबसे बडी विरासत है।

अंबेडकर ने राजनीति के माध्यम से हाशियेकृतों की अस्मिता की स्थापना करने की बात पर जोर दिया। उन्होंने फुले के सामाजिक संघर्ष को राजनीतिक संघर्ष से जोडा। अस्मिता के संबंध में उनका विचार है - "अपनी पहचान होनी चाहिए और अपनी पहचान केलिए लडना और अस्मिता की भावना को जगाना उचित और स्वाभाविक है, जो केवल राजनीति के धरातल पर ही संभव है।"[14]

अंबेडकर का जन्म 1891 को इन्दौर के निकट महू कस्बे में हुआ। उनके पिता कबीरदास की क्रांतिकारी धारा से जुडे व्यक्ति थे। उनके पिता रामजी अंबेडकर महार बेटालियन में सुबेदार,मेजर थे। बचपन में ही अंबेडकर को अछूत होने का अभिशाप सताने लगा था। जन्म पर आधारित विषमता का शिकार होने के कारण अंबेडकर के मन में आरंभ से ही आक्रोश पैदा होने लगा था। बंबई के एलफिन्स्टन स्कूल से उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सत्यशोधक आंदोलन के आयोजकों ने उनके सम्मान में एक आयोजन किया। इसमें उन्हें गौतम बुद्ध के जीवन पर आधारित एक पुस्तक भेंट की। इस पुस्तक ने उनके जीवन और संस्कारों को ढालने में बहुत बडा योगदान दिया। बड़ौदा के महाराज शिवाजी राव ने होशियेदार अछूत बच्चों को पढने केलिए छात्रवृत्ति देने की घोषणा की थी। उन्होंने 25 रूपये माहवार अंबेडकर को छात्रवृत्ति देना शुरू किया। बी.ए प्राप्त करने के बाद महाराज

की दूसरी छात्रवृत्ति की सहायता प्राप्त कर उसने अमेरिका के कोलंबिया से एम .ए की उपाधि प्राप्त की। 1916 में पी.एच.डी प्राप्त किया। फिर उन्होंने लंदन स्कूल आफ इकणोमिक्स से शिक्षा ग्रहण किया।

1917 में दलित समाज आंदोलन जोरों पर था। महाराष्ट्र में प्रारंभ में ऊँची जाति में पैदा हुए नेताओं ने छुआछूत विरोध का आंदोलन चलाया था। लेकिन अंबेडकर इन्हें स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं थे। 1920 मे दलितों की भावनाओं को मुखरित करने केलिए उन्होंने 'मूकनायक' नामक पत्रिका निकाली।ऐसे अवसर पर दलितों के रक्षक के रूप में अंबेडकर को मान्यता मिली थी। अंबेडकर आज़ादी के साथ अछूतों को हिंदू धर्म से मुक्ति चाहते थे। उनके नेतृत्व में दलित जाति के लोग संगठित हो गये।

अंबेडकर के अनुसार दलित न हिंदू है न मुसलमान। इसलिए उन्होंने मुसलमानों की तरह दलितों को भी असंबली में आरक्षित सीटों की माँग की। गाँधीजी ने इस बात पर डॉ अंबेडकर का जमकर विरोध किया और अनशन शुरू किया। अंबेडकर पर गाँधीजी से समझौते केलिए चारों तरफ से दबाव डाला गया। अन्त में अंबेडकर को कुछ शर्तों पर गाँधीजी के साथ समझौता करना पडा। 24 सितंबर 1932 को हुए यह समझौता इतिहास में 'पूना पाक्ट' नाम से विख्यात है। दलित आंदोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण पडाव है पूना पाक्ट।

विदेशों से अपनी योग्यता के बूत्ते पर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाले अंबेडकर को ऊँचे पद पर नौकरी मिलने पर भी उचित मान्यता देने केलिए भारतीय सवर्ण संस्कृति तैयार नहीं हुई। चपरासी तक उनसे असहिष्णुता पूर्वक व्यवहार करता रहा। इससे उन्हें मालूम हुआ कि मात्र शिक्षा से दलित अस्मिता की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए उन्होंने दलितों से संघर्ष करने की उद्घोषणा की। उन्हें दलित जाति की

अस्मिता और उनके हितों की रक्षा केलिए सदैव संघर्ष करना पडा। अंबेडकर गांधीजी से दलितों के अधिकारों के विषय में गोलमेज़ परिषद में पूछा- " जिस देश और धर्म में हमें कुत्तों, बिल्लियों से भी बदत्तर माना जावे, जिस देश तथा धर्म में हम सार्वजनिक स्थानों पर पानी तक नहीं पी सकते उस देश को मैं अपना देश व मातृभूमि कैसे मानूँ। कोई भी स्वाभिमानी अछूत इस देश को अपना देश नहीं कह सकता। मुझ पर देशद्रोही होने का आरोप लगाया जा सकता है, पर मैं बुरा नहीं मानता। क्योंकि इसका उत्तरदायित्व सवर्ण हिंदुओं पर है। देश के हित में कोई घातक कार्य न हो इसका मुझे पूर्ण ज्ञान है। पर मैं अछूतों केलिए, उनके न्यायोचित अधिकार हेतु, अंतिम क्षण तक संघर्ष करता रहूँगा।"[15] उन्होंने 'समाज समता संघ' की स्थापना की और अछूतों के नागरिक अधिकार केलिए काम करते रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भी दलितों को पूरे मानव अधिकार न मिलने पर अंबेडकर ने भारत सरकार के कानून मंत्री के पद से इस्तीफा देकर दलितों के हितों केलिए 'रिपब्लिक पार्टी' बनायी। वामपंथी दल दलितों के हितों के रक्षक तो कहते हैं, लेकिन जाति व्यवस्था का अन्त उनकी क्रान्ति या दर्शन का हिस्सा नहीं है। उसमें वर्ग संघर्ष ही दिखाई देता है। आर्थिक असमानता को ही वे सभी शोषण औऱ अत्याचारों की जड मानते हैं। अंबेडकर ने मार्क्स के दर्शनों को बाकी देशों के लिए तो हितकर माना , भारत केलिए नहीं। उनके अनुसार भारत केलिए परिवेशगत परिणाम की ज़रूरत है।दलितों केलिए आर्थिक क्रान्ति से पहले सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है।

राजनीतिक पार्टियों ने मज़दूरों और किसानों की मुक्ति केलिए आन्दोलन चलाया। राजनीतिक क्षेत्र में किसानों और मजदूरों की मुक्ति के आंदोलन से हटकर डॉ अंबेडकर ने दलितों को राजनीति में सम्माननीय दर्जा दिलाने के लिए आंदोलन

चलाया। साथ ही साथ उन्होंने अपने विचारों को व्यक्त करने केलिए भारतीय जाति -व्यवस्था और अन्य कुरीतियों पर अनेक लेख भी लिखे। ये लेख दलित आंदोलन और दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत तथा मील पत्थर बन गये।

महाराष्ट्र में महार और माँग जातियाँ अति शूद्र में आती हैं। डॉ अंबेडकर महार थे। नवजागरण के समय अन्य सवर्ण सुधारकों का ध्यान हिन्दु परिवार के सुधारों जैसे विधवा विवाह और बाल विवाह तक सीमित था, जिन्हें वे खुद महसूस किये थे। इसे दूर करने की भारी आवश्यकता उन्हें लगी। जाति -प्रथा तोडने के अर्थ में समाज सुधार इनका लक्ष्य नहीं था। अंबेडकर ने बताया कि देश के अन्दर एक ऐसा वर्ग भी है जो सदियों से असमानता का दर्दनाक उत्पीडन झेलता आ रहा है जो विदेशियों के साथ स्वदेशियों का भी गुलाम है। आदमी होने पर भी उनसे पशुवत व्यवहार किया जाता है। उन्होंने इन लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने केलिए आजीवन संघर्ष करने का दृढ निश्चय किया। उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को दलितों के खातिर मानवीय बनाने केलिए प्रयत्न किया। हिन्दू धर्म में सामाजिक सुधार लाने केलिए अंबेडकर ने अनेक सुझाव रखे। जैसे सभी हिन्दुओं द्वारा स्वीकृत एक प्रामाणिक ग्रन्थ हो, पुरोहित का आधार पैतृक नहीं होना चाहिए, धर्म का मूल्यांकन सामाजिक मानदंडों से नहीं किया जाना चाहिए आदि।

लंदन के गोल मेज़ सम्मेलनों में अंबेडकर ने अपने वर्ग के प्रत्यक्ष और स्थिर अधिकार केलिए माँग की। स्वराज के महत्व को उन्होंने कभी कम महसूस नहीं किया। स्वराज को हर भारतवासी का जन्म सिद्ध अधिकार वे मानते है साथ ही साथ भारत में रहनेवाले अछूतो को भी सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार जन्म सिद्ध मानते हैं। दूसरी गोलमेज में उन्होंने हरिजनों केलिए पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार प्राप्त किया।

अंबेडकर ने केवल दलितों केलिए नहीं लडा बल्कि सवर्ण समाज द्वारा अधिकार छीनकर हाशिये की ओर धकेल दिये नारी के उद्धार केलिए भी अथक परिश्रम किया। भारत के संविधान में अंबेडकर ने नारी मुक्ति के हित में क्रान्तिकारी बातों को रख दिया। उन्होंने अपने दलित आंदोलन में स्त्रियों को भी समान रूप से सम्मिलित किया। डॉ. अंबेडकर ने 1942 में नागपूर में, अखिल भारतीय माहिला सम्मेलन में महिलाओं को आगे आने का संदेश दिया। किसी राज्य की प्रगति का सही अंदाजा स्त्रियों में हुई प्रगति से ही लगाया जा सकता है।उन्होंने दलित महिलाओं को अपने पतियों के सामाजिक कार्यों में सहयोग देने का सलाह दिया। पति की दासी न बनकर मित्र बनने का उपदेश दिया।बच्चे कम पैदा करने और उन्हें अपने पैरों पर खडे होने पर ही शादी करने का आदेश दिया, वह भी उनकी राय के अनुसार। बेटी- बेटा दोनों को समान रूप से उच्च शिक्षा देने का संदेश दिया। पति यदि शराब पीकर घर में घुसे तो उनके लिए घर के दरवाजे बन्द करने की आज्ञा दी। उन्होंने दलितों में आत्मविश्वास जगाते हुए कहा कि इन थोडी सी बातों पर अमल करें तो निश्चय ही आपकी प्रगति हो जाएगी। 25 दिसंबर 1927 को महाड के ऐतिहासिक सम्मेलन में नारियों और दलितों की दासता का प्रमाण पत्र मनुस्मृति को जलाकर क्रान्ति का बिगुल बजाया।

हिन्दू धर्म की आचार संहिता में अपेक्षित परिवर्तन लाने केलिए अंबेडकर ने हिन्दूशास्त्रों का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किया, तथा विभिन्न हिन्दू विद्वानों, आचार्यों, शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों और न्यायविदों आदि से आदान- प्रदान किया। उन्होंने हिन्दू नारी के कल्याण को हिन्दू आचार- संहिता परिवर्तन अभियान में प्राथमिकता दी। अस्पृश्यों के बाद वे हिन्दू नारी को ही सर्वधिक उपेक्षित, अपमानित और प्रताडित जन समझते थे। हिन्दू कोड़ विधेयक के आधार पर भारतीय नारी विशेषकर हिन्दू नारी पर सदियों से चले आ रहे पुरुष के एकाधिकार को समाप्त

करना चाहते थे। नारी को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करना चाहते थे। हिंदू कोड़ विधायक के सवर्णों ने इसका जमकर विरोध किया।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंबेडकर ने दलितों को हिंदू समाज के अंग के रूप में दलितों को मान्यता देने केलिए बहुत कोशिश की। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया तो अंबेडकर ने दलितों को इस निकृष्ट जीवन से मुक्ति पाने केलिए और अपनी अस्मिता केलिए दलितों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने का उपदेश दिया। खुद 1956 में उन्होंने बौध धर्म स्वीकार करके अपने आप को दलित लेबल से मुक्त किया।

अंबेडकर ने हाशियेकृतों को शिक्षा अर्जन करने का संदेश दिया। साथ ही अपने परंपरागत निम्न दर्जे के गंदे कामों को त्यागने का आहवान भी दिया।अंबेडकर के प्रयत्न से दलित नारियों को ही नहीं उच्च वर्ग की नारियों को भी लाभ हुआ।

जयप्रकाश कर्दम अंबेडकर के बारे में लिखते हैं कि -"डॉ.अंबेडकर के अंदर एक अलग तरह का आवेग था। अधिकार केलिए संघर्ष करना उनका स्वभाव था। कालाराम मंदिर में प्रवेश और चावदार तालाब से पानी केलिए आंदोलन उन्होंने चलाया। इतना ही नहीं हिंदुओं का संविधान मानी जानेवाली मनुस्मृति की होली जलाने के साहसिक और आक्रामक कार्य जैसा दूसरा उदाहरण भारत के इतिहास में नहीं मिलता।"[16]

1.2.4.1 अंबेडकर दर्शन

अंबेडकर दर्शन व्यक्ति के रूप में उनकी वैचारिक अवधारणाओं का एकीकृत ढाँचा ही नहीं है, यह भारतीय संदर्भ में महान चेतना है जिसे हम भौतिकवादी दर्शन परंपरा कहते हैं। इस दर्शन के मूल में सदैव मनुष्य रहा है। भौतिकवादी दर्शन परंपरा चार्वाक, लोकायत, बुद्ध, नाथ, सिद्ध एवं भक्तिकालीन सूफीसंतों का सम्मिश्रित रूप है। लोहियावादी समाजवाद, गांधीवादी मानवतावाद, शोषणहीन समाज की कल्पना

करनेवाले मार्क्सवाद की जडें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारतीय दर्शन -परंपरा से जुडी हुई हैं। लेकिन अंबेडकरवाद इन तीनों से अलग है। क्योंकि ये तीनों कहीं न कहीं सवर्ण मानसिकता से प्रभावित हैं। रघुवीरसिंह अंबेडकरवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "अंबेडकरवाद कोई आसमान से टपका दैवी फल नहीं है। अपितु डॉ. भीमराव अंबेडकर के विशद एवं गहन अध्ययन, उनके सतत् संघर्ष का सुफल एवं सुपरिणाम है और सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक शासन व्यवस्था व समाज व्यवस्था के गहन अध्ययन का भी परिणाम है।"[17]

अंबेडकर दर्शन की नींव गौतम बुद्ध,कबीर दास और ज्योतिबा फुले का विचार है। डॉ.अंबेडकर ने इस बात को सदा स्वीकार भी किया है कि उनके ऊपर बुद्ध, कबीरदास और फुले का प्रभाव है। इस पर विचार करते हुए मोहन सिंह लिखते हैं कि -" कबीर ने उन्हें भक्ति मार्ग दिखलाया।ज्योतिबा फुले से उन्हें संघर्ष की प्रेरणा मिली। जो कुछ भी द्विजवाद के विरुद्ध उनका संघर्ष है उसकी प्रेरणा महात्मा फुले थे। बुद्ध ने उन्हें मानसिक व कायिक शांति का आदेश दिया।"[18]

वर्चस्व विरोध की प्रेरणा अंबेडकर को बुद्ध के संयक दर्शन, फ्रांस की क्रांति की स्वतंत्रता,समानता बंधुत्व के महान सिद्धान्त और कार्ल मॉक्स के वर्गहीन - शोषण विहीन समाज की अवधारणाओं से मिली है। क्योंकि उन्होंने इस प्रकार के दर्शन को क्रियान्वित करने से दलित समस्या का समाधान संभव माना। उनके अनुसार हिंदू समाज आज भी समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के पक्षधर नहीं है। अंबेडकर ने ऊँचे स्वर में ऐलान किया कि हिंदू धर्म में रहकर किसी का उद्धार नहीं होगा। इस दुखदायी स्थिति से मुक्ति पाने केलिए हिंदू धर्म से अलग रहने का उपदेश दिया। 4 अक्तूबर 1956 में वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए। अंबेडकर के बौद्ध धर्मांतरण से दलित अस्मिता का पुनर्जागरण आरंभ होता है। अंबेडकर महात्मा बुद्ध के उस उपदेश के

पक्षधर हैं जिसमें यह कहा गया है कि - " भिक्षुओं मैं नाव की भाँति धर्म की शिक्षा देता हूँ। वह पार होने केलिए है पकडकर बैठने केलिए नहीं। धर्म न खुद सडता है और न सडाता है, वह निरंतर नदी की पानी की तरह बहता रहता है और जग को आनंद से भर देता है।" [19]

अंबेडकर शोषणविहीन वर्गविहीन पाश्चात्य मॉडल भारतीय समाज की स्थापना करना चाहते थे।लेकिन इसका सशक्त विरोध ब्राह्मणों ने किया।स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सवर्णों ने इसका खूब विरोध किया।वे दलितों के पचेडे में न पडकर साम्राज्यवाद की बात करते रहते थे।अंबेडकर ने गांधीवाद को थोथी काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित माना है। अंबेडकर के आर्थिक दर्शन का सार यह है कि जब तक संपत्ति और उत्पादन में सबको समान अधिकार नहीं मिलता तब तक संपूर्ण जनशक्ति अपनी ऊर्जा को राष्ट्र को सुदृढ बनाने में नहीं लगा सकती। अंबेडकर ने सामाजिक क्रांति को प्राथमिकता दी थी।

डॉ. अंबेडकर दलित साहित्य के जनक तथा उनके प्राण तत्व हैं।दलित साहित्य अंबेडकर से इतना प्रतिबद्ध है कि ऐसा कोई भी दलित साहित्य नहीं मिलेगा, या ऐसी कोई दलित रचना नहीं मिलेगी जिसमें अंबेडकर के सिद्धान्त न बताया हो।डॉ रश्मि चतुर्वेदी के शब्दों में - "दलित साहित्य, चाहे वह देश के किसी भी भू भाग में,किसी भी भाषा में लिखा जा रहा है, उसकी आधारभूमि बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के विचार हैं। दलित साहित्य को समस्त ऊर्जा और प्रेरणा बाबा साहेब डॉ.अंबेडकर के विचारों और उनकी संघर्षशीलता से मिलती है।"[20]

अंबेडकर ने अपनी योग्यता और दक्षता के बल पर समाज में अपना स्थान बनाया था। उन्होंने अपने असीम ज्ञान ,साहस और हौसले से भारतीय इतिहास में अपना अमिट छाप छोड दिया है। उनके दर्शनों ने दलितों के ही नहीं भारतीय समाज

के सभी हाशियेकृतों के मन में अस्मिता की अंगारे डाल दिया। वे सुलग -सुलग कर धीरे- धीरे समाज के कूडे -कचरों को शनैशनै साफ कर रहे हैं। अंबेडकर दर्शन भारत की आत्मा को स्वच्छ बनाने का एक अभियान है।

1.2.5 दलित आंदोलन -अस्मिता का संघर्ष

सभी तरह के सामाजिक आंदोलन कुछ खास किस्म की व्याधियों का इलाज करने के लक्ष्य से सामने आये हैं। दलित आंदोलन मानवीय अधिकारों के हनन,जनजातीय संस्कृति के विनाश और नारी अधिकारों के हनन के कारण उत्पन्न हुए हैं। दलित आंदोलन की नींव बौद्ध धर्म के विचारों पर मिलता है। गौतम बुद्ध भारत के पहले दार्शनिक चिंतक हैं, जिन्होंने मनुष्य की समस्याओं का समाधान इसी भौतिक जगत में उसकी सामाजिक - आर्थिक संरचना में खोजकर नया रास्ता ढूँढ निकाला था। इस रास्ते को मध्यमार्ग कहते हैं। उन्होंने सबसे पहले घृणित सामाजिक व्यवस्था के रूप में प्रसिद्ध वर्ण - व्यवस्था पर प्रहार किया। लेकिन मानवता के प्रचारक बौद्ध धर्म और साहित्य आर्यों ने तहस नहस कर दिया। बौद्धों पर अत्याचार का बांध खोलकर छोड दिया। उनके विहारों को तोड दिया। उन्हें मार- मार कर लहू लुहान कर दिया, कत्ल ही कर डाला। सवर्णों के इतिहास में इतिहास के ये काले पन्ने गायब हैं।उसका अत्याचार यहीं पर खत्म नहीं हुआ, सवर्ण बौद्ध धर्म में घुसकर उसे विकृत बनाया, बौध धर्म की पवित्रता को ही नष्ट करके भोग में योग को समाहित किया। इस प्रकार समाज के निम्न अनार्य वर्ण की अस्मिता केलिए बनाए गए धर्म को आर्यों, पुरोहितों और क्षत्रियों ने मिलकर कहीं का नहीं छोडा। इस प्रकार दलितों की अस्मिता की पहली कोशिश न काम हुई।

1856 नवजागरण का युग था। इस समय भारतीय संस्कृति में नव चेतना आ गयी। भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक उन्नति केलिए बहुत सारे समाज सुधारक

सामने आये।अछूतों की अभाव-ग्रस्त दयनीय स्थिति को देखते हुए उनकी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति में परिवर्तन लाने केलिए इस समय देश के कई भागों में समाज सुधार आंदोलन हुए। लेकिन ये आंदोलन उच्च जाति के सुधारकों द्वारा प्रारंभ किये गये थे।इसलिए वह हिंदू समाज की विशेषकर अछूतों की सामाजिक,धार्मिक एवं राजनातिक स्थिति में कोई विशेष सुधार लाने की दृष्टि से सक्षम नहीं हुई। यह भी नहीं यह सामाजिक आंदोलन भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार केलिए न होकर औपनिवेशिक शासन तंत्र से मुक्ति केलिए किया गया था। इसके समान्तर देश के अन्य भागों में अछूतों ने भी अपनी समाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक सुधार केलिए छिट - पुट आंदोलन किये। पंजाब का आदि धर्मी आंदोलन, उत्तर प्रदेश के आग्रा क्षेत्र का जाटव आंदोलन, पूर्वी उत्तर प्रदेश का रविदास या केशवनारायण आंदोलन, मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ का सतनामी आंदोलन, महाराष्ट्र में फुले का आंदोलन,बंगाल का नाम शूद्र आंदोलन केरल में श्री नारायण गुरू का धर्म परिचालन आंदोलन तथा तमिलनाडु में पेरियार नायक का आत्म सम्मान संबधी आंदोलन प्रमुख रहे हैं। परन्तु इन आंदोलनों में भी सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त दलितों के राजनीतिक अधिकारों की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक आते- आते अछूतों द्वारा चलाये गये सामाजिक आंदोलनों के प्रमुख उद्देश्यों में आमूल परिवर्तन आ चुका था। गाँधी एवं भारतीय कांग्रेस के अतिरिक्त अस्पृश्यों की एक अलग राजनातिक शक्ति उभर कर आयी।यह तत्कालीन सामाजिक सत्ता में अछूतों की समान साझेदारी के साथ आर्थिक स्तरों की समानता,सामाजिक न्याय तथा उचित हिस्सादारी का मुद्दा भी उठायी।इसकेलिए देश के अलग -अलग प्रांतों में दलितों का संघर्ष भी हुआ।उनके इस छिट-पुटे संघर्ष ने बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारंभ में ही एक देश व्यापी रूप ले लिया था।इसके नेतृत्व में डॉ.अंबेडकर आए।

दलित आंदोलन भारतीय समाज का एक क्रांतिकारी आंदोलन है। अंबेडकर ने सन् 1927 से 1930 तक एक सुनियोजित आंदोलन चलाया। इसकी प्रमुख घटना है महाड का चावदार तलाब का आंदोलन।इंसान होने पर भी दलितों को पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता केलिए सवर्णों पर निर्भर रहना पडता था। दलितों को सवर्णों द्वारा इस्तेमाल करनेवाले किसी भी पानी के स्रोत को छूने का भी अधिकार नहीं था। इस अपमान को खत्म करने और दलितों को अधिकार दिलाने केलिए अंबेडकर ने सत्याग्रह शुरू किया। इस सत्याग्रह के द्वारा दलितों ने तालाब के पानी को छूकर अपने अधिकार को प्राप्त किया।मुक्ति की दूसरी कडी नासिक के कालीराम मंदिर का था।दलितों को हिंदू धर्म का अंग माना है।लेकिन उन्हें मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं दिया था।उन्हें मंदिर के आस -पास से ही भगाते थे।अंबेडकर ने काली राम मंदिर में प्रवेश करके दलितों के मंदिर प्रवेश के क्रांतिकारी कदम उठाया।दलित मुक्ति आंदोलन की तीसरी घटना है महाड में हिंदू संस्कृति की आचार संहिता मनुस्मृति का दहन।इस ग्रंथ को आधार बनाकर हिंदू धर्म और व्यवस्था ने मूलवासियों को अछूत बनाया और समानता के सभी अधिकारों से वंचित किया था।

लंदन में होनेवाले तीनों गोलमेज अधिनिवेशों में अंबेडकर ने दलित प्रतिनिधि बनकर भाग लिया था।इन अधिनिवेशों ने और 1932 के पूना पाक्ट से मिली आरक्षण तथा दलित मुक्ति आंदोलन के द्वारा किये गये संघर्ष के कारण दलितों में नव चेतना जाग उठी।वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गये।उनमें आत्मसम्मान और अस्तित्व के प्रति संघर्ष की भावना जाग उठी।इस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन से दलित जीवन में जागृति आयी।दलित जीवन में व्याप्त तिरस्कार, अपमान वेदना और शोषण को उखाड कर फेंकने केलिए क्रांति की दिशा में वे आगे बढने लगे।

अंबेडकर ने राजनीति का जो बीज दलित हितों हेतु पृथक निर्वाचन,इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी,शेड्यूल्ड कास्ट फाउंडोशन एवं आरक्षण के माध्यम से बोया है,अब वह आ.पी.आई एवं दलित पैंथेर्स के रूप में ठोस आधार प्राप्त कर चुका है। यहीं से दलित साहित्य की शुरुआत हुई।

दलित पैंथेर्स ने दलित शब्द को 1970 में पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर प्रचारित किया। दलित पैंथेर्स मराठी साहित्य की कोख से जन्मा है।इस राजनातिक आंदोलन ने भारतीय समाज में एक नयी बहस को जन्म दिया।दलित आंदोलन ने पहली बार सवर्ण साहित्य पर प्रश्न चिह्न लगाया कि वह यथार्थ की अभिव्यक्ति नहीं है। यहाँ से दलित कौन है,दलित साहित्य क्या है की लंबी बहस शुरू हुई।इससे दलित में एक नयी अस्मिता प्रचारित हुई।अछूतों के अनेक नामों के स्थान पर 'हम' नाम उसकी अस्मिता की पहचान बन गयी।

1.3 दलित साहित्य

दलित साहित्य का आरंभ भारतीय साहित्य के आरंभ से माना जाता है।वाल्मीकी और व्यास को दलित माने जाते हैं और उनके द्वारा रचित साहित्य में दलित साहित्य की नींव ढूँढने वाले तो ढूँढ सकते हैं।लेकिन असल में दलित साहित्य का आरंभ सातवें दशक में महाराष्ट्र में हुआ।मराठी साहित्य में यह प्रवृत्ति प्रभावशाली थी।आठवें दशक से अन्य भारतीय भाषाओं में भी दलित साहित्य का प्रभाव पडना शुरू हुआ।इस समय गुजराती, कन्नड, तेलुगु, हिन्दी और अन्य कुछ भाषाओं में भी दलित साहित्य लिखा जाने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो दलित साहित्य की प्रेरणा और प्रारंभ महात्मा बुद्ध से हुआ।मध्यकाल के संत कवि कबीर,रविदास,चोखामल, तुकाराम,एकनाथ , नामदेव,सहजोबाई आदि की परंपरा से होते हुए यह आधुनिक काल में ज्योतिबा

फुले,सावित्रीबाई फुले,ई.वी रामस्वामी नायकर और अंबेडकर तक पहूँच गये।अंबेडकर को दलित साहित्य का पथ प्रदर्शक माना जाता है।पुराण और इतिहास के कर्ण,एकलव्य,शबरी,शंबूक और झलकारी बाई आदि तिरस्कृत पात्र दलित साहित्य के नायक हैं।

बाबुराव बागुल की राय में- "दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है।व्यस्था अर्थात् द्वेष,मत्सर,शत्रुता,तिरस्कार की भावना।इसके विपरीत मूल्य अर्थात प्रेम, बन्धुत्व, समता,भ्रातृ- भाव पूर्ण शान्ति और समृद्धि।"[21]

महाराष्ट्र में डॉ अंबेडकर के नेतृत्व में दलित साहित्य अपनी जडें जमायी।वह कुछ ही सालों में पूरे भारत में फैल गये। संपूर्ण भारत के दलित अंबेडकर को अपना नेता मान लिया।प्रसिद्ध मराठी लेखक अर्जुन डंगल ने 1958 में हुए प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन से दलित साहित्य का आरंभ माना है।1972 में अमेरिका के ब्लाक पैंथर आन्दोलन से प्रभावित होकर मराठी के नौजवान लेखक नामदेव,ढसाल, अर्जुन डांगले और जी .वी पवार ने मुंबई में दलित पैंथर की स्थापना की। दलित पैंथर ने दलित साहित्य को केन्द्र में रखा।आज जिस जगह पर दलित साहित्य खडा है उसकी पृष्ठभूमि में दलित पैंथर आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है।

दलितों की अस्मिता और पहचान को आधार बनाकर,उसकी अस्मिता के संघर्ष केलिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित साहित्य की परिभाषा देते हुए डॉ.म.न वानखेडे कहते हैं- " दलित लेखकों द्वारा, दलितों के विषय में, लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है।"[22]

मुख्य धारा साहित्य में दलितों को कामुक,अपराधी,हिंसक और खतरनाक के रूप में चित्रित किया है। लेकिन दलित साहित्य दलितों को यह सीख देती है कि

दलित गुलाम वर्ग नहीं है,वे यहाँ के मूल निवासी हैं। इसलिए खुद को निकृष्ट न मानकर अपने उत्कृष्ट रूप को बाहर लाना चाहिए, और जो तुम्हें निकृष्ट मानकर तुम पर थूकते हैं उन्हें अपनी प्रतिभा के सामने नतमस्तक होने के लिए मजबूर किया जाय। इस प्रकार अपने दलितपन से मुक्त हो जाय।लेकिन यह काम एक दिन या एक साल से नहीं होगा। बरसों लगेगा। एक संपन्न,समृद्ध नागरिक संस्कृति के हकदार जनता को जिस प्रकार बरसों से तिल- तिल करके संस्कार शून्य बना दिया गया,उन्हें संस्कार संपन्न बनाने केलिए भी उतना ही समय लगेगा। प्रो. मैनेजर पाण्डे का कथन है - "दलितों को अपनी बात कहने का अब तक अवसर कहाँ था,अब वह अपनी बात स्वयं कहने की स्थिति में है, तब वह अन्य लेखकों के लेखन को खारिज करें।"[23]

दलित साहित्य दलित जीवन के यथार्थ को सामने लाता है। इसलिए इसमें अनुभूति की प्रामाणिकता अधिक है। इस पर हमेशा यह आरोप लगाया जाता है कि यह साहित्य को बाँटता है। लेकिन असल में इसमें संकीर्णता, कट्टरता या क्षेत्रीयता का आत्मबोध नहीं हैं। दलित साहित्य भाग्यवाद, ईश्वरवाद, पुनर्जन्म, आत्मा - परमात्मा आदि आस्तिक तत्वों को सामान्य जीवन की कसौटी पर कसते हैं।

दलित साहित्य की अवधारणा पर बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव है। अधिकांश दलित लेखक बौद्धदर्शन से प्रेरणा के से ज्यादा बौध धर्म को दलितों केलिए आवश्यक मानते हैं। मराठी दलित साहित्य बौध दर्शन से अभिन्न रूप से आबद्ध है।

दलित लेखक वे हैं जो दलितों के शोषण और अत्याचार के खिलाफ है।गैर दलित लेखकों के दलित जीवन संदर्भ पर किए गए लेखन के संवेदनात्मक तत्व आत्मानुभव और आप बीती के सामने फीके पड जाते हैं। सदियों- सह्राब्दियों तक दलितों ने जीवन के नरक की जिन यातनाओं को भोगा है,सामाजिक अपमान के

जिन दंशों को सहा है इसके बारे में दलितों के अलावा दलित पक्षधर बडे से बडे गैर दलित साहित्यकार भी नहीं कह सकते, क्योकि उनमें वह आप बीती नहीं है।

1.3.1 दलित साहित्य - गैर दलित साहित्य

दलित साहित्य के संबंध में हमेशा तर्क चलता रहता है कि दलित साहित्य और गैर दलित साहित्य में अन्तर क्या है। गैर दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य न मानने के संबंध में अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि – " ऐसे लोगों द्वारा लिखे गये साहित्य में दलितों के प्रति दया की भावना होती है, जिसके पीछे अपराध की भावना होती है। उनके परिवारिक संस्कार इतने गहरे व सुदृढ होते हैं कि विरोध के स्वर को तीखा होने नहीं देते। उनकी लेखन परंपराओं और मान्यताओं के गिरफ्त में फँसकर तमाम साहित्यिक गुणों के बावजूद एक बनावटी कथ्य में बदल जाता है।"[24]

कुछ विद्वान इस मत से सहमत नहीं है। दलितों के जीवन के शोषण, अपमान और उत्पीडन को गहराई से चित्रण करनेवाले गैर दलितों को वे दलित साहित्यकार मानते हैं। लेकिन ज्यादातर विद्वान दलित जाति में जनमे लेखकों को ही दलित लेखक मानते हैं और उनके द्वारा लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। डॉ प्रेम कुमार मणी दलित साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "दलितों के लिए दलितों द्वारा लिखा जा रहा है वही दलित साहित्य है। यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। संपूर्ण विद्वान इसकी दृष्टि है और पीडित मानवता इसका इष्ट हैं।"[25]

दलित साहित्य में दलितों के यथार्थ जीवन , दासता , आर्थिक लूट,सांस्कृतिक अपमान,धार्मिक उत्पीडन का सच्चा चित्रण है।ऐसा ब्योरा किसी भी गैर दलित साहित्य में नहीं मिलेगा।गैर दलितों के द्वारा दलितों पर लिखित साहित्य कला के

क्षेत्र में चाहे जितनी भी श्रेष्ठ हो,परकाय प्रवेश के बावजूद भी अनुभव शून्य होने के कारण यह प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। वह केवल सहानुभूतिपरक साहित्य ही कह सकता है।क्योंकि दलित जीवन के कुछ ऐसे पहलू होते है जो जाति सापेक्ष हैं और केवल उन्हीं के द्वारा अनुभव किये जा सकते हैं।ऐसे अनुभवों का प्रामाणिक चित्रण कोई गैर दलित लेखक वैसे नहीं किया जा सकता जैसे कोई दलित लेखक कर सकता है।

दलितों के बारे में गैर दलितों द्वारा लिखा साहित्य दलित साहित्य नहीं है।यह दलित लेखकों,विचारकों बुनियादी लोगों द्वारा अपनी समस्याओं, कठिनाईयों, अपने साथ हुई बेइंसाफियों, अपने पर होनेवाली अत्याचारी ज्यादातियों को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य है। तभी यह साहित्य अपना लक्ष्य पाएँगें।गैर दलितों द्वारा लिखा गया सहानुभूतिपूर्वक साहित्य पाठकों और साहित्य सम्मेलनों में ऊँचा नाम तो ज़रूर कमाएँगे।लेकिन वह आम दलित जनता तक नहीं पहूँच पाएगा।

1.3.2 दलित साहित्य का उद्देश्य

समय समय पर साहित्य के उद्देशय में बदलाव आया है। फिर भी अंतिम रूप में इसका लक्ष्य मानव कल्याण ही है। इक्कीस्वीं सदी में जीवन पहले से ज्यादा संकीर्ण हो गया है। इसलिए जीवन की समग्र अभिव्यक्ति के लिए साहित्य में आधुनिक युग में चार प्रवृत्तियाँ मिलती हैं – दलित साहित्य, नारीवादी साहित्य, आदिवासी साहित्य और परिस्थितिपरक साहित्य। ये सभी भारतीय समाज की गहराईयों में पैठकर, उसे विश्लेषित कर नए मानवीय मूल्यों को मानव के सामने रखते हैं। इसलिए इन सबका अपना अपना उद्देश्य अवश्य हैं।

दलित उत्थान ही दलित साहित्य का लक्ष्य है। इसके लिए बहुत सारे तत्वों को सामने रखते हैं- मानव में द्वेष, मत्सर, तिरस्कार, शत्रुता का भाव पैदा करनेवाली

वर्ण व्यवस्था का विरोध करना, दलितों के जीवन संघर्ष से जुडे हुए साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करना, परंपरागत मूल्यों का प्रचार -प्रसार करनेवाली रचनाओं को नवीन शैली में आलोचना करना, दलितों पर हो रहे अत्याचार और अमानवीय घटनाओं के खिलाफ दलितों में जागरण तथा चेतना लाना, परंपरागत साहित्य मान्यताओं को नकारते हुए अपनी अलग पहचान बनाना, वर्णवादी संस्कृति के कारण जिन वीरों को युग- युगों से खलनायक के रूप में घोषित किया है उनके खलनायकत्व को नकारना और उन्हें पुनर्मूल्यांकन करना, स्त्रियों को सम्मान देना तथा आधिकारों की उनकी लडाई में मदद देना आदि।

दलित साहित्य नयी सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक संरचना के निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न है। लेकिन मूल ढाँचे को बदलना आसान कार्य नहीं है। क्योंकि यह जन जन के रक्त में, दिमाग में ,आचार में समा गये है। धीरे- धीरे ही इसे निकाला जा सकता है। साहित्य क्रान्ति नहीं लाता, वैचारिक क्रान्ति के द्वारा सामाजिक परिवर्तन केलिए अनुकूल वातावरण तैयार करता है। साहित्य मानसिकता के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बहुजन समाज की अस्मिता तथा उनके स्वाभिमान की पुनर्रचना करना दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। यही दलित साहित्य की प्रासंगिकता है। शास्त्र के विरुद्ध साहित्य का शस्त्र उठाना समयानुकूल कदम है। दलित साहित्य जाति व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाता है। जाति के आधार पर किसी को छोटा या बडा मानने केलिए वह तैयार नहीं है।

1.4 निष्कर्ष

सामाजिक गतिविधियों से संबंध रखकर ऐतिहासिक परिदृश्य को अपने में समाहित करके एक नवीन समाज की स्थापना में दलित साहित्य आज कार्यरत है। दलित उत्थान के साथ सामाजिक उत्थान इसकी प्रमुख विशेषता है। बाबा साहेब

अंबेडकर के विचारों के आधार पर साहित्य धारा के रूप में प्रवाहित यह साहित्य दलित जीवन की ओर रखी आईना है। साहित्य समाज का दर्पण है। लेकिन भारतीय साहित्य के दर्पण में उच्च वर्ग और मध्यवर्ग तक के लोगों की छवि ही प्रतिबिंबित हुई थी। दलित साहित्य में आम आदमी का चेहरा अपने सही रंग के साथ उभरा है।

भारत की आबादी के अस्सी प्रतिशत लोग हाशियेकृत हैं। इनमें ज्यादातर गाँवों शहरों, कस्बों और जंगलों में कीडे -मकौडों की जिन्दगी जी रहे हैं। भारत के शहरों को कितना भी है-टेक बना दिया जाय, इन लोगों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर ऊँचा किये बिना हिन्दुस्थान नहीं चमकेगा। दलितों को ऊपर उठाने के लिए बनायी गयी योजनाओं का गुण कभी - कभी उन तक नहीं पहूँच पा रहे हैं। फिर भी सरकार की ओर से अनेक कोशिशें अब भी हो रही हैं। दलितों के उत्थान के लिए दलितों की ओर से भी अनेक प्रयास हो रहा हैं। इनमें दलित साहित्य एक महत्वपूर्ण कदम है।

दलित लेखक ब्राहमणवादी सोचवाले साहित्य को दलित साहित्य की श्रेणी में लाने केलिए तैयार नहीं हैं। साथ ही साथ दलितों के दुख -दर्द और शोषण को छोडकर प्रेम -प्रकृति आदि विषयों पर साहित्य सृजन करनेवाले दलित लेखकों को भी मानने केलिए तैयार नहीं हैं। सामाजिक बदलाव केलिए संघर्षरत राहुल सांकृत्यायन जैसे लेखकों को अपना प्रेरणा स्त्रोत मानने केलिए भी वे तैयार हैं।

दलित शब्द व्यापक परिभाषा लिये हुए है। दलित साहित्य अंबेडकर द्वारा भोगे यथार्थ और उनकी विचारधाराओं से ही उद्भूत है। यह अब दलित साहित्यकारों के हृदय से अंतर्सलिल होकर साहित्य में प्रवाहमान है। अंबेडकर के जीवन संघर्ष में जो अनुभूति थी वही अनुभूतियाँ आज दलित साहित्य का मौलिक आधार सिद्धान्त है। दलित होने की पीडा का दंश दलितों को आत्म सम्मान से न जीने देता है न मरने।

आज दलित साहित्य दलित उद्धान के सीमित दायरे को तोडकर दलन की सीमा में आनेवाले सभी वर्गों को अपने में समा लिया है। नारी उत्पीडन और श्रमिक उत्पीडन के विरुद्ध खुला विरोध भी इसका लक्ष्य है। दलितों में अस्मिता का बोध जगाना, आशा का संचार करना, संगठित होकर अपने अधिकारों केलिए लडने का भाव पैदा करना ये ही दलित साहित्य का मूल प्रतिपाद्य हैं।

अतीत का साहित्य आभिजात्य वर्ग का था इन्होंने उसे जनवर्ग का बनाया।अब हाशिये के लोग हाशिये से विषयवस्तु, चरित्र, कथानक आदि को लेकर सृजन के क्षेत्र में आ गये हैं।उन्हें इसकेलिए जगह देना दूसरे लोगों का कर्तव्य है।

संदर्भ सूची

1. डॉ.दोड्डा शेष बाबू	दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य	पृ 19
2. डॉ.श्यौराज सिंह बेचैन और देवेन्द्र चौबे	चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य	पृ 106
3. रमणिका गुप्ता	आदिवासी कौन	पृ 29
4. एस .एल.दोषी और पी.सी जैन	भारतीय समाज संरचना और पिरवर्तन	पृ153
5. रमणिका गुप्ता	दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सारोकार	पृ 134
6. डॉ. चमन लाल	भारतीय साहित्य में दलित और स्त्री लेखन	पृ 20
7. माता प्रसाद	हिंदी साहित्य में दलित काव्य धारा	पृ 2
8. अभय कुमार दूबे	आधुनिकता के आईने में दलित	पृ 209
9. कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 31
10. जयश्री. एन	उपन्यासकार कृष्णा सोबती एवं नारी अस्मिता	पृ12
11. नागफणी	जनवरी 2012	पृ 12
12..आर.चंद्रा और कन्हैयालाल चंचरिक	आधुनिक भारत का दलित आंदोलन	पृ 28
13.. आर.चंद्रा और कन्हैयालाल चंचरिक	आधुनिक भारत का दलित आंदोलन	पृ 50
14. साक्षांत मस्के	परंपरागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य	पृ 32
15. साक्षांत मस्के	परंपरागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य	पृ 33
16. डॉ नामदेव	आलोचना की तीसरी परंपरा और जयप्रकाश कर्दम	पृ 44
17. युद्धरत आदमी	अप्रैल - जून 2003	पृ 56
18. मोहनसिंह	डॉ.भीमराव अंबेडकर -व्यक्तित्व के कुछ पहलू	पृ 9

19. कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 85
20. डॉ. रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 219
21. काली चरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 88
22. काली चरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 89
23. नागफणी	अगस्त- अक्तूबर 2012	पृ 9
24. काली चरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 90
25. डॉ.दोड्डा शेष बाबू	दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य	पृ 9

दूसरा अध्याय

हिंदी दलित साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी का दलित लेखन एक साहित्यिक धारा के रूप में सामने आया ।हिंदी दलित लेखकों को मराठी के दलित लेखकों से प्रेरण मिली। हिंदी में सर्वप्रथम कमलेश्वर ने 1975 में सारिका के दो दलित साहित्य विशेषांक प्रकाशित करके हिंदी साहित्य जगत में दलित साहित्य को परिचित कराया।इसके बाद डॉ.महीप सिंह ने भी संचेतना का एक अंक दलित साहित्य विशेषांक के रूप में संपादित किया।इसे हिंदी की मुख्यधारा साहित्यकारों ने आश्चर्य से देखा।'निर्णायक भीम' जैसी पत्र -पत्रिकाओं में भी दलित साहित्य छपने लगा। जैसे 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा 'तथा 'हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग। इस प्रकार हिंदी दलित साहित्य धीरे -धीरे बढने लगा। 1980 में हिंदी दलित साहित्य एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। 'भारतीय दलित साहित्य मंच' और 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना से हिंदी दलित साहित्य को एक पहचान मिली।

दलित आंदोलन की भट्टी में तपकर जो साहित्यकार सामने आये हैं उन्होंने सब हिंदी दलित साहित्य को समृद्ध बनाया।हिंदी दलित साहित्यकार दलित समाज के ऐतिहासिक संदर्भों को अपनाते हुए दलित जीवन के यथार्थों से जुड़कर इनकी अस्मिता से जुड गये।

2.1 दलित उपन्यास

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में आधुनिक दलित उपन्यास का एक प्रवाह ही हुआ। दलित आत्मकथा और कविता से प्रेरणा पाकर दलित उपन्यास का विकास हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व दलित उपन्यासों की जानकारी अभी तक नहीं मिला है। स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी दलित उपन्यासों की कुछ जानकारी मिली है। देवी दयाल सेन का 'मानस की परख' 1954 में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रामजी सहायक द्वारा

रचित उपन्यास 'बंधन मुक्त' प्रकाशित हुआ। इसी क्रम में दंगली प्रसाद (डी.पी) वरुण का 'अमर ज्योति' 1982 में और धर्मवीर का उपन्यासनुमा यात्रावृतांत 'पहला ख़त' 1989 में आये। 1994 में जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' और 1995 में प्रेम कपाडिया का 'मिट्टी का सौगंध' प्रकाशित हुआ।

2.1.1 मानस की परख

'मानस की परख' की नायिका रानी विधवा हो जाती है।जमीन्दार के कुचक्र से वह अपने आप को बचाने की कोशिश करती है।लेकिन अंत में सेठ की कुदृष्टि का शिकार हो जाती है।रानी को तीन प्रकार के अभिशापों को झेलनी पडती है। एक अछूत जाति का,दूसरी उसकी आर्थिक दशा कमज़ोर होने का और तीसरा उसकी विधवा होने का।समाज में आज भी नारी की स्थिति नहीं बदली है।आजादी के बाद के दलितों और गैर दलितों के सामाजिक संबंधों और उनकी मानसिकता का खुलासा इस उपन्यास में सुंदर ढंग से किया है।उपन्यास स्वतंत्र भारत की सच्ची तस्वीर पेश करता है।

2.1.2 बंधन-मुक्त

डॉ रामजीलाल के 'बंधंन मुक्त' उपन्यास का नायक शिवराज चमार जाति का है।वह बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली और आर्थिक रूप से विपन्न है।वह अनेक पुरस्कार भी जीता है।शिक्षा के प्रति उसकी रुचि प्रेरणादायी है।वह मेहनत करके अपने साथ छोटी बहन शीला को भी शिक्षा दिलाता है।इस उपन्यास में दलित शिक्षा के प्रचार - प्रसार पर बल दिया है।

2.1.3 अमर ज्योति।

'अमर ज्योति' डी.पी वरुण का उपन्यास है।1982 में लिखा यह उपन्यास अंबेडकरवादी दृष्टिकोण पर आधारित है।'अमर ज्योति' दलित- गैर दलित प्रेम कहानी है।इसका नायक अमर चमार जाति का है और नायिका ज्योति ब्राहमण जाति की।ये दोनों डॉक्टर हैं।धीरे धीरे इनमें प्यार होता है।अमर की बातों से प्रभावित होकर वह जाति का विरोध करती है।वह अपने परिवारवालों को जाति का यथार्थ समझाने में सफल हो जाती है।अमर और ज्योति की शादी होती है। यह उपन्यास अंतर्जातीय विवाह की सामाजिक समस्याओं का समाधान के रूप में प्रस्तुत होता है।इस उद्देश्य से ज्योति के पिता का हृदय इस सीमा तक परिवर्तित दिखाया है कि वह अपनी निजी संपत्ति में से एक अस्पताल बनाता है।अंत में यह राज़ खुलता है कि इसके खलनायक और अमर जुडवा भाई है।उपन्यासकार यह स्थापित करना चाहते हैं कि जनम से कोई अच्छा-बुरा और ऊँच- नीच नहीं हो सकता।व्यक्ति का व्यक्तित्व परिवार, समाज और वातावरण के प्रभाव से बनता- बिगडता है।

2.1.4 पहला खत

डॉ. धर्मवीर ने 1996 में इस उपन्यास की रचना की। यह एक ऐसी रचना है जिसे लेखक ने स्वयं संस्मरण,यात्रावृत्तांत, निबंध,आत्मकथा,समीक्षा, कहानी, पत्रकारिता और पत्र साहित्य का मिला जुला रूप कहा है।लेखक ने अपनी रेल यात्रा के दौरान रेल यात्रा में वर्ग भेद को भी चिन्हित किया है। 'पहला खत' वर्णव्यवस्था के विरूद्ध लिखा गया खत है।पात्र चयन में लेखक ने नायिका के रूप में काल्पनिक अनाम सखी को संबोधित किया है। स्वयं नायक की भूमिका निभायी है।प्रदेश की विभिन्न समस्याओं को हमारे सामने उजागर किया है।

2.1.5 करुणा

जयप्रकाश कर्दम का पहला उपन्यास 'करुणा' 1986 में प्रकाशित हुआ।यह बौद्ध धर्म की पृष्ठभूमि पर लिखित एक छोटा सा उपन्यास है।इसका नायक रेशम और नायिका करुणा है।रमेश की बहन रीता अपनी ससुराल का वंश चलाने में सफल नहीं होती।उसपर अत्याचार इस हद तक बढ़ जाता है कि वह आत्महत्या कर लेती है।सूरज रमेश पर उसकी बहन की हत्या का आरोप लगाया।रमेश को सज़ा होता है।रमेश करुणा से प्यार करता है। रमेश की सज़ा से करुणा टूट जाती है।उसे जीवन से विरक्ति होने लगती है।वह भिक्षुणी बन जाती है।रमेश जब जेल से आता है करुणा को भिक्षुणी देखकर वह भी भिक्षुक बन जाता है।

2.1.6 छप्पर

जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' उपन्यास शिक्षित हो,संगठित हो और संघर्ष करो की अंबेडकर नारा का सफल प्रस्तुतीकरण है। शान्त गंभीर दिखनेवाला चंदन अंबेडकर का प्रति रूप जैसा लगता है।

मातापुर गाँव का चंदन उच्चशिक्षा केलिए शहर जाता है।वह शहर में हरिया के घर में किराये पर रहकर पढाई करता है। हरिया चंदन को बेटा मानता है इसलिए उससे किराया नहीं लेता।समय -समय पर पैसा देकर उसकी पढाई में मदद भी करता है। चंदन पढाई के दौरान शहर की बस्ती के लोगों को इकट्ठा करके दलितों में अस्मिता जगाने केलिए काम करता है।चंदन बस्ती के बच्चों को शिक्षा देने केलिए एक स्कूल भी खोलता है।इस सिलसिले में उसकी मुलाकात कमला से हुई।कमला एक बिन ब्याही माँ है।वह लंपट मालिक और उनके दोस्तों के हवस के शिकार होने के कारण माँ बन गयी थी। उसकी कहानी सुनने के बाद चंदन के मन में उसके

प्रति श्रद्धा का भाव पैदा होता है। बाद में उसे मालूम होता है कि कमला हरिया की बिछुडी बेटी है।वह बाप और बेटी को मिलाता है।

हरिया और उसकी बेटी कमला कदम कदम पर चंदन की सहायता करते हैं।गाँव के ठाकुर हरनाम सिंह की बेटी रजनी,जो चंदन की स्कूली सहपाठी थी उससे प्यार करती है।रजनी पिता के दलित विरोधी कार्यों का विरोध करती है। वह ठाकुर द्‌वारा गाँव से निष्कासित चंदन के माँ बाप की देखभाल करती है।चंदन का आंदोलन शहर से निकलकर गाँव तक पहँचता है। आंदोलन मातापुर गाँव में समता की खुशहाली फैलाता है।न बदलने की हठ करनेवाले ठाकुर के मन बेटी की उपेक्षा और समाज के परिवर्तन से बदल जाता है।चंदन के विरोधी उस पर आक्रमण करते हैं। लेकिन कमला उसे बचाती है और मर जाती है।चंदन और रजनी उसके बेटे को अपने बेटे के रूप में स्वीकारते हैं।

2.1.7 मिट्टी की सौगंध

प्रेम कपाडिया के इस उपन्यास में सामाजिक अन्याय के विरुद्ध दलित आंदोलन का व्यापक स्वर उभरा है।लेकिन दलित आंदोलन का नेतृत्व विजेंद्र नामक एक गैर दलित युवा करता है।वह अपने पिता ठाकुर मदन सिंह के विरुद्ध विद्रोह करता है।मदन सिंह जमींदार है।उसकी हवेली राजमहल के समान है।गरीब,दलित और बेसहारे महिलाओं पर उसका आतंक छाया हुआ है।उसकी हवेली महिलाओं के शारीरिक अत्याचार का केंद्र है।उसका बडा बेटा शमेन्द्र और हवेली के अन्य रखवाले हालात की मारी दलित लडकी गंगा की गरीबी का अनुचित लाभ उठाकर उसके शरीर को नोचते है,तो मदन सिंह ने एक विधवा माँ की बेटी शीला का बलात्कार किया।

ठाकुर का छोटा बेटा विजेंद्र गरीबों और दलितों के प्रति हमदर्दी रखनेवाला है।उसने शीला और गंगा को अपने फॉमहाउस के दफ्तर में काम दिया।वह पिता से

विद्रोह करता है और दलितों के पक्ष में खडा होकर 'न्यायसेना' का संगठन किया।वह शीला से प्यार करने लगा।वह शीला की ओर से थाने में बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज करवाता है।मदन सिंह विजेंद्र के खिलाफ षड्यंत्र रचता है।विजेंद्र को हवेली में बुलाकर दोनों की शादी कराता है। मदन सिंह दोनों को मारने केलिए योजनाएँ बनाता है।धोखे की सूचना मिलते ही विजेंद्र शीला के साथ हवेली छोड़ता है और सीतापुर में रहता है।मदनसिंह के आदमी दोनों का पता लगाता है और उनपर हमला करता है।लेकिन विजेंद्र अपने दारोगा मित्र की सहायता से प्रत्याक्रमण करता है।पुलीस मदन सिंह को गिरफ्तार करता है।

2.1.8 जस तस भई सवेर

जस तस भई सवेर दलित जीवन के अंधविश्वास,विवशता और प्रतिरोध की मार्मिक कथा है।यह 1999 में प्रकाशित है।शीर्षक से ज्ञात होता है कि जैसै तैसे सवेरा हुआ अर्थात दलितों में चेतना जागी है।इसमें दलित नारी पर होनेवाले बलात्कार की त्रासदी का समाजशास्त्रीय विवेचन हुआ है।इसमें घृणित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध दलितों का प्रतिरोध है।

हंसा और सरवन मंगल पहलवान के बेटे हैं।सरवन पढा लिखा है।वह अपनी कमाई घर में और बच्चों की पढाई में खर्च करता था।हंसा का मन पढाई में नहीं लगता था।इसलिए उसने पढाई छोडकर अघाडे में उतर गया और पिता के समान पहलवानी का काम करने लगा।पहलवानी में काफी नाम कमाया।लकिन गरीबी के कारण बाद में खेती-बाडी करने लगा। हंसा जाहवीर का भक्त था।उनकी भक्ति,भक्ति के स्तर को पार करके अंधश्रद्धा के स्तर पर पहूँच गया था।भगत, जाहरवीर और उनके बीच की कडी है।जाहवीर को प्रसन्न करने केलिए भगत जो भी कहता है वह सब हंसा करता था।सरवन इसका विरोध करता है।हंसा भगत के बहकावे में आकर

भाई सरवन को दुश्मन मानने लगता है।सरवन की उन्नति पर ईर्ष्या करने लगता है।वह अपने घर के सभी दोषों का कारण सरवन को मानता है।चौधरी और भगत सरवन की हानी केलिए योजना बनाते हैं तो हंसा उनका साथ देता है।

सरवन का जेष्ठ पुत्र शिवदास राष्ट्रीय बैंक में काम करता है।वह अपनी कॉलिज की दोस्त सुमेधा से प्यार करता है। सुमेधा अमीर ब्राह्मण कन्या है।इसकी जानकारी मिलते ही घरवाले सुमेधा को घर में बंद करता है।घरवाले उसकी शादी बिरादरी का लडका सुशांत से करना का फैसला किया। सुमेधा कामी,लंपट सुशांत से शादी करना नहीं चाहती थी।सारी प्रतिबंधों को तोडकर शिवकुमार और सुमेधा कोर्ट में शादी करते हैं।

चौधरी की छल कपड और भगत की अंधश्रद्धा के कारण हंसा का परिवार गरीबी में फाँसता चला गया।गाँव के बैंक में तबादला लेकर आनेवाले शिवकुमार को बैंक मैनेजर और चौधरी ने मिलकर झूठे केस में फँसाता है।बेटे की बीमारी दूर करने का विश्वास दिलाकर हरसना भगत और चौधरी नशा देकर हंसा की पत्नी का बलात्कार करते हैं।हंसा इसके बारे में पूछने केलिए जाता है तो दोनों मिलकर उसे मारता है।यह खबर मिलते ही मंगल पहलवान लाठी लेकर भगत और चौधरी को मार मारकर सबक सिखाता है।हंसा और सरवन एक हो जाता है हंसा के सिर से अंधविश्वास का भूत उतर जाता है।

2.1.9 मिस रमिया

कावेरी द्वारा रचित मिस रमिया उपन्यास दलित साहित्य में कई मायनों में विशेष महत्व रखता है।पहला महत्व यह है कि हिंदी में दलित लेखन में किसी दलित लेखिका का अभी तक आया पहला उपन्यास है।दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह स्त्री प्रधान उपन्यास है।इसके प्रमुख पात्र दलित और कायस्त जाति की दो

नारियाँ हैं।कावेरी उपन्यास के माध्यम से भविष्य में दलित सवर्ण समाज की महिलाओं द्वारा एकजुट होकर लडी जानेवाली बृहद लडाई की उद्घोषणा करती है।

मिस रमिया दो नारियों की कहानी है जो शिक्षा के माध्यम से पुरुष सत्तात्मक समाज में अपनी अलग पहचान बनाती है।रमिया दलित है और शमी कायस्त।यह उपन्यास उनके स्कूली जीवन से शुरू होता है और नौकरी पाकर समाज में एक अच्छी प्रस्थिति प्राप्त करने पर समाप्त हो जाता है।रमिया और शमी दोस्त हैं।दसवीं पास करने के बाद शमी की शादी होती है।रमिया घर में ही स्कूल खोलती है। वह गरीब बच्चों को निशुल्क पढाती है।सवर्ण माधो चाचा इसे सरकारी स्कूल बनाता है और अपनी भतीजी को प्रधान अध्यापिका बनाती है।रमिया केवल अध्यापिका बन जाती है।

शमी का पारिवारिक जीवन अभावों से गुज़र रहा था।कठिनाईयों से जूझ रही शमी को स्कूल में नौकरी मिलती है। माधो चाचा और मधु ने मिलकर रमिया के विरूद्ध षटयंत्र रचते हैं इसकी जानकारी मिलने पर शमी रमिया को इस आक्रमण से बचाती है। रमिया किसी से लडना नहीं चाहती थी।स्कूल के अधिकार के चक्कर में न पडकर वह अपनी पढाई ज़ारी रखती है।शमी उसका साथ देती है।

शमी और रमिया आगे पढती है।इंटर पास करने के बाद शिक्षा प्रशिक्षण केलिए कोलिज जाती है।दलित होने के कारण रमिया को सवर्ण छात्राओं से अनेक कठिनाईयाँ सहनी पडी।होस्टल में शमी ही रमिया की एक मात्र सहारा थी। उपेक्षा और उत्पीडन को हराकर रमिया प्रथम अंक में पास होती है।शमी द्वितीय श्रेणी में।रमिया को शहर के बडे कंपनी स्कूल में नौकरी मिलती है।शमी गाँव के स्कूल की प्रधान अध्यापिका बन जाती है।दोनों मिलकर दलित चेतना और नारी सम्मान केलिए काम करने लगीं।

2.1.10 थमेगा नोहीं विद्रोह

आज से सत्तर वर्ष पहले के कालखंड को केंद्र में रख कर उमराव सिंह जाटव ने 2008 में थमेगा नहीं विद्रोह नामक उपन्यास की रचना की।प्रस्तुत उपन्यास में दिल्ली से सटे उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर,दादरी नामक क्षेत्रों के आसपास बसे,विशेष रूप से दरियापुर के गांव के सामन्ती जीवन का गहराई से चित्रण हुआ है।यह उपन्यास दरियापुर गाँव के कई दशकों की जिंदगी को अपने आप में समेटा है।व्यापक जीवन संदर्भों में बदलती हुई परिस्थितियों के अनगिनत कोलाज़ प्रस्तुत करता है।इसमें पात्रों की संख्या अधिक हैं।

'थमेगा नहीं विद्रोह' एक आँचलिक उपन्यास है इसकी कथातंतु दरियापुर गाँव के गूजर और जाटव संघर्ष है।गूजर सवर्ण है और जाटव दलित।गूजर जाटवों के कुएँ पर कब्जा करता है।जाटवों की बस्ती में एक ही कुआँ था इसलिए वे गूजरों के पास विनती करने जाते हैं।गूजरों के चौदह साल का लडका जाटवों के सत्तर साल के मथुरा को जूतों से मारा।यहीं से गूजर और जाटवों का संघर्ष शुरू हुआ। केस बन गया।केस में जाटवों की जीत हुई।यह गूजरों की प्रभु सत्ता पर लगा पहला धक्का था।इसका बदला गूजरों ने सशक्त रूप में किया।

गूजर जाटवों से समझौता करने केलिए तैयार हुआ।लेकिन मथुरा इस समझौते को अस्वीकार करने केलिए कहता है लेकिन जाटव समझौता स्वीकार करता है।मथुरा कानून द्वारा जाटवों का अधिकार पाना चाहता था।मथुरा उफनकर आयी इस विद्रोह को थमाना नहीं चाहता था।इस कहानी के बीच में भागमली कथा,चावली की कहानी और तुले की अस्मिता की लडाई की कहानी भी चलती हैं।

दरियाव इस कहानी का प्रमुख पात्र है।इसकी कहानी को तीन भागों में बांट सकता है,दरियाव का बचपन,यौवन और वर्तमान।

2.1.11 उधर के लोग

अजय नावरिया का उपन्यास 'उधर के लोग' महत्वपूर्ण रचना है।इस उपन्यास की मुख्य कथा आज के पढे लिखे नौकरी पेशा दलित वर्ग से संबंधित है।

पन्ना इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है।वह भंगी जाति का है।उसके पिता नगरपालिका में सफाई का काम करता था।कठिन परिश्रम करके पन्ना शिक्षा प्राप्त करता है।एम ए के बाद पी.एच.डी करके वह एक कॉलेज में अध्यापक बन जाता है।वहाँ वंदना नामक छात्र उसे प्यार करती है।वह ब्राह्मण है।धीरे -धीरे वह भी उसे प्यार करने लगता है।परिवारवालों के विरोध को नज़रअंदाज करके वे शादी करते हैं।वंदना की पोज़सीव चरित्र से उनके पारिवारिक जीवन में परेशानियाँ लाता है। वंदना आत्महत्या कर लेती है।पन्ना को छह साल की सज़ा मिलती है।बाद में परिवार वाले उसकी शादी संगीता से कराते है।उसने पहली शादी के बारे में संगीता से कुछ नहीं बताया था।जब वह इसके बारे में जानती है तो बहुत दुखी हो जाती है और घर छोड़कर चली जाती है।

इस बीच पन्ना की जिंदगी में आईशा नामक एक वेश्या आती है।वह उसका दोस्त बन जाती है।संगीता पन्ना से अलग रह कर भी उसके परिवार से जुडी ही रहती है।पन्ना अपने पढ़े लिखे दोस्तों को मिलाकर एक संघ बनाता है।यह समिति एक पिछडा गाँव गोद लेता है।अंत में एक बच्ची पैदा होने के बाद पन्ना और संगीता एक हो जाते हैं।इस उपन्यास के बीच -बीच में दलित संगठन और दलितों के बीच में रह रही कुछ समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।पूरा उपन्यास पन्ना के जीवन के चारों ओर चलता है।

2.1.12 मुक्ति पर्व

मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्ति पर्व'1999 में प्रकाशित हुआ।यह दलित मुक्ति के सपनों पर आधारित उपन्यास है।इसमें नैमिशराय जी ने भारत की दूसरी आज़ादी जो सामाजिक गुलामी से तड़पे दलितों की आज़ादी है,इस पर विचार किया है। 'दलितों के लिए मुक्ति पर्व कब आएगा...' उपन्यास का मुख्य सरोकार इस सवाल के इर्द गिर्द घूमता है। देश 1947 में आज़ाद हो गया। किन्तु यह आज़ादी केवल राजनीतिक आज़ादी थी,अब सामाजिक आजादी बाकी है।सामाजिक आज़ादी दलितों, पिछडों, आदिवासियों और स्त्रियों की मुक्ति के बिना संभव नहीं है।उपन्यास में आज़ादी के पहले और बाद दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के पडताल करते हुए उनकी स्थिति में आये परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है।

'मुक्तिपर्व' की कहानी स्वतंत्रता पूर्व भारत में शुरू होती है।इसके प्रमुख पात्र बंसी और उसका बेटा सुमित है।बंसी कमेर जाति का है।वह नवाब के यहाँ काम करता था।कम वेतन पाकर भी वह ईमानदारी से काम करता रहा। साथ ही साथ बेगारी भी।फिर भी नवाब से तिरस्कार और गाली के अलावा उन्हें कुछ भी नहीं मिला।उनके गाँव में स्वतंत्रता संग्राम की लहर नहीं आयी थी फिर भी वह जान लिया था कि थोडे ही दिनों में ही आज़ादी मिलनेवाली है।

आज़ादी के पहले उगते सूरज के साथ उसके घर में बेटा सुनीत का जन्म होता है। ठीक उसी दिन बंसी नवाब की हवेली की नौकरी छोड़ दिया। सुनीत पढाकू है।वह प्रत्येक कक्षा में अव्वल आता है।निम्न जाति का होने के कारण सुनीत को विद्यलयों में जातीय तिरस्कार का शिकार होना पडा।लेकिन वह हार मानने केलिए तैयार नहीं हुआ।अवमानना का बदला उसने पढाई द्वारा किया। प्रत्येक कक्षा में वह प्रथम श्रेणी में आया।स्कूल से उसे सुमित्रा नामक दोस्त मिला जो ब्राहमण है।

सुमित्रा के पिता आर्य समाजी होने के कारण उसके घर में जाति व्यवस्था की कठोरता नहीं थी।उसके पिता मानवीयता के प्रचारक थे।उसकी मित्रता सुनीत को सभी पीडाओं को सहने की शक्ति दी।

नवीं कक्षा में उन्हें गंगाराम हाई स्कूल में एडमिशन मिला।स्कूल तो पहले वाले से भी बडा था।लेकिन ठहरा पुराना जैसा ही।वहाँ का कक्षा अध्यापक शिक्षक से ज्यादा पूजारी था।वहाँ से भी उसे दलित होने की पीडा झेलनी पडी।सुमित्रा दूसरी स्कूल में पढ़ती है फिर भी उनके बीच की दोस्ती बनी रहती है।लेकिन उनके बढ़ने के साथ रिश्ते में भी बदलाव आया है, आकर्षण बढ जाता है।टीचर ट्रेनिंग दोनों एक साथ किया। ट्रेनिंग के बाद सुनीत गाँव के स्कूल में ही अध्यापक बन गया।जिस दिन वह गाँव के विद्यालय में अध्यापक बन कर आया ,बंसी और परिवारवाले ही नहीं पूरे गाँववाले खुशी से झूम उठे।गाँव के प्रत्येक बच्चे को चाहे वह लडका हो या लडकी,शिक्षित कराना ही उसका मिशन था।इस मिशन की पूर्ति केलिए वह सुमित्रा को भी साथ लेता है।

2.1.13. डंक

'डंक' रूपनारायण सोनकर का उपन्यास है।इस उपन्यास में दलित या नारी समस्याओं का खुला वर्णन मिलता है।साथ ही भिन्न- भिन्न क्षेत्रों में दलितों पर हो रहे अमानवीय शोषण का चित्रण भी मिलता है।

भारत की यात्रा के ऐतिहासिक विवरण के समान एक भ्रमण वृत्तान्त के रूप में उपन्यास लिखा गया है।विराट और संध्या देश के विभिन्न प्रदेशों,नगरों तथा जंगलों में स्थित कबीलाई आदिवासी बस्तियों में रहकर एक सहज प्रत्यक्ष दर्शी के रूप में घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन और निरीक्षण करते हैं।कथानक एक विशिष्ट विषय पर केन्द्रित काल्पनिक कथा के ताने बाने से नहीं बुना है।इसमें विविध

आकार के रंग के पट्टियों के रूप में कहानियाँ हैं, सच्ची कहानियाँ।पाठकों को समाजिक कुरूपता और विद्रूपता से आमने-सामने तो करता है।जर्जर और अव्यावहारिक सामाजिक परंपराओं की समाधि पर समता मूलक साम्यवादी समाज के भव्य निर्माण की कोशिश भी इसमें है।दलित और आदिवासी समस्याओं के साथ साथ समकालीन सामाजिक,पारिवारिक और भौगोलिक समस्याओं का भी समाधान ढूँढने की कोशिश इसे अन्य दलित उपन्यासों से अलग करता है। नारी स्वतंत्रता की बात सभी करते हैं पर आज भी नारी की दशा शोचनीय है।

2.1.14. सुअरदान

'सुअरदान' में रूपनारायण सोनकर ने भारतीय संस्कृति की कोढ़, जाति व्यवस्था को उखाड फेंकने और एक नयी संस्कृति बनाने का अपना सपना दिखाया है।रामचंद्र त्रिवेदी,सज्जन खटिक,घसीटे चमार और सलवंता यादव ने मिलकर गाँव सिंहासन खेडा में पन्द्रह हैक्टर जमीन पर बैंक की मदद से एक पिगरी फार्म बनाया। वे इस फार्म के द्वारा गाँव के युवकों को रोजगार उपलब्ध कराना,शिक्षित कर,गरीबी दूर करना चाहते थे। चारों ने उच्च तकनीकी शिक्षा ग्रहण कर अपने गांव सिंहासन खेडा आये थे।रामचन्द्र त्रिवेदी ने एम .बी .ए,सज्जन खटिक ने बी.टेक,सलवंत यादव ने वैटनरी डॉक्टर की डिग्री और घसीटे चमार ने बार एट लॉ की डिग्री ली।इन चारों लगों को विदेशों में अच्छी नौकरी मिल सकती थी,लेकिन ये लोग कहीं भी नौकरी करना नहीं चाहते थे।वे सदियों से समाज में चली आ रही जातिवाद और अंध धार्मिकता को उखाडकर फेंकना चाहते थे।

देखते- देखते सुअर फार्म बढ़ता गया।सुअर की सप्लाई देश -विदेश में होने लगे।छह सालों से वे करोडों के आदमी बन गये। वे देश की समस्याओं को दूर करने केलिए यथासंभव प्रयत्न करते हैं।

पिगरी फार्म मंदिर से चौबस मीटर दूरी पर है।मंदिर के पूजारी है देवीशंकर।जन्म से तो वह उच्च वर्ग के है,लेकिन कर्म से नीच है।वह हर नारी को दबी नज़रों से देखता है और मौका पाते ही उनके साथ शारीरिक संबंध भी स्थापित करता।उछृंखल पूजारी अपनी पत्नी और बेटियों पर कडी नजर रखता है।उन्हें बाहर निकलने भी नहीं देता।जब वह एडस के शिकार होता है,तब उसके हर कुकर्मों पर साथ देनेवाले दोस्त भी उनका साथ छोड देता है।ऐसे वक्त पर पिगरी फार्म के चार नौजवान ही उसकी सहायता करते हैं। वे पच्चास लाख रूपया खर्च करके उसकी इलाज करते हैं।यह घटना ने उसकी सोच को ही नहीं उसकी जिन्दगी को ही बदल दिया।वह पिगरी फार्म के पूजारी बन जाता है।यहाँ उपन्यासकार ने हृदय परिवर्तन ही नहीं व्यवस्था परिवर्तन भी दिखाया है।वह अपने लोगों की गालियाँ सहकर भी सुअरों का पालन करता है।वह अपने बेटियों की शादी इन तीनों दलित युवाओं के साथ कराता है।अपने अंतिम समय में वह गोदान नहीं सुअरदान करता है।

व्यापार बढने के साथ वे दूसरे गाँव के ज़मीन भी खरीदते हैं।वहाँ के लोगों को भी नौकरियाँ देते हैं।इस प्रकार वे सिंहासन खेडा के ही नहीं आसपास के गाँवों के भी उद्दारक बन गये।यह एक आशावादी उपन्यास है।विकासशील भारत को दुनिया के विकसित देशों में एक बनाने का एक नया और अलग तरीका इसमें है।

2.1.15. आज बाज़र बंद है

यह उपन्यास हवस का शिकार बनी भारत की नारी की कहानी है। उनकी उमडती अस्मिता बोध और कीचड से मुक्त होने की लालसा ही इस उपन्यास की कथातंतु है।इसका लेखक मोहनदास नैमिशराय का महत्व इस बात में नहीं है कि उन्होंने वेश्याओं की समस्याओं को उठाया है,बल्कि इस बात में है कि उन्होंने समाज के मन में बैठी इस अवधारणा का कि वे महिलाएँ नहीं वेश्याएँ हैं,इस पर

ज़बर्दस्त प्रहार किया है।कोठी नं.आठ की पाँच नारियाँ और इसके बीच इत्फाकन आनेवाला सुमित नामक पत्रकार, आदि इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं।

कोठी नं.आठ में पचास साल का शबनम बाई,बाईस साल का नसरीम,फूल,पार्वती और फूल का बेटा रहते हैं। कई तरह के लोग यहाँ आते रहते हैं ।उनसे लड़ते -झगड़ते उनकी ज़िन्दगी आगे बढ़ रही थी।इसी बीच शहर में दंगा बढक उठा।दंगे में पडकर सुमित नामक एक पत्रकार कोठ में आ जाता है।कर्फ्यू खतम होने तक वह कोठे में ही रहता है।वह उस कोठे को एक घर बनाता है।उसकी उपस्थिति कोठेवालियों के मन में पारिवारिक जीवन की ललक बढाते है।पार्वती और सुमित प्यार करने लगते हैं।शबनम बाई सुमित को अपना बेटा ही मानती है वह उससे पार्वती को इस वासना के जंगल से बचाने का अनुरोध करती है।सुमित के कहने पर पार्वती धंधा छोडती है।

कोठेवालियों में सुमित का नाम फैल गयी।इससे दल्ले परेशान होते हैं और शबनम बाई से उसे कोठे से निकालने की धमकी देते हैं।वह मानने केलिए तैयार नहीं होती।सुमित पर हमला होता है।अस्पताल से वह सीधे कोठे में ही आता है।इस घटना से मुमताज और हसीना ने भी धंधा छोड दिया।कोठेवालों का सुधर जाना दल्लों को ही नहीं पुलिसवालों को भी अच्छा नहीं लगता।वह सुमित और पार्वती पर झूठा इलजाम लगाकर जेल में बंद करता है।उन्हें छुडाने केलिए वेश्याओं के पूरा मुहल्ला थाने में पहूँच जाते हैं।पुलिस और वेश्याओं के बीच संघर्ष होता है।संघर्ष में शबनम बाई के सिर पर चोट लगती है।लोगों को शांत करने केलिए प्रधान मंत्री वहाँ पहूँच जाते हैं। और सुमित और पार्वती को जेल से छुडवाता है।घायल शबनम बाई सुमीत की गोद में सिर रखकर थाने में ही दम तोडती है।

2.1.16 ज़ख्म हमारे

गुजरात भूकंप में राजु परमार का सभी रिश्तेदार मर जाते हैं।शहर के कॉलिज में दाखिला होने केलिए आया राजू भी बुरी तरह गायल हो जाता है।कुछ दिनों तक अस्पताल में रहना पडा।कुछ दिनों के बाद ठीक होने से पहले ही उसे अस्पतालवाले डिस्चार्ज किया। वह बाहर आता है तो उसकी सहायता करने केलिए असलम नामक युवक के अलावा कोई नहीं आया।वह उसके घर में रहने लगा।उसकी माँ ने उसे बेटे जैसा प्यार दिया।ठीक होने के बाद असलम की मदद से सरदार पटेल कॉलिज में दाखिला मिला।रविदास हॉस्टल में रहने के लिए जगह भी मिला।राजू और असलम अच्छे दोस्त बन गये।धर्म से बढकर इंसानियत को माननेवाला राजू सुलमान दलित महा संघ से जुडकर काम करने लगा।इस कारण पुलिस उसकी निगरानी करने लगता है वह हॉस्टल छोडकर एक गली में रहने लगा। राजू की मुलाकात सादिया से होती है।दोनों में प्यार होता है।

गुजरात में हिंदू -मुसलमान दंगा भड़क उठा। आतंकवादी सादिया के घर को उसके पिता के साथ जला डाला।सादिया को पडोस हिंदु घरवाले बचाता है।वह राहत शिबिर के टूटी हुई नारियों और छूटे हुए बच्चों की आसरा बन कर उनकेलिए जीता है।राजू सांप्रदायिक दंगे से रौंदे गए दलित -मुसलमान लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने की कोशिश में लगा रहता है।

2.1.17. नीला आकाश

यह महाराष्ट्र के कन्हान नामक गाँव के बाहर स्थित दलित बस्ती के लोगों की कहानी है।यहाँ अलग- अलग जाति के लिए अलग- अलग मुहल्ला है। सेवानगर मे भीकुजी, गंगाराम,भोला और फूलवती के घर हैं।इन चारों घरों में एकता और भाईचारा है।

यह भीकमचंद और उसके परिवार की अस्मिता की लडाई की कहानी है।सब लोग उसे भीकु बुलाते थे।उसकी पत्नी का नाम है चंदरी। उन्हें चार बेटियाँ और एक बेटा है।वह पढना चाहता था।लेकिन सामाजिक व्यवस्था के कारण वह पढ नहीं पाया।इसलिए बच्चों को स्कूल भेजा। लेकिन अध्यापकों का तिरस्कार और उत्पीड़न के कारण लडकियाँ चौथी तक ही पढ पायीं और लडका रामकिशन आठवीं तक।राम किशन अपना सपना बेटी नीलिमा द्वारा पूरा करना चाहता है।बच्चों की संख्या अधिक होने पर एक की भी परवरिश ठीक तरह से नहीं कर पाएगा।इसलिए उसने अपने बच्चों की संख्या एक में सीमित कर दिया।रामकिशन अपनी बेटी नीलिमा को वहीं तक पढाता है जितना वह पढना चाहती है।कम उम्र में उसकी शादी करवाना भी नहीं चाहता।

आकाश उसी गाँव के प्रगतिशील विचारवाला लडका है।वह वाल्मीकि जाति का है।फिर भी जाति केलिए आरक्षित काम करने केलिए वह तैयार नहीं होता।वह अच्छी तरह पढता है और अपनी गली के गरीब बच्चों को एकत्रित करके एक संघ बनाता है। आकाश इस संघ द्वारा दलित बच्चों की परेशानियों को दूर करने केलिए जी तोड मेहनत करता है।अकाश अपनी पढाई भी ज़ारी रखता है।एम कोम के बाद वह सी.ए पास करता है।नीलिमा एम.ए के बाद पी.एच.डी करती है।नीलिमा भी संघ से जुडकर दलित उद्धार केलिए काम करती है।परिवारवाले आकाश और नीलिमा की शादी कराते हैं।वे हिंदु रिवाजों को त्यागकर बौद्ध धर्म की विधि के अनुसार शादी करते हैं।दलितों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की शुरुआत पर उपन्यास का अंत होता है।

2.1.18 तुम्हें बदलना ही होगा

नारी और दलित जब लिखने लगा तब उसमें अनुभूति की प्रामाणकता खुद ब खुद आ जाती है।क्योंकि उनका जीवन उन्होंने जिया है।देखनेवाले के कथन में

प्रामाणिकता नहीं आ सकती।जब दलित नारी लिखती है उसमें दोहरे अभिशाप का वर्णन मिलता है।उसमें दलित विमर्श और नारी विमर्श दोनों का संगम है।

महिमा गरीब घर की लडकी है।उसके मन में शिक्षा प्राप्त करके कुछ बनने की इच्छा थी। इसलिए वह बचपन से ही शहर में मामा के घर रहकर पढ़ाई करती है।वह कठिन परिश्रम से उच्च शिक्षा प्राप्त करती है और शहर के कॉलिज में अध्यापिका बन जाती है।नारी में आत्मसम्मान की भावना जगाने के लिए वह उनके बीच कार्य करती है,विशेषतः दलित नारियों के बीच।उसमें शिक्षा,संगठन और संघर्ष की भावना फैलाती फिरती है।उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर चमनलाल नामक सवर्ण समाज सुधारक उससे शादी करता है।लेकिन हिंदू संस्कृति के पोषक चमनलाल के घरवाले दलित महिमा को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होते। वे महिमा को आउटहाउस में ही रहने देते हैं ।चमनलाल असल में सनातन हिंदू संस्कृति के ही वक्ता है।वह अपनी पत्नी से बेहद प्यार करने पर भी परंपराओं को तोडने का धैर्य उसमें नहीं था। संस्था की उपाध्यक्षा होकर भी महिमा संस्था में आने नहीं देता।लेकिन बाद में उसकी क्षमता के सामने चमनलाल और उनके परिवारवालें झुकते हैं ।चमनलाल के घरवाले उसे बहू ही नहीं एक प्रौढ़ महिला मानकर सम्मान भी देने लगा ।

धीरज कुमार इस उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है।वह शिक्षित होकर कमला कॉलिज का अध्यापक बन जाता है।वह दलितों के उद्धार केलिए दिन रात काम करता है।उसी कॉलिज में चमनलाल की छोटी बहन पढती है।वह धीरज से प्यार करने लगी।धीरज उसे समझाने की कोशिश करता रहा।लेकिन वह नहीं मानी।उसके प्यार की ईमानदारी देखकर धीरज भी उससे प्यार करने लगा। धीरज ऊंची जाति का लडका मानकर चमनलाल शादी करवाने केलिए आगे आता है।लेकिन धीरज सबके

सामने खुलकर कहता है कि वह शूद्र है।अंत में चमनलाल के परिवारवाले शादी केलिए राजी होते हैं।इस प्रकार इस उपन्यास में जाति के बंधनों को अंतर्जातीय विवाह द्वारा कमज़ोर करने का रास्ता दिखाया है।

2.2 दलित आत्मकथा

दलित आत्मकथा लेखन ने दलित साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध कर उसे नया आयाम दिया। दलित साहित्य में आत्मकथाएँ ही सर्वाधिक चर्चित एवं लोकप्रिय हैं। उनकी आत्मकथा एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं है, अपितु वह समस्त दलित समाज की आत्मकथा है। आत्मकथा में दलित आत्मकथाकार द्वारा भोगी हुई यातना, अभाव, अपमान और संघर्ष का चित्रण है। दलित होने के कारण वे किसी न किसी स्तर पर कम या ज्यादा जातीय अपमान, घृण, उपेक्षा और वंचना के शिकार हुए हैं। इसलिए दलित आत्मकथाकार के जीवन का यथार्थ समस्त दलित समाज का सच होता है। इनमें समाज द्वारा दलितों पर किए जानेवाले सामाजिक अन्याय, असमानता, जातिगत भेद-भाव,शोषण और अस्पृश्यता आदि का यथार्थ रुप देखने को मिलता है। इसलिए साहित्य के साथ ये आत्मकथाएँ भारतीय समाज की इतिहास भी हैं। दलित आत्मकथाओं में दर्ज इतिहास भारतीय समाज का उस अमानवीयता और असहिष्णुता का इतिहास है जिसका उल्लेख इतिहास में नहीं है।

दलित आत्मकथाओं को साहित्य के विधा रूप में स्थापित करने का श्रेय मराठी दलित आत्मकथओं को हैं। डॉ.किशोरीलाल रेंगरे दलित आत्मकथा के ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन का आरंभ अस्मितादर्श (1976) के दीपावली विशेषांक से हुआ। इस विशेषांक में 'मैं और मेरा लेखन' शीर्षक से रा.यो,केशव मेश्राम,बंधुमाधव,राजा ढाले,नामदेव ढसाल,योगीराज, बाघमारे,बाबुराव बागुल आदि मराठी दलित लेखकों के संक्षिप्त

आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई।इन आत्मकथाओं की प्रेरणा से ही कालांतर में स्वतंत्र रूप से आत्मकथाएँ अस्तित्व में आयी।"[1] मराठी की दलित आत्मकथाओं में डॉ.अंबेडकर की- 'मी कसा झाला' (मैं कैसे बना). दयाराम पवार कृत 'अछूत',शंकर राव कृत 'यादों के पंछी', लक्ष्मण माने कृत 'पराया लक्ष्मण' ,गायक वाडे कृत 'उठाईगिरी', शरणकुमार लिंबाले कृत 'अक्करमाशी' महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन आत्मकथाओं ने सिर्फ मराठी साहित्य को अपितु समूचे भारतीय दलित साहित्य को दिशा प्रदान किया है। अनेक मराठी दलित स्त्रियों ने भी आत्मकथा लिखने का साहस दिखाया है। शान्ताबाई काले की 'छोरा कोलहाटी', बेबी कांबले की 'जीवन हमारा',ऊर्मिला पवार की 'आयदान' आदि प्रमुख आत्मकथाएँ हैं।

हिन्दी के दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन की शुरुआत प्रसिद्ध दलित लेखकों की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित आत्मकथाओं के साथ हुई थी। हिन्दी दलित आत्मकथा लेखन की शुरुआत ओमप्रकाश वाल्मीकि के आत्मकथांश से माना जाता है। लेकिन पुस्तकाकार में छपी प्रथम हिंदी दलित आत्मकथा 1995 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे' है।

2.2.1 अपने अपने पिंजरे

मोहनदास नैमिशराय की अपने अपने पिंजरे हिन्दी साहित्य की पहली दलित आत्मकथा मानी जाती है। इसमें लेखक ने व्यक्तिगत पीडा, उपेक्षा के साथ चमार जाति की सामाजिक आर्थिक समस्या का भी चित्रांकन किया। आत्मकथा का आरंभ मोहनदास ने पत्रकारिता की शैली में अपने शहर मेरठ के विस्तृत विवरण से किया है। जिसमें 1857 का पहला स्वतंत्रता संग्राम, पंडित नेहरू के इंपाल गाडी में कई बार शहर में आने तथा अंबेडकर का शहर में दौरा करना आदि का जिक्र हुआ है।शहर के वर्णन उपरांत लेखक व्यक्तिगत जीवन सामने आते हैं।

बचपन में माँ की मृत्यु और उसके बाद पिता की दूसरी शादी करने का जिक्र आता है।उनको ताई माँ पालकर बडा करती है।लेखक ने बडी तटस्थता और खुले मन के साथ सगे - संबंधियों रिश्तेदारों के गुणों एवं संबंधों का वर्णन किया है। वे अपने गाँव का पूरा चित्र पाठकों के सामने रखते हैं।उनके गाँव की बस्ती में चमार जाति के अस्सी घर थे, उनका धंधा मेहनत मज़दूरी करने का था। नैमिशराय ने अपने स्कूल के वातावरण का चित्रण भी किया है। डॉ . दिलीप मेहरा अपने अपने पिंजरे के बारे में लिखते हैं " मोहनदास मैमिशराय की यह कृति इस अर्थ में आत्मकथा न होकर आत्मवृत्त है। उन्होंने अपने जीवन की उन तलख और निर्मम सच्चाईयों को इसमें उकेरा है। जिसमें मानवीय पीडा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है। इसका सबसे बडा कारण व्यक्ति के ऊपर सड़ी गली व्यवस्था का आरोपण है। जिसके प्रति वह सहज होकर सब कुछ सहते जाने केलिए अभिशप्त है। इस प्रकार यह हिंदी की पहली श्रेष्ठ आत्मकथा है।" [2]

2.2.2 जूठन

जूठन आत्मकथा के लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि हैं।आत्मकथा की शुरुआत मुजफर नगर डिले के बरला गाँव की जोडी के किनारे बने उस चूहडे परिवार से होती है, जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि का जनम हुआ था। दलित बच्चों को पढने केलिए बहुत सारी कठिनाईयों का सामना करना पडता है। आत्मकथा का आरंभ अछूत ओमप्रकाश के विद्यालय में प्रवेश और सवर्ण अध्यापक द्वारा उपेक्षा -तिरस्कार से हुआ। इसका जितना गहरा वर्णन जूठन में किया है इतना समग्र वर्णन अन्य आत्मकथाओं में नहीं मिलता।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सलाम प्रथा जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया,जिसमें नवविवाहित जोडे को सवर्णों के दरवाजे जाकर सलाम करना

पडता था। दलित अस्मिता को कुचलनेवाली इस प्रथा का विरोध उन्होंने सशक्त रूप में किया। अपने स्वत्व स्वाभिमान केलिए लडने की प्रेरणा उसे अपने माँ-बाप से मिली। विद्‍यालय में ओमप्रकाश को झाड़ू लगाता देखकर उनके पिताजी ने स्वाभिमान के साथ विरोध किया था।ओमप्रकाश की माँ सुखदेव त्यागी की बेटी की शादी में जूठन लेते समय अपमानित हो जाती है तो उसका स्वाभिमान जागृत होता है। वह जूठन से भरा टोकरा फेंककर भविष्य में फिर कभी जूठन न लेने की प्रतिज्ञा करती है। इस घटना और प्रसंग को जोडकर रजतरानी मीनू ने आत्मकथा के नामकरण की सार्थकता के बारे में कहा था कि जूठन के नामकरण की सार्थकता वाल्मीकि की माँ के स्वाभिमान से संबन्धित है।आत्मकथा में ओमप्रकाश ने दलितों पर कृपा दृष्टी रखनेवाले सवर्णों के बारे में भी कहा है। चमनलाल त्यागी वाल्मीकि से विशेष स्नेह रखते हैं।

2.2.3 तिरस्कृत

'तिरस्कृत' (2002) आत्मकथा का लेखक सूरजपल चौहान हैं। इस आत्मकथा के आरंभ से अन्त तक गाँव और शहरों के सवर्ण दलितों को किस प्रकार प्रताडित करता है, इसका ह्रदयद्रावक वर्णन है। दलित गंदगी साफ करता है और गंदगी में रहता है या उन्हें गंदगी में रहने केलिए समाज उसे मजबूर करता है। 'तिरस्कृत' में इसका उदाहरण सूरजपाल ने दिया है। भंगी लोग अपना पक्का मकान बनाने की कोशिश करता है तो ठाकुर जाटवों को फटकारते हुए कहता है कि - " तुम्हें शरम आनी चाहिए,एक भंगिया की तुम्हारे सामने सीना ठोंक के पक्को मकान बनवा रही है और तुम.... जनखी की तरह हाथ धरे बैठो हो,तुम पे कुछ करौ जातु नाय।"[3]

दलित आत्मकथाओं में 'तिरस्कृत' सर्वाधिक चर्चित और विवादित रही। सूरजपाल चौहान दलित जाति के हैं। जिस ऑफिस में सूरजपाल के पिता चपरासी

थे,उसी ऑफिस में वह संघर्ष और परिश्रम के दम पर प्रशासनिक अधिकारी के पद पर पहूँचता है। इसके बाद भी न सिर्फ सवर्ण समाज बल्कि दलितों के एक वर्ग द्वारा भी तिरस्कृत किया जाता रहा। आत्मकथा दलितों के बीच उत्पन्न हो रही कुप्रवृत्तियों को समाज के सामने लाया है। पिछले कुछ दशकों से दलित समाज में आये सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के कारण जाटव और वाल्मीकि, चमार और भंगी के बीच अंतर्विरोध बढ रहा है, जिसे इस आत्मकथा में अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ उठाया गया है।

2.2.4 संतप्त

'संतप्त' आत्मकथा तिरस्कृत का दूसरा भाग है। असल में यह दूसरा भाग नहीं है, तिरस्कृत से छूट गये कडियों को जोडने का प्रयास है। जीवनानुभवों के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से साहस से दुस्साहस की सीमा तक सूरजपाल पहूँच गया है। इज्जत और सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण लोग व्यक्तिगत जीवन के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कहता। लेकिन लेखक ने ऐसे प्रसंगों का खुलासा किया है जिसका संबन्ध उनके व्यक्ति जीवन से है। ठाकुर जयसिंह की माँ पर किये गया हमला और अपनी पत्नी के साथ भतीजे के शारीरिक संबन्धों का खुला वर्णन इनमें कुछ है। सुविधा संपन्न प्रौढ़ महिलाओं द्वारा किस प्रकार गरीब बच्चों का रोटी के बदले शारीरिक शोषण किया जाता है यह सब संतप्त में देखा जा सकता है।

2.2.5 मेरा बचपन मेरे कंधों पर

श्योराज सिंह बेचैन की आत्मकथा मेरा बचपन मेरे कंधों पर हंस और कादंबनी में किस्तवार प्रकाशित होने के साथ वाणी प्रकाशन से पुस्तक रूप में भी आ चुकी है। श्योराज का बचपन अभाव, गरीबी और पारिवारिक उपेक्षा में व्यतीत हुआ है। उनकी आत्मकथा एक व्यक्ति के आगे बढने की अदम्य लालसा की कहानी

है। पिताजी की असमय मृत्यु के कारण बेचैनजी को दो वक्त की रोटी भी नहीं मिलती थी। उसके नाना ने उसकी माँ की शादी गरीब रामलाल से करवाया। रामलाल की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। यह भी नही सौतेले बच्चे को अपनाने केलिए वह तैयार भी नहीं था। माँ की दयनीय स्थिति थी।

उनका बालश्रम वहीं से शूरू हुआ। आत्मकथाकार को स्नेह और सहयोग सिर्फ माँ से ही मिला है।वह जीविका चलाने केलिए छोटे उम्र में ही रेलवे स्टेशनों पर बूट पोलिश करने के काम से लेकर होटल में जूठे बर्तन धोना, नींबू बेचना और मरे पशुओं को उठाने तक का काम किया करता था। पूरा दिन काम करने पर दो वक्त की रोटी और दो चार आना पैसा ही मिल जाता था। जैसे तैसे सौतेले बाप ने अपने बेटे रूप सिंह के साथ श्योराज को स्कूल पढाने भेजा। जब उसे पता चला कि उसके बच्चे से श्योराज होशियार है तो उसके सौतेले बाप ने उसकी किताबें जला दी। लेकिन उस समय माँ का सहारा मिला और मास्टर प्रेमलाल सिंह यादव श्योराज का प्रेरणा स्रोत बन गया। श्यौराज का बालश्रम आत्मकथा का पार्ट ऑफ आर्ट है।

2.2.6 नागफणी

'नागफणी' रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा है।इसमें सोनकर ने अपमान,शोषण और असमानता की पीडा को उजागर किया है।इस आत्मकथा में रोने धोने की अपेक्षा संघर्ष को अधिक महत्व दिया है। प्यासी रूपनारायण कुएँ से पानी निकालकर पीने का प्रयास किया।लैकिन ऐन वक्त पर ब्राहमण लोग आ गये और उसे मारने लगे।रूपनारायण ने बाल्टि को गोल गोल गुमाकर सभी को घायल करके भागे थे।ऐसे अनेक प्रसंग आत्मकथाकार के जीवन में आये थे जिसका उन्होंने डटके मुकाबला किया है।

'नागफणी' का एक एक संवाद पाठक के हृदय को छू जानेवाले है। नामवरसिंह ने इस आत्मकथा की भाषा शैली और शिल्प को बहुत अधिक सराहा है।

2.2.7 झोंपडी से राजभवन तक

'झोंपडी से राजभवन तक' हिंदी के वरिष्ठ दलित लेखक और राजनेता माता प्रसाद की आत्मकथा है।इसका रचनाकाल सन् 1925 से लेकर 1999 तक फैला हुआ है।उसने अपनी आत्मकथा को तीन भागों में बाँटा है -1.दलित के जीवन दर्द, 2. राजनीति की अखाडे में,3.राजभवन में।आत्मकथा में इस बात पर ज्यादा जोर दिया है कि किन परिस्थितियों से जूझते हुए दलित समाज का एक व्यक्ति झोंपडी से राजभवन तक पहूँचा।क्योंकि उन्होंने अपनी यात्रा झोंपडी से शुरू की थी।

यह आत्मकथा न केवल उसके संघर्ष को दिखाता है बल्कि नई पीढी के मन में आशा की किरणें भी बिखेरता है। आत्मकथा लिखने के कारण स्पष्ट करते हुए माता प्रसाद लिखते हैं कि " आत्मकथा लिखने का कारण यह भी है कि जिन कठिनाईयों और परिस्थितियों को मैंने भोगा है,उसे हमारे लडके,पौत्र -पौत्रियाँ या दूसरे दलित जाति के युवकों को हमेशा याद रखना चाहिए।...और वर्ण व्यवस्था तथा जातिवादियों के परवाह न करते हुए हम सम्मान अर्जित करेंगे और उच्च पदों पर पहूंचने में जाति की बाधा को तोड देंगे।दृढ संकल्प उन्हें आगे बढाने में सहायक होगा। "[4]

2.2.8 मुर्दहिया

'मुर्दहिया' आत्मकथा के लेखक डॉ तुलसीराम हैं। इस आत्मकथा में लेखक के यौवनावस्था तक के जीवन का चित्रण मिलता है। 'मुर्दहिया' 2010 में तद्भव पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसमें पूर्वांचल के दलित जीवन का समाजशासत्र है। प्रो. तुलसीराम बौद्ध दर्शन के विद्वान, दलित साहित्य के लेखक, 'अश्वघोष' के संपादक

के साथ जे.एन .यू के अन्तर्राष्टीय अध्ययन संस्थान में प्रोफसर एवं अध्यक्ष है। आत्मकथा का आरंभ उ.प्र के पिछडे जिला आजमगड के धर्मपूर गाँव में होता है। इस आत्मकथा से यह बात सामने आती है कि व्यक्ति के जीवन में अपने परिवेष की भूमिका भी अहम है। लेखक का जन्म अंधविश्वास से भरे हुए दलित परिवार में हुआ था। लेखक ने यह भी स्वीकारा है कि उनको पहले अपने ही परिवार से अपमान झेलना पडा।

इस आत्मकथा की बहुत बडी विशेषता है सवर्णों द्वारा मिले सहयोग के प्रति स्नेह का भाव और अनावश्यक आक्रामकता का अभाव। डॉ दिलीप मेहरा मुर्दहिया के बारे में लिखते है कि " मुर्दहिया आत्मकथा अन्य दलित आत्मकथाओं से हटकर है। यह तुलसीराम की पहली रचना है,फिर भी लाजवाब है। वे मार्क्सवादी विचारधारा से संबंधित है। उन्होंने बौद्ध दर्शन पर भी विशेष कार्य किया है।" [5]बाद में तुलसीराम ने 'मणिकर्णिका' नाम से आत्मकथा का दूसरा भाग भी प्रकाशित किया।

2.2.9 दोहरा अभिशाप

'दोहरा अभिशाप' कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा है। हिंदी की पहली दलित स्त्री द्वारा लिखी गई आत्मकथा है। यह लेखिका के अभिशप्त जीवन की कथा है। इसमें कौशल्या बैसंत्री ने कुल अट्ठाईस प्रकरणों के माध्यम से अपने सच्चे, अच्छे, मीठे, कडवे सभी प्रकार के अनुभवों को व्यक्त किया है। इस आत्मकथा में उसने सवर्णों के शोषण का ही नहीं दलितों का दलित पर किये जानेवाले शोषणों का भी वर्णन किया है। दलित में भी यदि मामला स्त्री का है तो यह अभिशाप सिर्फ दोहरा नहीं तिहरा और उससे भी अधिक हो जाता है। स्त्रियों के मामले में सवर्ण पुरुषों की सोच और दलित पुरुषों की सोच में कोई अंतर नहीं है। कौशल्या बैसंत्री को उसके व्यक्तित्व निर्माण में सबसे अधिक बाधाएँ उनके बिरादरी के पुरुषों ने दी थी। उनके

पति पढे लिखे शिक्षित व्यक्ति है, उन्होंने ही लेखिका पर बहुत अत्याचार किया। लेखिका लिखती है- “मेरी और देवेंन्द्र कुमार की नहीं बनी। देवेंद्र कुमार सिर्फ अपने घेरे में ही रहनेवाला आदमी है।गर्म मिजाज और जिद्दी। अपने मुँह से कहता है कि मैं बहुत शैतान आदमी हूँ। उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कद्र नहीं की। बात बात पर गाली,वह भी गंदी-गंदी और हाथ उठाना। मारता भी बहुत क्रूर तरीके से।” [6] लेखिका सभी विपरीत परिस्थितियों में डटे रहकर दलित महिला उद्दार केलिए काम करती रही। अब भी कर रही है।

2.2.10 शिकंजे का दर्द

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा ‘शिकंजे का दर्द’ एक दलित नारी की दारुण यातना की कहानी है।इसमें वर्ण व्यवस्था के अमानवीय स्वरूप के साथ मुस्कुराहट की नकाब की तले छिपे नफरत भरे चेहरों की असलियत भी दिखाई है।लेखिका ने एक नहीं कई शिकंजों की बात की है।दलित स्त्रियों का संघर्ष दोहरा है।मनुवादी पुरुष सत्ता से और मनुवादी जाति व्यवस्था से।आत्मविश्वास प्राप्त कर सुशीला जी ने पति की सत्ता को कमजोर कर दिया।वह अपना वेतन और पास बुक खुद रखने लगी।पति की दासता से मुक्त होने केलिए अपने निर्णय स्वयं लेने लगी।रूढियों और परंपराओं से टकराने का साहस अपने अंदर पैदा कर वह लेखन,दलित आंदोलन और नारी जागरण की गतिविधियों से जुडकर सक्रिय हो उठती है।वह अपने लेखन की समाज सापेक्षता को स्पष्ट करते हुए लिखती है- “मेरा लेखन मेरी जरूरत है,मेरी समाज की जरूरत है।अपने सामाजिक आर्थिक जीवन के कई तरह के शिकंजे का दर्द के बीच लेखन ने मुझे ऊर्जा दी है,पहचान दी है,मेरे जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया है।अब वह मेरी खुशी बन गया है,समाज -ऋण चुकाने का जरिया बन गया है।”[7] रूढियों के विरुद्ध जाकर वह अपनी दोनों बेटियों की शादी बिना दहेज की।

2.3. दलित कविता

दलित अपनी अस्मिता की तलाश की लड़ाई केलिए सशक्त हथियार के रूप में कविता को अपनाया है। प्रसिद्ध दलित लेखक एवं आलोचक विमल थोरात के अनुसार दलित कविता, दलित जीवन के यथार्थ की कविता है। इसमें दलित जीवन के हर क्षण, हर पीडा, हर एक वेदना और क्रान्ति गर्भे संवेदना को साकार किया है। दलित कवि के सामने भावावेग में बहने के अनेक अवसर थे, क्योंकि उन्होंने जीवन के अनेक घिनौनी तस्वीर देखी है। परन्तु उसकी कविता जीवन के वस्तुगत यथार्थ को मूलाधार मानती है। यद्‍यपि दलित साहित्य को एक अलग पहचान आत्मकथा ने ही दिया फिर भी इसकी शुरुआत सबसे पहले कविता में ही हुई थी।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का बीजवपन बुद्ध की वाणी से प्रभावित सिद्ध साहित्य से माना जाता है। इन कवियों ने वर्ण-व्यवस्था जाति व्यवस्था, मूर्तिपूजा और पाखंण्ड के विरुद्ध सबसे पहले आवाज उठाया था। बौद्ध धर्म से उदभूत सिद्ध संप्रदाय के प्रथम आचार्य थे सरहपाद। उन्होंने जनभाषा अपभ्रंश में वर्ण, जाति और बाहयाडंबर का विरोध किया।

सिद्धों से शुरू होनेवाला विद्रोही स्वर नाथों में भी दिखाई देता है। नाथों से यह भावना भक्तिकाल में सन्तों में आ गयी। जाति पाँती के विरोध करनेवालों में सन्त रैदास, कबीर, दादू, घासीराम, रज्जब, नानक, चोखा मेला आदि ने अपनी वाणी द्‍वारा पूरे देश में जाति पाँति को मनुष्य कृत बन्दन बताकर ईश्वर के दरबार में सबको बराबर सिद्धकर इन जातियों का मेल बढाया। सन्त कवियों में कबीर और रैदास के नाम आदर से लिए जाते हैं।कबीर और रैदास ने अस्पृश्यता और धार्मिक पाखंडों के खिलाफ प्रखर आन्दोलन की। वे जनभाषा में दोहे, भजन तथा अन्य छन्दों की रचनाएँ की जिनका जनमनस पर व्यापक प्रभाव पडा।

आधुनिक युग में, बौद्ध, सिद्ध, नाथ सन्त और मराठी दलित आन्दोलनों से प्रेरणा लेकर हिन्दी के दलित कवियों ने काव्य सृजन की शुरुआत की। हीराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से दलित कविता की शुरुआत मानी जाती है। यह महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में प्रकाशित होनेवाली सरस्वती पत्रिका के सितंबर 1914 के अंक में आयी थी। क्रान्तिकारी कवि डोम ने ब्राह्मणवादी क्रूर व्यवस्था का विरोध अपनी कविता में किया है।

"हमनी के रात दिन दुखा भोगत बानी
हमनी के सहेबे से मिनती सुहाइबि
हमनी के दुख भगवनऔ न देखत जे,
हमनी के कनुले कलेसवा उठाबि "[8]

भरतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन मार्कण्डे नामक दलित कवि थे जो चिरंजीत नाम से लिखते थे। उसी काल में इलहाबाद में रहनेवाले परसन नामक दलित कवि की कविताएँ भी मिलती हैं। हीराडोम के समकालीन कवि है स्वमी अछूतान्द हरिहर। उनकी पहली पुस्तक हरिहर जपमाला 1917 में आग्रा से प्रकाशित हुई। पहले वह आर्य समाजी थे। बाद में आर्यों के दोहरी नीति से ऊबकर उन्होंने उससे नाता तोड़ दिया। उन्होंने आग्रा में 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की और 'अछूत' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी किया।इसके द्वारा उत्तर भारत में दलितों के उद्दार केलिए संघर्ष किया।वह 'आदि हिन्दु' आन्दोलन का प्रवर्तक है। 1928 में उन्होंने आदि वंश का प्रतीक 'झंडा गीत' लिखा। ऐसा कहा जाता है कि इससे प्रभावित होकर बाद में राष्ट्रगीत ' झंडा ऊँचा रहे हमारा ' लिखे गये।

"जग का मित्र सुशील प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा
समता स्वतंत्रता भ्रातृभाव और न्याय सरसानेवाला

दिव्य अशोक चक्र से शोभित,आदिवंश का तन मन सारा।"[9]

स्वामिजी के हृदय में मातृभूमि,भारत माता के प्रति असीम भक्ति भावना और आस्था थी।सवर्णों के प्रति विद्रोह उनकी कविता में मिलते हैं।

श्री बिहारीलाल हरित अछूतानन्द की परंपरा के प्रमुख कवि है।दलित समाज के प्रसिद्ध नारे 'जयभीम की सर्जना' का श्रेय बिहारी लालजी को है।अंबेडकर के प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव भरने केलिए 'भीमायण' नाम से एक महाकाव्य लिखा।इसमें रामचरितमानस के सभी छन्दों का प्रयोग किया गया है।'वीरांगना झलकारी बाई' उनका दूसरा महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है। उन्होंने 'हरित साहित्य मंडल' नामक एक संस्था बनाकर बहुत सारे लोगों को लिखने केलिए प्रेरित किया। स्वातंत्रोत्तर काल से लेकर अस्सी के दशक तक का समय बिहारी लाल हरित और उनके शिष्यों का समय है।

गुरू शिष्य परंपरा में विश्वास रखनेवाली उनकी शिष्य मंडली बहुत बडा है। उनके शिष्यों में श्री लक्ष्मीनारायण सुधाकर,राजपाल सिंह राज, दकरण याद, कालीचरण गौतम, कमलेश कुसुम वियोगी जसराम हरनौटिया, लालचंद आदि आते हैं। 1985 में 'दलित साहित्य अकादमी' ने उन्हें राष्ट्रीय अंबेडकर पुरस्कार से सम्मानित किया है। मथुरा की एक संस्थान ने उन्हें 'साहित्यलंकार' की उपाधि से विभूषित किया। एशिया रफेरंस बुक में उनका भी नाम आया है। इसके अतिरिक्त उन्हें 'नेहरू स्मृति पुरस्कार', हिन्दी अकादमी सम्मान आदि मिले हैं। महाकाव्य (.भीमायण) चंपू काव्य- (जगजीवन ज्योति) सहित लगभग 30 काव्य ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं।

बाबूलाल सुमन हिन्दी के प्रसिद्ध दलित लेखक है। उन्होंने 'अंबेडकर' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसे माता प्रसाद ने ग्यारह सर्गों का सुरुचीपूर्ण ग्रन्थ

माना है। इस महाकाव्य के रचना विधान, तथा विचार संवेदना पर मोहित होते हुए डॉ.प्रेम शंकर लिखते है कि -" अंबेडकर महाकाव्य अब तक के लिखे सभी दलित काव्य संकलनों एवं चरित्र काव्यों में श्रेष्ठ है। इसमें काव्यगत सौन्दर्य कामायनी, साकेत तथा उर्वशी के समान है। संपूर्ण काव्य में विद्रोह, संघर्ष एवं काव्य सौन्दर्य की अपूर्व छटा है।"[10] इस महाकाव्य में अंबेडकर का चरित्र तो स्पष्ट किया ही गया है, साथ ही इसमें विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों एवं काव्य शैली के भी दर्शन होते है।

माताप्रसाद हिन्दी के वरिष्ठ कवि हैं। विषम परिस्थितियों से लडकर शिक्षा हासिल की और एक जूनियर स्कूल के प्रधान अध्यापक तक बन गया। इसके बाद वह राजनीति में आ गया और अरुणचल प्रदेश के राजपाल के महत्वपूर्ण स्थान तक पहूँच गये। साथ ही साथ वह साहित्य के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे। उन्होंने 'एकलव्य' नामक खंडकाव्य , 'भीमशतक', 'दिग्विजयी रावण' आदि प्रबंधकाव्य लिखे हैं। इसके अतिरिक्त 'राजनीति के अर्धसतसई', तथा 'परिचय सतसई' भी लिखे हैं।माता प्रसाद छन्द बद्ध काव्य लिखने में कवि सिद्घहस्त हैं।

डॉ.राजपाल सिंह राज बिहारीलाल हरित के शिष्य परंपरा में आते हैं। 'भीमभारती' उनकी प्रमुख रचना है। इसमें उन्होंने डॉ भीमराव अंबेदकर के माध्यम से दलित जागृति का संदेश दिया है। एन.आर सागर ने अंबेडकर की कृतियों का अनुवाद किया साथ ही साथ अनेक कालजयी कृतियों का भी सृजन किया। 'भीम प्रशस्ति', 'आक्रोश', 'आजाद है हम' आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह है। 'आजाद है हम' उनकी प्रतिनिधि रचनाओं का संग्रह है। डॉ.महीप सिंह ने 'विक्षुब्ध स्वर की कविताएँ' बताते हुए श्री सागर को राक्षस रचनाकार बताया है। अछूत के चूने से वस्तुएँ मैले हो जाते है,उसके प्रवेश से मंदिर मैला हो जाता है। इस पर विचार करते हुए सागर जी लेखते है कि -

"यदि तुम्हारे षड्यंत्र के अड्डे
मंदिर पूजागृह पर दये जाएँ धूल धूसरित
देव मूर्ती कर दी जाए विखंडित
कुत्सित वासना के प्रतीक
तुम्हारे धर्म के ग्रन्थ
जलाकर कर दिए जाएँ नष्ट
सदा सर्वदा केलिए
तब तुम्हें कैसा लगेगा।"[11]

लक्ष्मीनारायण सुधाकर महाकवि बिहारी लाल की प्रेरणा से काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया। 'भीमसागर' उनका प्रबन्ध काव्य है। अंबेदकर के संपूर्ण जीवन पर आधारित 'भीमसागर' को महाकाव्य कहा गया है। गाँधी-अंबेडकर संवाद इस महाकाव्य का सर्वश्रेष्ठ अंश है। 'उत्पीडन की यात्रा' नामक काव्य संग्रह में दलितों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। इस काव्य संग्रह की 'कब बीतेगा युग काला' में इस स्थिति के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

दयानन्द बटोही अपने सहज सरल प्रवृत्तियों से हिन्दी दलित कविता के क्षेत्र में अलग स्थान बनाया हैं। शिक्षा काल और नौकरी में रहते हुए सामाजिक जीवन की विसंगततियों ने उन्हें लिखने केलिए विवश किया। उनका प्रमुख काव्य संग्रह है 'यातना की आंखें'। नवगीत विधा में आनेवाली यह रचना सामाजिक विसंगतियों को सशक्त भाषा में अभिव्यक्त किया है। लेकिन उनका नाम हिन्दी साहित्य जगत में मशहूर बनाने का काम उनकी कविताओं ने ही किया। 'द्रोणाचार्य सुनें उसकी परंपराएँ सुनें' नामक कविता दक्षिण भारत में भी प्रसिद्ध है। इसमें उन्होंने विद्यालयों से

लेकर महाविद्यालयों तक में दलित छात्रों के साथ हो रहे अन्याय को अभिव्यक्ति किया है।

दलित साहित्य की बहुमुखी प्रतिभा से धनी मोहनदास नैमिशराय दलित लेखन को ही अपना जीवन माना है।'सफल एक बयान' नामक उनके काव्य संग्रह में अनेक कविताएँ संकलित है जिसमें दलितों के आत्मसम्मान की भावना कूट कूट कर भरी हुई है।

डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर हिन्दी दलित कवियों में प्रसिद्ध हैं।उन्होंने पी.एच.डी, डी.लिट और एल.एल.बी तक की शिक्षा प्राप्त की हैं।रजत रानी मीनू ने उनका परिचय देते हुए लिखा कि वे बाबू जगजीवन राम द्वारा स्थापित दलित साहित्य अकादमी के राष्टीय अध्यक्ष हैं।उन्होंने दलित लेखकों के परिचय की डयरेक्टरी निकाली है। सुमनाक्षर के दो महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं- 'अंधा समाज बहरे लोग' और 'सिंधु घाटी बोल उठी'। सिंधु घाटी बोल उठी' में दलित समाज की दरिद्रता की ओर संकेत करते हुए कहते है -

"तुम पुराने कपडे पहनकर
टूटे- फूटे झप्पर में रहकर,
सच्चे मन से जुटे हो,
करने देश का निर्माण,
पर फिर भी,
वे सभ्यजन पुकारते हैं तुम्हें,
गंदे इंसान।"[12]

दलित कविता को एक अलग पहचान देने में लालचन्द राही का स्थान महत्वपूर्ण हैं। 'मूक नहीं कविताएँ', 'भीम चेतावनी', 'कदोमोत्थान', 'राष्ट्रीय गीत',

'गीत भारती' तथा 'क्रान्ती शेष है' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। 'डॉ.अंबेडकर का जीवन गीत' खंडकाव्य है। लालचन्द राही की कविताएँ दलित जीवन की विसंगतियों का पर्दाफाश करती है। उनकी कविताएँ मिथकों के माध्यम से शोषण के सही तल को पहचान कर अतीत से लेकर वर्तमान तक व्याप्त शोषण का एहसास कराती हैं और उससे मुक्ति का मार्ग भी सुझाती है। वह अपनी रचनाओं द्वारा यह संदेश भी देता है कि आज परंपरा,संस्कृति और योग्यता की दुहाई देकर जो लोग यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं, वह भारतीय समाज के दुश्मन है। दलितों के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले लालचन्द की कविताएँ दलितों में अस्मिता का मंत्र फूँकती है। डॉ, डॉ.सुखवीर सिंह दलित चेतना को लेकर लिखनेवालों में श्रेष्ठ है।'बयान बाहर', 'अनन्तर' और 'सूर्यांश' उनके काव्य संग्रह हैं। बयान बाहर उनकी चर्चित लंबी कविता है।

निबन्ध के क्षेत्र में प्रसिद्ध डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी 'द्वार पर दस्तक', 'मूख माटी की मुखरता', 'सवालों के सूरज' आदि तीन काव्य संग्रह लिखकर कविता के क्षेत्र में भी अपना नाम कमाया है।अपने विद्रोही स्वभाव के कारण दलित काव्य लेखन में मंशाराम विद्रोही बहुत नाम कमाया है। 'दलित पचासा' उनका काव्य संग्रह है ।उनकी कवितओं में दलित जीवन की सच्ची घटनाओं का चित्रण मिलता है।उनकी काव्य सर्जना जन जागरण के महत्वपूर्ण दायित्व निर्वाह करती दिखाई देती है। उन्होंने रोंगटे खडे कर देनेवाली घटनाओं का वर्णन किया है। विद्रोही द्वारा रचित कविताएँ सत्य घटनाओं पर आधारित हैं।ये सिर्फ कविता की अहसास से हटकर पाठकों झकझोरने और व्यवस्था के खिलाफ लडने की हौसला भी देती हैं।

अपने बेबाक तेवरों के कारण हमेशा चर्चा में रहनेवाले कवि हैं तेजपाल सिंह तेज। भारतीय स्टेट बैंक के राजभाषा अधिकारी तेज सिंह जी बहुत सारे गज़ल और

कविताएँ लिखी हैं। 'दृष्टिकोण' उनकी गजल संग्रह है और बेताल दृष्टि उनकी काव्य संग्रह। केरल राज्य के अन्तर्गत आई. ए.एस अधिकारी रह चुके ड़ॉ. धर्मवीर दलित लेखन के प्रमुख हस्ताक्षर है।उनका काव्य संग्रह 'हीरामन' अपने दलित सरोकारों के कारण पर्याप्त चर्चित रहा है।'हीरामन' और 'किनारे भी मंझदार' की कविताओं में विविधता देखने को मिलती है। हीरामन की कविताएँ अनूठी काव्य शैली में लिखी है।उनकी भारत का मोहन चमार नामक कविता अस्पृश्यता और दरिद्रता का एक जीता जागता नमूना है।इसके बारे में रजत रानी मीनु लिखती है कि - "कवि धर्मवीर दलित कविता के नाम पर कोई रियायत नहीं माँगते।वे काव्य -कला की चुनौतियाँ का सामना करते हैं,किंतु जब खुद दलित है तो जो सहते हैं वह भारत के मोहन चमार के रूप में व्यक्त करते हैं।"[13]

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी दलित कविता के प्रमुख हस्ताक्षर है।वे सिर्फ दलित कविता को ही नहीं बल्कि हिन्दी दलित साहित्य को ही एक नयी दिशा और मान दिया। हिन्दी दलित कविता की धारा को पूरे भारत में फैलाने में उनका हाथ बहुत बडा है।'बस बहुत हो चुका', 'सदियों का संताप' आदि उनके बहु चर्चित काव्य संकलन हैं। उनकी कविता हमारी सोच पर बराबर प्रहार करती है।उसकी कविता में हमारी चेतना को झकझोरने की शक्ति है। धर्म, दर्शन पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या आदि उनकी कविताओं की मुख्य विशेषताएँ हैं। उनकी एक और कविता है-'शायद आप जानते हों'। इसमें उन्होंने हिन्दू दर्शन की उस मान्यता पर प्रहार किया,जो समस्त मानव की नहीं,जीव मात्र की आत्मा को एक मानती है और चूहडे तथा चमार से अस्पृश्यता का व्यवहार करती है। 'झाडूवाली' उनकी प्रसिद्ध कविता है। इसमें संपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था पर प्रहार किया है।

कंवल भारती अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ पत्रकारिता से किया। नई चेतनाः नये राग, भीम पुष्पावली, फुलवारी, युवा सप्तक,भीम वन्दना आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। उन्होंने भारतीय,सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति पर कठुराघात किया है। उन्होंने डॉ . अंबेदकर के संपूर्ण काव्यात्मक अनुभूति का काव्यानुवाद भी किया। उन्होंने मृत पशु की खाल काटनेवालों,मैला ठोनेवालों और जूठन केलिए गुहार लगानेवालों में ही अनुभूति की प्रामाणिकता माना है। 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। उन्होंने अपनी इस लिंबी कविता में हिंदु धर्म की ऋचाओं के विधान को सवर्णों और अवर्णों पर आपेक्षित किया है।

"यदि वेदों में लिखा होता,
ब्राह्मण ब्रह्म के पैर से हुए हें पैदा
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं,
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती।" [14]

हिन्दी दलित कविता की महिला नाम है सुशीला टैकभौरे।'स्वाति बूँद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'इसको तुमने कब पहचाना' और 'अनुभूति के घेरे में' -ये चारों उनके काव्य संग्रह हैं।इन काव्य संग्रहों की कविताओं से सुशीला टाकभौरे ने नारी मन की संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है साथ ही साथ सामाजिक संवेदना के मुद्दों को भी कविता का प्रतिपाद्य बनाया।कवियत्री सामाजिक जीवन की विसंगतियों और असमानता से व्यथित है फिर भी वह निराश नहीं है।उनकी आशावाद इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"मेरी नजर रोशनदार पर है
दरवाजे भले ही बंद हों
उम्मीद है यहीं से आएगी

सूरज की किरण।"[15]

डॉ.एन सिंह हिन्दी के प्रमुख दलित कवि हैं। 'सतह से उठते हुए' उनके प्रमुख काव्य संग्रह है।डॉ. एन सिंह मूलत आक्रोश के कवि हैं। व्ववस्था पर चोट उनकी कविता का केन्द्रीय भाव है। सामाजिक परिवर्तन उनकी कविता का लक्ष्य है। उनकी कविता जीवन की कृत्रिमता से बहुत दूर है। उनकी कविताओं की इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए पद्मश्री . श्याम सिंह शशि लिखते हैं कि -" आपकी कविताओं में ह्रदय के उद्गार व्यक्त हुए हैं।कहीं कोई कृत्रिमता नहीं है। आम आदमी के साथ जुडाव और आदमी की समस्याओं की अभिव्यक्ति भी उनकी कविताओं की एक विशेषता है।उन्होंने सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थ को सच्चाई से अभिव्यक्त किया है।"[16]

कर्मशील भारती कई सालों से दलित आंदोलन में सक्रिय रूप से कार्यरत है। 1980 में उनका पहला काव्य संग्रह 'दलित मंजरी' प्रकाश में आया। दूसरा काव्य संग्रह 'कलम को दर्द कहने ' 2014 में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने कलम को एक हथियार के रूप में चित्रित किया है। इसके माध्यम से कवि यही कहते है कि कलम के माध्यम से ब्राह्मणों ने दलितों के दमन और शोषण की व्यवस्था की है। समाज के दिमाग में बैठी इस व्यवस्था के विरुद्ध लडने का यही सही तरीका है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम हिन्दी दलित साहित्य के नामी लेखकों में सबसे आगे है।वे हिन्दी के पहले दलित उपन्यासकार के रूप में प्रासिद्ध हैं।'गूँगा नहीं था मैं' और 'तिनका तिनका आग' आदि काव्य संग्रह उनके कवि व्यक्तित्व को हमारे सामने उजागर करते हैं।उनकी कविताएँ दलित जीवन की सच्ची अनुभूतियों और दलित उत्पीडन के चित्र देनेवाले हैं।दलित उत्पीडन के खिलाफ उनके आक्रोश बहरे के कानों तक भी पहूँच जाएँगे।वह अपने कविता में पार्क किनारे पर बैठकर जूती गाँठते

रैदास की व्यथा को सहजता से कहते हुए आक्रामक हो उठते हैं।उनकी कविता के शीर्षक में भी आक्रोश भरा हुआ है।

डॉ. श्योराज सिंह बेचैन दलित कविता के उन्नायकों में एक हैं।बेचैनजी जनान्दोलनों से होते हुए कविता तक पहूँचे हैं।इसलिए सामाजिक परिवर्तनों के प्रति आक्रोश उनकी कविता में सर्वत्र देखने को मिलता है।उन्हें व्यावहारिक जीवन की गहरी जानकारी है।इसलिए शोषण के बारे में उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह बेबाक है।शोषण के विरुद्ध संर्घष का आहवान उनकी कविताओं का केन्द्रीय भाव है।उनका प्रमुख काव्य संग्रह है- 'क्रौंच हूँ मैं'।इसमें क्रौंच समाज के दलितों का प्रतीक है,जो विषम हिन्दू समाज के शूल में बिद्ध आज भी छट पटा रहा है।

इन कवियों के अलावा हिन्दी दलित कविता के क्षितिज पर बहुत सारे कवि उभरकर आ रहे हैं।रघुनाथ प्यासा, भूप सिंह,कुसुम मेघवाल,आननन्द स्वरूप,राजकुमार वाल्मीकि,महेन्द्र बेनीवाल, रत्नकुमार साँभरिया,जयप्रकाश वाल्मीकि, डॉ.काली चरण स्नेही,रामभरत पासी आदि नाम उल्लेखनीय हैं।डॉ.रामशिरोमणी होरिल, हरिकिशन संतोषी, धर्मजीत सरल, श्यामलाल शमी,चमन लाल चमन और सुधीर परवाज जैसे कवि प्रेम कविताएँ लिखनेवाले हैं।

दलित काव्यधारा हिन्दी काव्य जगत में अपना एक अलग स्थान बना लिया है।अपना पृथक साहित्य शास्त्र एवं सौंदर्यशस्त्र भी बना लिया है।हिन्दी दलित कविता का मूल स्वर आक्रोश है,जो शताब्दियों के शोषण एवं उत्पीडन का घोर परिणाम है।

2.4. दलित कहानी

दलित कहानी का प्रारंभ कहाँ से माना जाय और पहली कहानी कौन सी है इसके संबंध में निश्चयात्मक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता।लेकिन दलित कहानी

का मुख्य स्वर और शक्ति सामाजिक अन्याय,शोषण और विषमताओं का प्रतिरोध है।

दलित कहानी साहित्य को प्रतिष्ठित करने में बहुत सारे प्रतिष्ठित लोगों ने काम किया है। इसमें रमणिका गुप्ता, कमलेश्वर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रमणिकागुप्ता ने पहली बार दलित कथाकारों की कहानियों को संकलित किया। 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' नामक इस पुस्तक में 18 दलित कथाकारों की कहानियाँ संकलित हैं।इनमें तीन महिला कथाकार हैं।इसमें मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि सूरजपाल चौहान रत्न कुमार सांभरिया, जयप्रकाश कर्दम,श्योराज सिंह बेचैन आदि वरिष्ठ और नामी कहानीकारों से लेकर अजयनावरिया, सूरज बड़त्या,राज वाल्मीकि आदि युवा कहानीकारों की कहानियाँ भी हैं।ये कहानीकार उत्तर भारत के विभिन्न भू भागों के हैं।इसलिए इस संकलन की कहानियाँ भारत के दलित जीवन की समग्र झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं।

डॉ.एन.सिंह ने 'काले हाशिए पर','यातना की परछाइयाँ' आदि दो कथा संकलन संपादित करके इस कार्य को आगे बढाया। काले हाशिये पर कहानी संकलन में हिन्दी और मराठी के कई कथाकारों के साथ,हिन्दी के कई सवर्ण कथाकारों की दलित चेतना संपन्न कहानियों को भी संकलित किया हैं।इससे दलित और गैर दलित कथाकारों की दलित चेतना को तुलनात्मक दृष्टी से देखने का अवसर मिलता है। 'यातना की परछाईयों' में केवल दलित कथाकारों की कहानियों को संकलित किया है। इन कथाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि,प्रेम शंकर,जयप्रकाश कर्दम, दयानन्द बटोरी, बि.एल.नय्यर, मोहनदास नैमिशराय, प्रेम कपाडिया, रत्न कुमार सांभरिया और कुसुम वियोगी आदि का नाम प्रमुख हैं। कुसुम वियोगी ने तीन

कहानी संकलन संपादित किये हैं।'चर्चित दलित कहानियाँ', 'समकालीन दलित कहानियाँ' और दलित 'महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ' आदि।

बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक दलित कहानी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दलित कहानी ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया। 'सुरंग' (दयान्द बटोही), 'चार इंच की कलम' (कुसुम वियोगी), 'आवाज़ें' (मोहनदास नैमिशराय), 'टूटता वहम' (सुशीला टाकभौरे), 'साग' (डॉ.टी.पी राही),'पुट्स के फूल' (प्रहलाद चन्द रास), 'द्रोणाचार्य एक नहीं' (कावेरी), 'सलाम' (ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'हैरी कब आएगा' (सूरजपाल चौहान) आदि कहानियाँ हिन्दी दलित कहानी को साहित्य के जगत में प्रतिष्ठित कर लिया।

दलित कहानी की विविधता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नामदेव लिखते हैं कि "ये कहानियाँ मात्र दर्द के दस्तावेज़ या विलाप राग नहीं हैं, अपितु समाजिक बदलाव की चेतना और संघर्ष की आवाज भी हैं।चेतना ही वह मूल बिंदु है,जो दलित कहानी को अलग पहचान दिलाती है।दलित कहानियों की एक बडी विशेषता यह है कि यहाँ नायक दलित व्यक्ति है, जो कहीं शोषण और अत्याचार का शिकार होता,कहीं इसका विरोध करता और कहीं पुरातन परंपराओं, रूढियों, अंधविश्वासों, वर्ण-जातिवादी मान्यताओं तथा असमानता पर आधारित धार्मिक,सामाजिक व्यवस्थाओं पर चोट कर उन्हें ध्वस्त करता, निषेध की अर्गलाओं को तोडता है।"[17]

पत्र-पत्रिकाओं में भी बहुत सारी कहानियाँ आयी हैं।इन कहनीकारों में रजतरानी मीनू,पारसनाथ,अजय यतीश,स्वरूप चन्द,अरविन्द कुमार राही,शत्रुघ्न कुमार,अंगत किशोर,विश्व जीतविश्व किरण आदि नाम लिया जा सकते हैं।इनके अलावा कुछ दलित कथाकारों ने लघु कथाओं पर भी हाथ रखा हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम हिन्दी दलित कहानीकारों में सबसे पहले आते हैं।उन्होंने दलित साहित्य की सीमा लांघकर गैर दलित लेखकों के बीच में भी अपना

जगह बना लिया है। 'सलाम' उनकी चौदह कहानियों का संग्रह है ।वे अपने कथ्य और शिल्प के कारण हमारा ध्यान बलपूर्वक खींचते हैं।सलाम कहानी संग्रह ओमप्रकाश की पहली कहानी है 'सलाम'। नगरों की अपेक्षा गाँवों में जाति भेद की भावना अधिक है। यह कहानी भंगी समाज से संबन्धित है।पूरी कहानी का ताना-बाना हरीश के विवाह के चारों तरफ बुना गया है।

'बैल की खाल' कहानी में मरे हुए जानवरों की खाल निकालनेवालों की बदरंग जीवन का वर्णन पूरी शिद्दत के साथ किया है।'ग्रहण' कहानी में वाल्मीकि जी ने उच्च कुल में जन्म लेने की स्वांग भरनेवालों को एक सामाजिक सच्चाई की याद दिलाते है।चौधरी परिवार के बिरम की पत्नी को पति की नपुंसकता के कारण बांझ बताकर प्रताडित किया जाता है,तो वह चन्द्रग्रहण की रात में रमेसर के साथ संभोग करके बालक की प्राप्ति करती है।अगली कहानी 'बहू' में इस कहानी का विस्तार ही मिलता है।

'पच्चीस चौका डेढ' सौ ग्रामीण लोगों की अज्ञता का लाभ उठाने वालों का चित्रण करती है।कहानी का नायक सुदीप जब अपनी पहली तनख्वाह के रुपये लाकर पिताजी को देता है।बरसों से पच्चीस चौका डेढ सौ का रट लगाये अपने बाप को समझाता कि पच्चीस चौका सौ है।डॉ पुष्पपाल सिंह वाल्मीकि जी की कहानियों के बारे में लिखते है कि–"ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'अम्मा' एक अभूतपूर्व पात्र हिंदी कहानी में प्रस्तुत करती है और हिंदी में दलित साहित्य का आंदोलन सा उठा है,उसमें अपनी महत्वपूर्ण स्थिति उपस्थित कराती है।ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अम्मा के वर्गीय चरित्र और निजता को अत्यंत कुशलता से उकेरा है।"[18]

दलित कहानी का प्रतिकार का स्वर है जयप्रकाश कर्दम।अन्य दलित कहानीकारों की कहानियों में शोषण का चित्रण तो मिलता है।लेकिन इसके विरुद्ध

क्या करना है इसकी जानकारी इनमें नहीं है।इस दृष्टि से जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ बिलकुल अलग हो जाती हैं।शोषण की प्रतिकार में क्या करना है कैसे करना है इन सबका चित्रण उनकी कहानियों में हैं।उनके पात्र सवर्णों से आँखें मिलाकर कहते हैं कि अब हम वे नहीं है जो आज तक तुम देखे आये हो।

'तलाश' कहानी का रामबीर सिंह बिक्रीकर अधिकारी है। वह गुप्ताजी के घर में किराये पर रहता है और रामबती चूहडी से खाना बनवाता है।मि.गुप्ता जब इसके विरोध कहता है तो रामबीर सिंह मकान खाली करने केलिए तैयार होता है,लेकिन जातिगत भेदभाव के आधार पर रामबती से खाना बनवाने से रोकने केलिए तैयार नहीं होता।सींग कहानी इससे भी दो कदम आगे है।चंपा साधारण खेतीहर मजदूर है।जब गाँव के मुखिया उसे मारने के लिए हाथ उठाता है तब ओढने में से उसका हाथ बाहर निकले और अगले ही क्षण मुखिया का सिर दो फाँक हो गया।उनकी कहानियाँ आत्मसम्मान की भावना से ओतप्रोत हैं ।

प्रहलादचन्द बोस हिंदी के नामी दलित उपन्यासकारों में एक है।'पुटूस के फूल' प्रहलादचन्द बोस का कथा संग्रह है। यह बारह कहानियों का संग्रह है। लटकी हुई शर्त' इस संग्रह की प्रौढ रचना है। 'बैंगन बारी' दलित समाज में हो रहे राजनातिक परिवर्तन की कहानी है।

मोहनदास नैमिशराय प्रख्यात दलित साहित्यकार है। 'आवाज़ें' उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। इस संग्रह के अतिरिक्त उनकी कई कहानियाँ पत्र -पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। आवाज़ें कहानी में सदियों का संताप झेल रहे मेहतरों पर अत्याचार करनेवाले ठाकुर अवतार सिंह के विरुद्ध विद्रोह को अभिव्यक्त किया है। 'अपना गाँव' लंबी सशक्त और मार्मिक कहानी है। इसमें दलितों पर होनेवाले अत्याचार का यथार्थ चित्रण है। दलितों की सामाजिक एकता को भी दिखाया है।

'महाशूद्र' कहानी में मरघट पर दाह संस्कार करनावाले आचार्य और डोम की वेदना को वाणी दी है। 'कर्ज़' कहानी में दलित जीवन को आर्थिक और सामाजिक पक्ष पर विचार किया है। 'एक अखबार की मौत' पंडित संपादक के कारण समाचारपत्र की नीति में परिवर्तन की कहानी है। क्योंकि वह केवल हिंदू संस्कृति के पोषक है। यह प्रतीकात्मक कहानी है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे हनन को दर्शाती है।

दयानंद बटोही की 'सुरंग' दलित कहानियों में अत्यंत ही उत्कृष्ट रचना है।इसकी कहानियों के बारें में कहा गया है कि,- "इसमें कथ्य और शिल्प का सुंदर संयोजन और साहित्य के समाजशास्त्र का मनोवैज्ञानिक निर्वहन हुआ है।सुरंग की लाक्षणिकता एक ही साथ व्यक्ति के अंधकारपूर्ण दमघोंटू वातावरण और तथा समाज की रूढी और परंपरागत संकीर्णताओं को व्यंजित करती है।"[19]

सूरजपाल चौहान दलित कथा साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं।उनकी 'हैरी कब आएगा' में कुल चौदह कहानियाँ संकलित हैं।उनके नायक मुख्यतः दो श्रेणियों में आते हैं।एक जिनमें संघर्ष की क्षमता है,दूसरा वे हैं जिन्में अपनी स्थिति को समझने और उनसे जूझने का धैर्य रखता है।'टीस्सू का पोता', 'पाँचवीं कन्या', 'अपना अपना धर्म', 'प्राण प्रतिष्ठा', 'घमंट जाति का', 'साजिश' आदि कहानियों के नायक इसी कोटी के हैं।

सत्यप्रकाश के अब तक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'चंद्रमौली का रक्तबीज' और 'राज्याभिषेक'। 'दलित ब्राह्मण' सत्यप्रकाश की चर्चित कहानी है। इसमें शिवदत्त नामक कर्मचारी ब्राह्मण बनने का प्रयास करता है। 'नीच कुल' कहानी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की कहानी है। इसमें कौशल नरेश प्रसेनजित और भिक्षु आनंद का प्रभावपूर्ण संवाद है।इस कहानी में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है।

दलित महिला कथाकारों ने भी हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया है।डॉ सुशीला टाकभौरे की कहानी सिलिया की मुख्य पात्र सिलिया कई तरह के समाजिक उत्पीडनों को सहकर मैट्रिक पास करती है।रजतरानी मीनु की सुनिता कहानी समाज परिवर्तन केलिए नारी को प्रेरित करता है।

रमणिका गुप्ता दलित कहानियों के बारे में लिखती है- "ये दलित कहानियाँ सामाजिक बदलाव लाने का आह्वान करती हैं।इन कहानियों में आक्रोश है, गुस्सा है,आग है तो साथ साथ संवेदना,मानवीयता और सब्र भी है,न्याय की उत्कट लालसा है,समानता की तीव्र ललक है।"[20] कहानियाँ जहाँ एक ओर दलितों की दीनता,और दमन की गाथा हैं,वहीं वे उपजते स्वाभिमान और संघर्ष चेतना की संवाहक भी हैं। दलितों में सम्मान और स्वभिमान से जीने का भाव विकसित हो रहा है।वे गंदे और घृणित पेशों से मुक्ति पाकर सम्मानजनक जीवन प्राप्त करने केलिए कार्यरत हैं।

लघुकथाएँ हिन्दी गद्य साहित्य की एक नयी विधा है।श्री बलराम लघुकथा के बारे में कहते हैं कि– "लघुकथा वह कला शिल्प है,जो किसी संवेदना को सूत्र रूप में पिरोकर उसे चिन्तन और चिन्ता की बहुआयामी समझ प्रदान करने का प्रयास करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कहानी संवेदना के सूत्रों को खोलकर उन्हें बहुआयामी स्तर प्रदान करती है।"[21] 'तारिका', 'मिनी युग', 'समग्र', 'अन्तर्यात्रा', 'लहर' और 'कथा बिंब' आदि पत्रिकाओं में लखुकथा विशेषांक आए हैं।सारिका ने लघुकथा विशेषांक निकालकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है।

समकालीन लघुकथाकारों में रत्नकुमार रांभरिया का नाम बडी तेजी से उभर कर आया है। उनकी रचना है बाँग तथा अन्य रचनाएँ।इसमें उनकी 109 लघुकथाएँ संग्रहीत हैं।'धर्म' उनकी चर्चित रचना है। रत्नकुमार रांभरिया की लघुकथा में स्पष्टता है।क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें क्या कहना है।शब्द चयन और

प्रभावान्विति के दृष्टिकोण में ये कथाएँ अप्रतिम हैं।लघुकथाएँ पत्र- पत्रिकाओं के माध्यम से धीरे- धीरे विकसित होती रही।

2.5 दलित नाटक

नाटक साहित्य की सशक्त विधा है। भारतीय साहित्य के इतिहास में सबसे पहले आनेवाला साहित्य सिद्धांत भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। किन्तु भारतीय साहित्य और संस्कृति में नाटक को उतनी प्रतिष्ठा नहीं मिली है जितनी कविता आदि विधाओं को। नाटक विधा और अभिनय आदि उसके प्रचार करनेवाले भरत पुत्रों को शूद्र होने का शाप दे दिया गया था। पंचम् वेद के रूप में नाटक की उत्पत्ति के बारे में बताते हुए भरतमुनि कहते हैं - "चूँकि शूद्र आदि जातियाँ वेदों का व्यवहार नहीं कर सकतीं, इसलिए शूद्र सहित सभी जातियों के श्रवण (मनोरंजन) और ज्ञानवर्द्धन आदि केलिए पंचम वेद नाटक की रचना की गयी।"[22]

दलितों को जागृत करके उनमें अस्मिता का बोध देने में लोक नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका है।समाज में दलित उपेक्षित हैं,उनके दुख और समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देता।इन लोक नाटकों द्वारा दलितों ने अपनी समस्याओं की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया।लोक नाट्य दलित समाज के बहुत करीब रहता है।उनके सुख- दुख,संवेदनाएँ तथा सहज भाषा- शैली लोक नाट्य में प्रतिबिंबित होता है।

लोक नाट्य का क्षेत्र जाति, समूह,गाँव, जिला तथा प्रान्त है। इन लोक नाट्यों में अपनी जनपदीय संस्कृति, रूढियाँ, मान्यताएँ एवं धारणाएँ अपने मूल रूप में सम्मिलित हैं। लोककथा एवं लोक नाट्य परंपरा विशुद्ध अर्थ में दलितों की चीज हैं। आधुनिक दलित साहित्य ने मुख्यधारा साहित्य को चुनौती देते हुए जो साहित्य रचे,उनमें नाटक और रंगमंच का विशेष महत्व है।इस दृष्टि से पूर्वोत्तर बंगला,

असमिया, दक्षिण में मराठी, पश्चिम में पंजाबी, राजस्थानी और उत्तर में भोजपुरी, मैथिली आदि लोक नाट्य प्रसिद्ध हैं। महात्मा फुले और अंबेडकर आदि समाज सुधारकों ने भी अपने मिशन के प्रचार के लिए ऐसे नाटकों और रूपकों का ही सहारा लिया।

महाराष्ट्र में अंबेडकर के दर्शन और विचार प्रणाली के प्रचार प्रसार केलिए सबसे पहले जलसा या तमाशा का प्रयोग किया था। चंद्रकुमार बरठे के अनुसार -" तमाशा दलितों विशेषतः महाराष्ट्र के महारों के लहू में रचा बसा है। अंबेडकर द्वारा किये गये कार्यों का चित्रण,जिसमें नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश केलिए किया गया सत्याग्रह या महाड़ के चवदार तालाब के जल केलिए, साथ ही महारों के वतनदारी, दलितों पर होनेवाले अत्याचार और उनकी गुलामी को नष्ट कर देनेवाले विषयों को संगीतमय नाट्य प्रस्तुतियों के द्वारा जन मानस तक पहूँचाने का कार्य इन तमाशों के माध्यम से होता था। "[23]

हिन्दी में दलित नाटकों की संख्या बहुत कम है।जितने लिखे हैं उनकी उपलब्धी भी अब बहुत बडी समस्या है।इसमें बहुत सारी रचनाएँ अनुपलब्ध है।कई रचनाएँ लघु आकार की हैं और कई नाटिका व एकांकी के रूप में हैं।दलित नाटककारों ने नाट्य रूप एवं नाट्य शिल्प के बारे में नहीं सोचा है। उन्होंने कथ्य पक्ष या वैचारिकता पर ही जोर दिया है। 1926 से लेकर आज तक लगातार दलित नाटक लिखे जा रहे हैं।

दलित समस्याओं को लेकर पहले भी कई नाटक लिखे गये हैं। लेकिन दलित चेतना के साथ उनकी समस्याओं को प्रस्तुत करने में वे सफल नहीं हुए।क्योंकि वे दलितों के जीवन मात्र को दर्शकों के सामने रखा,जिनका आधार सहानुभूति था। दलित नाटक की वास्तविक चिन्ता अपने समाज को पराधीनता की उन परंपराओं से

मुक्ति दिलाना है जिन्होंने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा से अस्पृश्य और अछूत घोषित करके हाशियेकृत किया था।

19वीं शती के आरंभ में हिन्दी प्रदेश में संवादों और गीतों के जरिए छुआछूत के खिलाफ प्रचार हो रहा था।1980 के बाद हिन्दी में दलित समाज के ही लेखकों ने साहित्य सृजन का प्रारंभ किया था।कुछ नाटक भी लिखे गये,कुछ मंचित भी हुए और दर्शक भी प्रभावित हुए।किन्तु पुस्तक के रूप में या पत्रिकाओं में प्रकाशित न होने के कारण दस्तावेज के रुप में सामने नहीं आये।

दलित समाज के प्रथम नाटककार के रूप में किसन फागू वनसोडे का नाम उल्लेखनीय है।उन्होंने संत चोखामेला के जीवन पर आधारित नाटक1924 के आसपास किया,ऐसा माना जाता है।1920 के बाद सामाजिक जागृति का दौर चला। शिव प्रसन्नदास के 'हरिजन' नाटक को डॉ.एन सिंह ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना है।इसका प्रकाशन 1959 में हुआ था। यह दो अंकों का पूर्ण नाटक है, जिसके प्रत्येक अंक में आठ आठ दृश्य हैं।

अछूतानंद को हिन्दी दलित नाटक का जनक माना जाता है। हिन्दी नाटक साहित्य में जो स्थान भारतेन्दु को है वही स्थान दलित नाटक साहित्य में स्वामी अछूतानंद को है।दलित नाटकों की परंपरा में अछूतानंद का 'रामराज्य न्याय' नाटक का विशेष स्थान है।यह नाटक 1964 से पूर्व कई बार दिल्ली,कानपूर और लखनउ में मंचित किया गया है।बाद में बहुजन कल्याण प्रकाशन ने इसे प्रकाशित किया।चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु के अनुसार -"रामराज्य न्याय नाटक बहुत लोक प्रिय हुआ।14 सालों तक अमुद्रित रहने पर भी 1964 में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ।यह नाटक कितने ही शहरों में स्टेजों पर खेला गया।"[24] इसमें जन्म के आधार पर स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने की साजिश का पर्दाफाश किया है।

स्वामी अछूतानंद ने 'आदि हिन्दू' सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए दलित समाज पर अतीत में हुए अन्यायों और अत्याचारों से अवगत कराने केलिए 'राम राज्य न्याय' शीर्षक नाटक लिखा। 'आदि हिन्दू' सम्मेलनों के बाद आधी रात में जब इसकी प्रस्तुति होता था,इसे देखने के लिए हजारों लोग इकट्ठे हो जाते थे।अछूतानंद के 'शंबूक मुनि', 'मायानंद' ,'बलिदान', 'पारखपद', ''बलिछलन', 'रामराज्य न्याय' आदि नाटक प्रकाशित हुए।

हिन्दी दलित नाटक साहित्य को ज्यादा से ज्यादा नाटकों से समृद्ध बनाने का काम माता प्रसाद ने किया ।उन्होंने इतिहास और पुराणों के पात्रों और घटनाओं के अलावा सामाजिक समस्याओं को भी नाटक का विषय बनाया।छुआछूत, अस्पृश्यता, शोषण, धर्मिक संकीर्णता,धर्मिक पाखण्ड, अंधविश्वास, सवर्ण मानसिकता आदि का पर्दाफाश करते हुए दलित समाज में जागृति लाने का प्रयास माता प्रसादजी ने किया।उनके नाटक केवल दलित समस्या को ही चित्रित नहीं करते उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।समस्या-विश्लेषण-समाधान ये उनकी नाट्य धर्मिता की आत्मा है। 'अछूत का बेटा', 'धर्म के नाम धोखा', 'वीरांगना झलकारी बाई ', 'वीरांगना ऊदादेवी पासी', 'तडप मुक्ति की','अन्तहीन बेडियाँ' ,'प्रतिशोध', 'धर्म परिवर्तन' , 'हम एक हैं', 'जातों का जंजाल','दिल्ली गद्दी पर, 'खुसरो भंगी', 'दलितों का दर्द' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं।

माता प्रसाद के 'धर्म के नाम धोखा', 'अछूत का बेटा' आदि सामाजिक नाटक हैं और 'प्रतिशोध' ऐतिहासिक।इन तीनों नाटकों में धर्म के नाम पर हो रहे शोषण का पर्दाफाश किया है।'वीरांगना झलकारी बाई' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है।1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अद्भुत शौर्य रानी लक्ष्मी बाई को सब जानते हैं। लेकिन उनके भेष में स्वतंत्रता के लिए लडी झलकारी का नाम

तक कहीं भी सुनाई नहीं देता।इस झलकारी बाई को प्रकाश में लाने का स्तुत्य काम माता प्रसादजी ने किया।इस नायिका प्रधान नाटक में झलकारी बाई के अलावा रानी लक्षमी बाई,पूरन कोटी, भाऊ बक्षी आदि ऐतिहासिक पात्र भी आते हैं।'अछूत का बेटा' नाटक में मंदिर प्रवेश के संदर्भ में पेश आयी अस्पृश्यता की समस्या को मुख्य विषय बनाया है।'अंतर्जातीय विवाह' में गैर दलितों की दहेज समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। इसमें उनके राजनीतिक व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप देख सकते हैं।

सूरजपाल चौहान दलित नाटक के सशक्त नाटककार हैं।उनके नाटकों में 'सच कहनेवाला शूद्र है','छू नहीं सकता' और 'नयी चादर का रहस्य' आदि चर्चित नाटक हैं।'सच कहनेवाला शूद्र 'नाटिका के रूप में लिखा गया है।इसमें पंडितों के ठगी का खुलासा किया गया है।दलित लोगों में अंधविश्वास फैलाने में इन पंडितों का हाथ बहुत हैं।वे इन भोले-भाले लोगों को अपने जाल में फँसाते हैं और कई प्रकार से इनका शोषण करते हैं।एक दलित युवक अवतारवाद और खीर से बच्चा पैदा होना झूठ साबित करता है।इस नाटक में व्यंग्य का भरपूर प्रयोग किया है।'छू नहीं सकता' में दलितपन की समस्या को बडी गंभीरता से लिया है।यह 'नाटक अंबेडकर के बचपन की घटनाओं पर आधारित है।

'नई चादर का रहस्य' में पंडितों की धोखेबाजी और मक्कारी का वर्णन है।सरकारी दफ्तर में काम करनेवाला पंडित बाज़ार के भाव से भी कम भाव में चादर बेचता है।अंत में पता चलता है कि पंडित का पिता श्मशान घाट का पंडित है और मुर्दों को जलानेवाला है।वहाँ से चादर उठाई जाती हैं और सस्ते दामों में बेचते हैं। इसमें नाटककार ने यह साबित किया है कि जाति का ऊँचा होना किसी के व्यक्तित्व का प्रमाणपत्र नहीं है।

एन .आर .सागर का 'अंतिम अवरोध' और 'मार्ग का काँटा' बहुचर्चित नाटक हैं।रमणिका गुप्ता ने अंतिम अवरोध नाटक को दलित साहित्य केलिए नहीं,हिन्दी साहित्य केलिए भी एक उपलब्धि माना है।महाभारत पर आधारित यह नाटक भ्रुवाहन के चरित्र पर आधारित है।भ्रवाहन की नाग रानी चित्रांगता और अर्जुन का पुत्र है। इसमें कृष्ण को चतुर चालाक एवं कपडी और अर्जुन को दंभी, स्वार्थी,बर्बर एवं संवेदन शून्य पिता के रूप में प्रस्तुत किया है।नाटक में कृष्ण और अर्जुन की सवर्ण मानसिकता का पर्दाफाश किया है।'लाजवंती' और 'दूसरा पक्ष' उनकी अन्य नाट्य कृतियाँ हैं।

'मेरा वजूद', 'श्रेष्ठ कौन', 'मान-सम्मान', 'फाँसी', 'आजादी किसकी', 'झूठा अहंकार' आदि हिन्दी के प्रसिद्ध दलित रचनाकार कर्मशील भारती के चर्चित नाटक हैं।'मेरा वजूद' में दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या को उठाया गया है।'श्रेष्ठ कौन' में बंधुआ मजदूरी को प्रमुख विषय को रूप में चुना है।'मान -सम्मान' की कथावस्तु एक दलित दूल्हे को सवर्णों द्वारा घोडी से उतारने की सत्य घटना पर आधारित है।सभी नाटकों में सवर्णों के अहंकार और दलित चेतना की अभिव्यक्ति मिलती हैं।'फाँसी' में एक दलित युवक को सवर्ण युवती से प्रेम विवाह करने के कारण उसके मित्र को सवर्ण पंचायत ने फाँसी पर चढाया।यह नाटक हरियाना में घटित सच्ची घटना पर आधारित है।

'झूठ अहंकार' में सवर्णों के जातीय दंभ का भंडाफोड हुआ है।सवर्ण दलितों को पढने नहीं देता।इसके लिए वह क्रूरता के किसी भी हद तक जाने केलिए तैयार होते हैं।सवर्णों की इस मानसिकता पर नाटककार ने प्रकाश डाला है। 'गुनाहों के देवता' नामक नाटक में ऐतिहासिक परिवेश में आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

मोहनदास नैमिशराय हिन्दी के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार हैं।'अदालत नामा', 'डेढ इंच मुस्कान', 'हलौ कॉमरेड' आदि नाटक एवं अनेक रेडियो नाटक उनके नाम से बाहर आये हैं।'हैलो कॉमरेड' में वर्ण व्यवस्था की बुराई, नौकरी के क्षेत्र में व्याप्त जातीयता, राजनीति के क्षेत्र में मौजूद दलित उत्पीडन आदि की आलोचना की है।

हिन्दी के प्रमुख दलित साहित्यकार डॉ.एन सिंह ने अपने 'कटौती में गंगा' नामक नाटक से इस क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है।यह नाटक संत रैदास के जीवन पर आधारित है।मध्यकालीन भारत में बनारस के पास के गाँव में जन्मे संत रैदास ने अपनी वाणी के द्वारा सदियों से पद दलित बहुसंख्यक लोगों में आत्मसम्मान की भावना पैदा करने की कोशिश की।डॉ.जीतू भाई मकवाणी ने इस नाटक की बहुत प्रशंसा की है।'कठौती में गंगा' रैदास के सार्थक और सुन्दर जीवन की प्रेरक एवं तेजस्वी कृति है।अपनी क्षमता के लिए कष्ट सहने की प्रेरणा इस रचना द्वारा मिलती है।

रूपनारायण सोनकर दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।वह धर्म व्यवस्था को दलित शोषण का मूल कारण मानते हैं।'विषधर', 'महानायक', 'समाज द्रोही', 'एक डिप्टी कल्कटर' और 'छायावती' उनके प्रमुख नाटक हैं।'समाज द्रोही' और 'महानायक' में सांप्रदायिकता का व्यवस्थित एवं यथार्थ चित्रण मिलता है।नेताओं की क्रूर मानसिकता,जो भोली भाली दलित जनता के शोषण,नरसंहार करवाते हैं,इसका चित्रण बडी बेबाकी से किया है।

सुशीला टाकभौरे सशक्त महिला रचनाकार हैं।सुशीला जी पहले दलित महिला नाटककार है।'रंग और व्यंग्य' और 'नंगा सत्य' उनकी नाट्य रचनाएँ हैं।'नंगा सत्य' में दलित नारी शोषण को प्रमुख विषय बनाया गया है।नारी का आर्थिक,सामाजिक,शैक्षिक और दैहिक शोषण सब कहीं हो रहा है।दलित नारी को

शोषण से मुक्त कराने का मार्ग अंबेडकर की विचारधारा में तलाशने का प्रयास नाटककार ने किया है।नीलिमा नामक सामाजिक कार्यकर्ता इस नाटक का प्रमुख पात्र है।गाँव के जमींदार ठाकुर सत्यजीत सिंह उसका अपमान करता है।नीलिमा उसका सख्त विरोध करती है। ममता, सम्मान,और भाईचारे का आदर्श नाटक में प्रस्तुत हुआ है।

'रंग और व्यंग्य' लघु नाटकों का संग्रह है।'जीवन के रंग', 'चश्मा', 'व्हील चेयर' और 'समर्पित जीवन' इसमें संकलित लघु नाटक हैं।'रंग और व्यंग्य' में जाति भेद पर व्यंग्य किया गया है।'जीवन के रंग' में अंध श्रद्धा,स्त्री की दासता,धार्मिक कुरीतियाँ और पुरुष वर्चस्ववादी समाज का वास्तविक चित्र दर्शाया है।अंबेडकर के विचारों के जरिए एक नयी राह बनाने का संदेश इसमें दिया गया है, जिससे तमाम कुरीतियाँ मिट जाये।

'चश्मा' प्रतीकात्म नाटक है जिसमें पाठकों को नई सोच-विचार, दृष्टि, नई चेतना और परिवर्तन की कामना पैदा करने की कोशिश की गयी है। इसमें यह बताया गया है कि जिस चशमे से हम इस समाज को देख रहे हैं, दोष उस चशमा का नहीं है। दोष हमारी दृष्टि में है। इसलिए चश्मा बदलने से सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। दृष्टि और मानसिकता में बदलाव लाना चाहिए। 'व्हील चेयर' में समाज की अपाहिज मानसिकता की आलोचना की गयी है।

कवि,कथाकार और दलित विमर्शक के रूप में विख्यात ओमप्रकाश वाल्मीकि अच्छे नाटककार भी हैं।'दो चेहरे' उनके चर्चित नाटक है।इस नाटक का मंचन कई नाट्य संस्थाओं द्वारा हुई है।इसमें मजदूर संगठनों की दलित विरोधी गतिविधियों का पर्दाफाश किया है। साथ ही साथ मजदूर नेताओं की बहुरूपियेपन का अनावरण भी हुआ है।'ढोल की पोल', 'खेल मजूर का' आदि वाल्माकि जी के नुक्कड नाटक हैं।

अनिता भारती का नाटक 'दहाड उठा सिंह' जिसका नाम था भीम बाबा साहेब अंबेडकर, महाड आन्दोलन पर आधारित है।उनका दूसरा नाटक 'सिद्धार्थ का गृह त्याग' गौतम बुद्ध के गृह त्याग को नयी परिभाषा देता है।इसमें नाटकार ने यह साबित करने का प्रयास किया है कि सिद्धार्थ अपना घर धर्म या मोक्ष केलिए नहीं बल्कि दो राज्य को आपसी युद्ध से बचाने केलिए किया था।गौतम बुद्ध युद्ध विरोधी थे।

प्रो. रतनलाल सोनग्रा का नाटक है 'क्रान्तिबा फुले'।दलित क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा जोतिराव फुले के जीवन संघर्ष को नाटक में प्रस्तुत किया है।कृष्णपाल परख का द्वन्द सवर्ण -दलित संघर्ष को प्रस्तुत करनेवाला नाटक है।मोहन सिंह निमेश का नाटक है 'सीधा मुकाबला'। इसमें अपने वर्ग को हीन दृष्टि से देखनेवाली एक पढी - लिखी दलित नारी का चित्रण किया गया है। अन्त में वह अपने आप को पहचानती है और अपने समाज के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

सुशील कुमार सुमन हिन्दी के प्रमुख दलित नाटककार हैं। 'एक बार फिर', 'ब्रहम न्याय' और दही च्यूडा आदि उनके उल्लेखनीय नाटक हैं। नाटकों में दलितों को मूर्ख बनानेवाले धोखेबाज और दकियानूसी पंडितों की आलोचना की है।

श्रीकान्त व्यास के 'आज का द्रोण' में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। आज के द्रोण एकलव्यों के अंगूठा ही नहीं कटवाते उनका आर्थिक मानसिक और दैहिक शोषण भी करते हैं। बुद्ध शरण हंस के प्रमुख नाटक हैं 'बुद्धम शरणं गच्छामी', 'दो पण्डे' और 'चौराहे पर खडी माँ' आदि।पहले नाटक में बुद्ध के शरण लेने और ब्रहमवाद की दूषित सोच से दूर रहने का संदेश दिया है। 'दो पण्डे' में पंडितों की क्षुद्र और अपराधिक मानसिकता का पर्दाफाश हुआ है। चौराहे पर

खडी माँ’ में अंधविश्वास और मूर्तिपूजा को छोडकर पढाई करने का संदेश दिया गया है।

हिन्दी के दलित नाटक यह प्रमाणित करता है कि दलित साहित्य में नाटक साहित्य की बडी अहमियत है।इनमें दलित चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।अधिकांश रचनाएँ लघु आकार की हैं, नाटिका या एकांकी के रूप में हैं।दलित नाटककारों ने कथ्य और वैचारिक पक्ष को ही अधिक प्रधानता दी है।शिल्प पक्ष को उतना महत्व नहीं दिया है। इन नाटकों से दलित जीवन से संबंधित विभिन्न मुद्दों को सजीवता मिली है।दलित शोषण, उत्पीडन,धार्मिक कुरीतियों, सामाजिक बुराईयों,राजनीतिक छल,छद्म जातिवाद आदि का पोल खोलने केलिए इन नाटककारों ने ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक घटनाओं का सहारा लिया है।इसके जरिए सवर्ण वर्चस्ववादिता का भंडाफोड किया है।इन नाटककारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि वर्गहीन,वर्णहीन समाज में ही दलितों की उन्नति संभव है।

2.6 दलित एकांकी

2012 में डॉ . सर्वेश्वर कुमार मौर्य द्वारा संपादित दलित एकांकी संचयन दलित साहित्य के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें 16 एकांकीकारों की एकांकी संकलित किया गया है। इसमें संकलित तमाम एकांकी विषय की विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कुछ में दलित पीडा का वर्णन और प्रतिरोध है तो कुछ में अस्पृश्यता और शोषण का खुलासा है।कुछ एकांकियाँ दलित उत्पीडन के चित्रण के दायरे से बाहर निकलकर अन्य ज्वलंत समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। अशोक कुमार का ‘वारिस’ इसके लिए अच्छा उदाहरण है। इसमें भ्रूण हत्या जैसे गंभीर विषय पर विचार किया गया है। गुजरात के दंगों के दौरान प्रशासन की भूमिका कैसी रही इसका सही तस्वीर कँवल भारती के ‘नीरो और बानगी’ में पेश किया है।

दलित नाटकों में परवर्तन की आवाजें गूँजती हैं। पुराने प्रतिमानों और ढाँचे में नयी बात करना प्रभावी नहीं होगा इसलिए दलित नाटकों ने अपने लिए नये मापदंड गढे हैं। इन नाटकों में यथार्थवादी स्वर है और प्रतिरोध की चेतना भी।

2.7 दलित जीवनी

जीवनी विधा में रचित दलित साहित्य की कृतियों की संख्या बहुत कम हैं।इनमें दलित साहित्य के आधुनिक इतिहास के आधार अछूतानंद की जीवनियाँ उपलब्ध हैं।कालक्रम के अनुसार उनकी पहली जीवनी डॉ.पं.मौजीलाल मौर्य द्वारा रचित अछूतानंद का जीवन परिचय है।यह एक लघु पुस्तिका के रूप में 1956 में मैनपुरी से प्रकाशित हुई।इसकी शैली पद्यात्मक लोकगीत है।बाद में 1960 में चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने 'आदि हिंदु आंदोलन के प्रवर्तक श्री 108 स्वामी अछूतानंद हरीहर की जीवनी' शीर्षक से जीवनी प्रकाशित की।स्वामीजी की यह जीवनी उद्देश्यपूर्ण सृजन को सामने लाती है। जीवनीकार के अनुसार " वस्तुतः श्री 108 स्वामी अछूतानंद जी वह महापुरुष हैं, जिन्होंने बाबा साहब अंबेडकर से पहले उत्तर भारत में दलित और पिछडे लोगों के मुक्ति आंदोलन को,अपने पैरों पर खडे होकर संघर्ष करने की घोषणा किया।" [25]

महाकवि बिहारीलाल हरित स्वामी अछूतानंद की परंपरा के कवि थे। हरित जी की जीवनी टुकडों में व अव्यवस्थित रूप में स्मारिकाओं, समाचार पत्र - पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित होती रही। किन्तु किसी साहित्यकार ने अभी तक उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर कोई जीवनी नहीं लिखी है। रामजीलाल सहायक एवं श्री माता प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में अपेक्षित जानकारी अभिनंदन ग्रंथों से प्राप्त होती है।

डॉ . अंगने लाल ने 'आदि वंश- कथा' नामक लघु पुस्तिका में शंबुक ऋषि की कथा, एकलव्य और सूपा ऋषि की कथा, संत शिरोमणी रैदास जी की कथा, बोधिसत्व बाबा साहेब अंबेडकर की कथा, लोकमंगल धर्म की आदि कथाएँ बुद्धवादी दृष्टिकोण से सृजित की है। इसी क्रम में डी.सी. डीन्कर ने 'स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान' पुस्तक में 50 से अधिक अछूत स्वतंत्रता सेनानियों का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया है। उनमें 'अमर शहीद मातादीन' (भंगी), 'चेतराम' (जाटव), 'बाबूराम मेहतर', 'रामचंद भंगी', 'नत्थूराम' (धोबी), 'अमर वीरांगना झलकारी बाई' (कोरी), 'महावीरी देवी' (भंगी),'पन्ना धाई' (धानुक) आदि की जीवनियाँ हैं।

मोहनदास नैमिशराय ने बच्चों केलिए हमारे प्रेरणस्त्रोत 'डॉ.भीमराव अंबेडकर' नामक लघु पुस्तिका निकाली। डॉ.राजपाल सिंह राज ने लघु जीवनी की पुस्तकें - 'संत शिरोमणी रविदास', 'स्वतंत्रता संग्राम के महा बलिदानी ऊधमसिंह व्यक्तित्व एवं कृतित्व' की रचना की है।

संविधान के अस्तित्व में आने के बाद कुछ जीवनियाँ साहित्येतर विद्वानों ने अधिक लिखी है जैसे विजय कुमार पूजारी द्वारा रचित बाबा साहब डॉ.अंबेडकर 1985 में प्रकाशित हुई और सोहनलाल शास्त्री द्वारा रचित 'बाबा साहब डॉ. बी .आर अंबेडकर के संपर्क में पच्चीस वर्ष',डी.आर जाटव कृत 'डॉ.अंबेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व' और हिमांशु राय द्वारा लिखित 'युग पुरुष डॉ.अंबेडकर' आदि महत्वपूर्ण जीवनियाँ हैं।

2.8 दलित आलोचना

हिंदी की अधिकांश आलोचना का मुख्य आधार संस्कृत काव्य शास्त्र रहा है।हिंदी साहित्य के आलोचक संस्कृत काव्य शास्त्र के आदर्श,जिसमें भाव सौंदर्य और कला पक्ष प्रदान होता है इस दृष्टिकोण से दलित साहित्यिक कृतियों को भी देखते हैं।दलित साहित्य की आलोचना इस आधार पर नहीं कर सकता, क्योंकि इसका लक्ष्य ही अलग है।अंबेडकरवादी साहित्य आलोचना किसी भी साहित्यिक रचना का विश्लेषण करते समय उसमें निहित वर्गीय ढाँचे के साथ-साथ उसके जातिगत ढांचे को भी उजागर करते हैं।फिर सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक अस्मिता की पहचान कराता है।

दलित आलोचना का मापदंड स्वर्ग नरक,भाग्य -भागवान,अंधविश्वास का विरोध,समता स्वतंत्रता का समर्थन और पौराणिक आख्यानों पर अविश्वास आदि हैं।इसमें दलित उत्पीडन,दमन और दलन का चित्रण है।भाषा में कडवाहट,सूखापन और आक्रोश हैं।इसमें सीधी सपाट भावनाओं की अभिव्यक्ति है।इसलिए गैर दलित आलोचक इसका सौंदर्य कभी नहीं देख पाएँगे।वे उसमें कला का अभाव देखते हैं।इसलिए सामाजिक दंश के भुक्त भोगी ही दलित साहित्य के सही आलोचक हो सकते हैं।

डॉ.एन सिंह द्वारा संपादित 'दलित साहित्य -चिन्तन के विविध आयाम' हिन्दी दलित साहित्य की पहली आलोचना मानी जाती है।इसके बाद डॉ. टी.पी राही की पुस्तक 'हिन्दी दलित कविता नये संदर्भ ', रजत रानी मीनु की 'नवें दशक की हिन्दी दलित कविता ', डॉ.धर्मवीर की 'कबीर के आलेचक','कबीर के कुछ और आलोचक','सूत न कपास','कबीर और रामान्द-किंवदन्तियाँ','कबीर बाज भी कपोत भी पपीहा भी' आदि महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनके महत्व पर प्रकाश डालते

हुए डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन ने लिखा है कि - " डॉ . धर्मवीर ने दलित दृष्टि से हिन्दी आलोचना साहित्य में बडी भूमिका निभायी है। जिसका प्रभाव दलित चिन्तन की दिशा में अनिवार्य तथा दूरगामी होने का आसर हैं। कंवल भारती दलित विमर्श का प्रारंभ कबीर के चिन्तन से मानते हैं।"[26]

दलित साहित्य के समीक्षकों में डॉ.धर्मवीर का नाम सम्मान से लिया जाता है।उन्होंने कबीर पर और डॉ हज़ारी प्रसादजी आलोचना पर कई आलोचना ग्रन्थ लिखे हैं।कबीर को लेकर डॉ धर्मवीर ने दलित आलोचना के क्षेत्र में बडी भूमिका निभाई है। डॉ.एन सिंह की 'संत रैदास मूल्यांकन' समीक्षात्मक ग्रंथ है।इसमें संत रविदास के जीवन पर विवेचना लिखी गयी है।चंद्रकुमार बरठे ने हिंदी दलित आलोचना ग्रंथ लिखा है।डॉ आनंद ने हिंदी साहित्स में दलित चेतना पर समीक्षा ग्रंथ लिखा।डॉ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने 'दलित साहित्य और सामाजिक न्याय' नामक विवेचनात्मक ग्रंथ लिखा।

कंवल भारती हिन्दी दलित आलेचना को अपनी लेखनी और चिन्तन से ठोस आधार देनेवाले साहित्यकार हैं।उनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृति है 'दलित विमर्श की भूमिका'।इसमें उन्होंने दलित विमर्श की भूमिका,इसकी अर्थवत्ता,उसका संक्षिप्त इतिहास ,उसके विविध आन्दोलन ,राजनीति और साहित्य में उसका विकास किस प्रकार हुआ,इस तरह की समस्याओं पर प्रकाश डाला है।ब्राहमणवाद के तह में जाकर इसके पीछे छुपे सांस्कृतिक फासीवाद का पर्दाफाश करने में वे सफल हुए है।उन्होंने इस अमानवीय व्यवस्था के इतिहास को भी रेखांकित किया है।इतिहास का गंभीर आध्ययन कर उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को भारतीय सामाजिक व्यवस्था को शिथिल बनाने का कारण बताया है।

दलित साहित्य में दो तरह के समाक्षात्मक ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं।एक दलित साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाओं का वार्षिक समीक्षा।दूसरा दलित साहित्य की अलग अलग कृतियों पर आलोचनात्मक विचारों का लेखन।डॉ. तेज सिंह ने 2013 में दलित साहित्य की कृतियों की विवेचना की है।उन्होंने 'आज का दलित साहित्य' नामक अपने ग्रन्थ में जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास छप्पर,सत्यप्रकाश का उपन्यास जस तस भई सवेर,ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन,मोहनदास नैमिनशराय की आत्मकथा अपने अपने पिंजरे आदि रचनाओं पर आलोचनात्मक ढंग से प्रकाश डाला है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम दलित ने 'साहित्य वार्षिकी' द्वारा प्रत्येक साल में दलित साहित्य का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।

2.9 दलित पत्रकारिता

आधुनिक युग मीडिया का युग है।समाज में मीडिया का व्यापक असर होने के कारण सामाजिक मूल्यों की स्थापना केलिए माडिया की भूमिका अन्य माध्यमों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है।दलितों के अस्मिता संघर्ष में साहित्य की विभिन्न विधाओं के समान पत्रकारिता का भी अनुपम स्थान है।दलित पत्रकारिता का इतिहास सौ वर्षों से भी अधिक पुराना है।हिंदी क्षेत्र में ही नहीं गैर हिंदी क्षेत्र के कई प्रदेशों से भी हिंदी की ढेरों दलित पत्र -पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं।हिंदी में दलित पत्रकारिता का उदय डॉ.अंबेडकर के जन्म से पहले ही हुआ था।

आज भी गाँव की स्थिति बेहत्तर नहीं है।देश के कई भागों में दलित हत्याकांडों की सिलसिला जारी है।दलित समाज का कोई व्यक्ति जूता पहनकर चल नहीं सकता,उन्हें मंदिरों में भी प्रवेश नहीं है,होटलों में उन्हें चाय नहीं दी जाती,नाई बाल नहीं काटता।सार्वजनिक कुएँ में पानी भरने नहीं दिया जाता।दलित दूल्हा घोडी पर नहीं चढ सकता आदि दलित जीवन से जुडी सामाजिक दमन की नीतियाँ आज

भी जिंदा हैं।इन घटनाओं को दूसरा पत्रकार सामने नहीं लाता।वह एक दलित पत्रकार ही कर सकता है। क्योंकि उसके दिल में ये सभी घटनाएँ ज्वाला भटकाती हैं।देश के कई गांवों में सास बहू एक ही साडी में गुज़ारा करती हैं।करोडों बच्चे ऐसे है जो जूठन खाकर जिंदा रहते हैं।

गोपाल बाबा बलंकर प्रथम दलित पत्रकार थे। उन्होंने 'अस्पृश्यता नाशनी' पत्रिका प्रकाशित की थी। 1905 में स्वामी अछूतानंद हरिहर ने दिल्ली से 'अछूत' और 1917 में 'आदि हिंदू समाचार पत्र' प्रकाशित किया। इसी श्रेणी में 1927 में पंडित नंद किशोर तिवारी ने 'चाँद' पत्रिका के 'अछूत' अंक का संपादन किया था। इन पत्र पत्रिकाओं को मुख्यतः दो रूपों में देखा जा सकता है। पहले प्रकार की पत्रिकाएँ हिंदी साहित्य की परंपरागत पत्रिकाएँ हैं जिनमें दलित समस्याओं को स्थान दिया गया है। दूसरे प्रकार की पत्रिकाएँ वे हैं जो दलित चेतना पर केन्द्रित और दलितों द्वारा प्रकाशित एवं संपादित हैं। पहली श्रेणी की पत्रिकाओं में 'हंस', 'सारिका', 'पश्यन्ती' ,'कथाक्रम', 'वर्तमामान साहित्य', 'युद्धरत आम आदमी' आदि आती हैं।

हिंदी पत्रकारिता के समान दलित पत्रकारिता का नेतृत्व भी उत्तर प्रदेश ने ही किया है। 1924 में हिंदी दलित पत्रकारिता के शुरूआती दौर में जात - पाँत के तोडक मंडल के मूर्धन्य हिंदी सेवी संतराम की 'उषा' मासिक ने सामाजिक प्रश्नों को काफी जगह दी थी। दलित पत्रकारिता पर विचार करते हुए मोहनदास नैमिशराय कहते हैं – "दलितों में विकास का परिवर्तन उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिए था इसके कारण भारतीय राजनाति के दोहरे चरित्र में निहित हैं। क्योंकि जिन लोगों के हाथ में सत्ता के सूत्र हैं, उनकी मानसिक बनावट हिंदूवादी ही है। और ये लोग दलितों को बराबर का हक, यथार्थ के धरातल पर देना ही नहीं चाहते हैं।" [27]

'समता' गाँधी जी की हरिजन की प्रतिक्रिया में आया था। 1 जून 1934 में मुंशी हरिप्रसाद टम्टा ने प्रिंटिग प्रेस, अलमोडा से प्रदेशवार तस्वीरपेश करने के प्रसंग में इसे प्रकाशित किया।इसके शीर्ष आमुख में अछूत -दलित,आदि हिंदू,शिल्पकार,मज़दूर तथा कृषकों का पत्र रखा गया था।'परिवर्तन' पाक्षिक पत्र है।इसे 1950 में स्वामी अयोध्यानाथ दंडी ने अलीगढ से निकाला।आज यह पत्र चंद प्रतियाँ छोडकर अनुपलब्ध बताया है।'पाक्षिक' के संस्थापाक परसाराम धर्मवीर थे। वे शोषितों केलिए काफी समय तक निर्भीकता से काम किया।

'सिंहनाद' पत्र की शुरुआत 1957 में दयानंद व्यास ने की। विधिवेत्ता सुंदरलाल इसके संपादक था।पत्र का शीर्ष वाक्य जनवाणी अग्रदूत था।'उत्थान' का प्रवेशांक 1959 में पाठकों के हाथ में आया। यह मासिक पत्रिका है। संपादक एवं प्रकाशक राय सिंह थे। अंबेडकर भवन से संबद्ध परिगणित जाति कल्याण संस्थान का मुख पत्र था। यह दिल्ली के निकलता था।

'दलित केसरी' का शुभारंभ 1985 में सदर बाजार कैंट इलाहाबाद से हुआ। शोषित, पीडित या मानवता के उद्दान व देशद्रोहियों के विरुद्ध जनाक्रोश के प्रतिनिधित्व में निष्पक्ष एवं निर्भीकपाक्षिक आदि की संकल्पना के साथ यह पत्र आया। इसके संपादक एवं संस्थापक एस .राव संजीवन नाथ बौद्धाचार्य है। पत्र केलिए पाँच सदसीय संपादक मंडल व दो सदसीय सलाहकार मंडल था। दिल्ली, पंजाब,राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र से एक एक प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। छायाकार, व्यवस्थापक के साथ सभी के नाम मुख्य पृष्ठ पर दिये जाते थे।

'अनार्य भारत' पत्र का संस्थापक संपादक सुंदरलाल सागर है। सागर जी ने मई 1990 मैनपुरी (उ.प्र) से शुरू किया। फिर इसका संपादक अजय सागर बना। शीर्षक के बीच दहाडते सिंह को भारत का मानचित्र में दर्शाया। इसे अनार्य का

प्रतीक माना गया है। यह शीर्षक अंबेडकर के 'बहिष्कृत भारत' पत्र का अनुकरण लगता है। क्योंकि बहिष्कृत जातियों का गौरव-अस्तित्व वापस दिलाने के उद्देश्य से अखबार पर बब्बर शेरों के चित्र छापे जाते थे।

'ज़मीं के तारे' 1962 में द्वतीय विश्व युद्ध के योद्धा स्वतंत्रता सेनानी मेवाराम महाशय ने दीपनगर अलीगढ से इसे शुरू किया। पत्र का संपादन मिश्रीलाल दीपक ने किया। 'स्वाधीन भारत' 1968 में अलीगढ से प्रकाशित हुआ। यह पत्र हर शनिवार को छपता था।'समता शक्ति' नामक पत्र को 1972 में मोहनदास नैमिशराय ने निकाला। यह पत्र कुछ दिनों तक ही रहा। इस पत्र के जीर्ण -शीर्ण दो प्रतियाँ ही प्राप्त है। इससे असके संपादक का नाम ज्ञात नहीं हो पाया। बहुजन अधिकार पत्र 1981 में से शुरू हुआ। 'भीम सैनिक' सितंबर में सप्ताहिक पत्र के रूप में मेरठ से प्रकाशित हुआ। पी. एस .मौर्य इसके स्वामि थे।

'भीम संदेश' 14 अप्रैल 1969 को एन.एस बनाफल के प्रकाशत्व में प्रकाशित हुआ। 'बहुजन संकट' का प्रवेशांक 1980 दैनिक पत्र के रूप में संतनगर से प्रकाशित हुआ। इसका संपादक स्वामी काशीराम है। इसकी दैनिक आवृत्ति अल्पजीवि रही है। लेकिन सप्ताहिक रूप अब भी ज़ारी है। मोतीराम शास्त्री ने 1978 में रायल होटल लखनऊ से दलित चेतना नामक पत्र का प्रारंभ किया। तीन साल तक चलकर 1981 के अंत में यह पत्र बंद हो गया।

'दिल्ली का दहाड' (राजबीर सिंह सागर) 'बिहारी कोलनी', 'शाहदरा', 'कंचन एक्सप्रेस' (ओमप्रकाश, प्रवीण कुमार हरित) , 'समय की आवाज़' (श्रीमती शकुंतला), 'दुर्बल की आवाज़' (रामजी लाल), 'समता संदेश' (रामगोपाल भारतीय), 'ऐतिहासिक छलांग' (बलवंत सिंह चर्वाक), 'भीम आदेश' (तेजपाल आजाद),'बहुजन का भाईचारा' (डॉ. क्रांति), 'दलित टुडे' (महीपाल सिंह) आदि दिल्ली के प्रमुख दलित पत्रिकाएँ हैं।

2.10. निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशक हिंदी साहित्य में हलचल मचाते हुए दलित साहित्य आ गया।दलित जाति के बहुत से सारे लोग लेखनी लेकर अपनी वेदनाएँ और शोषण के बारे में लिखने लगे। महाराष्ट्र से आनेवाली दलित आंदोलन की लहर दलित समाज में एक नया सवेरा लाया।नये नये साहित्यकार साहित्य के क्षितिज पर अवतरित हुए। मुख्यधारा साहित्य से हटकर चलनेवाली यह धारा दमित,पीडित और शोषण के शिकार लोगों को समाज का दर्पण बना गया।इसने दलितों को अपनी व्यथा और पीडाओं को खुले आम कहने का आत्मविश्वास दिया।दलित रचनाकार अपनी जागृति को गुलामी की अँधेरे में फँसे अपने लोगों तक पहूँचाने केलिए सशक्तवाणी में लिखने लगे। कविता, आत्मकथा, जीवनी, कहानी, उपन्यास आलोचना आदि सभी विधाओं के माध्यम से हिंदी दलित साहित्यकारों ने अपनी जागृति और प्रगति की राहें खोजा हैं।

हिंदी दलित साहित्य विकसित हो रहे हैं। कविता की नींव बौद्ध साहित्य में ही मिलता है। यह सदियों से विकसित होकर अब प्रौढ दशा में पहूँच गयी है। कहानी,उपन्यास,आत्मकथा,जीवनी आदि सभी विधाओं में आधुनिककाल में महत्वपूर्ण रचनाएँ आने लगी हैं। इसमें आत्मकथा जबर्दस्त जगह पा लिया है। जो जगह मुख्यधारा साहित्य में आत्मकथा नहीं पा सका है वह स्थान दलित आत्मकथा ने पा लिया है। दलित आत्मकथाएँ आगामी पीढी को आगे जाने की प्रेरणा देते रहे।जीवन में आनेवाली परिस्थितियों से टटकर लडकर आगे जाने की प्रेरणा देती है। जीवन की कठिन परिस्थतियों से जूझनेवाले आत्मकथाकार हाशियेकृतों की अस्मिता की जीवन्त लडाई सामने रखते हैं। कहानियाँ दलित जीवन का नंगा चित्र प्रस्तुत करती हुई दलित शोषण की सारी पहलूओं को समाज के सामने रखती हैं, जो मुख्यधारा

साहित्य केलिए बिलकुल अनजान है।संपादक दलित रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में रखने केलिए तैयार नहीं होते थे।इसलिए दलित साहित्यकारों ने दलित पत्रिकाओं की एक कतार ही खडा कर दी।

सभी विधाएँ दलित शोषण के दास्तान लेकर सामने आयी हैं।लेकिन दलित उपन्यास दलित या हाशियेकृतों की अस्मिता की विभिन्न दिशाओं के अन्वेषण के करते हुए सामने आये हैं। सभी विधाएँ विकास की शुरुआत की दशा में हैं।वे दलित और नारी अस्मिता की स्थापना करने केलिए दिन - रात प्रयत्नरत हैं।

संदर्भ -सूची

1. डॉ.रश्मी चतुर्वेदी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 142
2. नागफणी	मई -अक्तूबर 2011	पृ 62
3. नागफणी	मई -अक्तूबर 2011	पृ 62
4. जयप्रकाश कर्दम	दलित साहित्य वार्षिकी- 2003	पृ 294
5. नागफणी	मई -अक्तूबर 2011	पृ 64
6. डॉ.एन.जी दोडगौडकर और डॉ. डि.बी.पांडे	आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में दलित	पृ 38
7. डॉ.सरजू प्रसाद	हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ	पृ 136
8. डॉ.कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ95
9. डॉ.कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 96
10. डॉ.एन सिंह	दलित साहित्य के प्रतिमान	पृ92
11. डॉ दोड्डा शेषु बाबू	दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य	पृ 58
12. डॉ.कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ111
13.रजतरानी मीनु	हिंदी दलित कथा साहित्य - अवधारणाएँ और विधाएँ	पृ49
14.डॉ.पुरुषोतम सत्यप्रेमी	हिंदी दलित साहित्य -रचना और विचार	पृ 36
15. डॉ.नामदेव	आलोचना की तीसरी परंपरा और डॉ.जयप्रकाश कर्दम	पृ 129
16. डॉ.एन सिंह	दलित साहित्य के प्रतिमान	पृ116
17. डॉ.नामदेव	आलोचना की तीसरी परंपरा और डॉ.जयप्रकाश कर्दम	पृ187

18. साक्षांत मस्के	परंपरागत वर्ण - व्यवस्था और दलित साहित्य	पृ 86
19. डॉ.रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 90
20. साक्षांत मस्के	परंपरागत वर्ण - व्यवस्था और दलित साहित्य	पृ 86
21. डॉ.एन सिंह	दलित साहित्य के प्रतिमान	पृ 163
22. डॉ.रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 121
23. डॉ.रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 123
24. रजतरानी मीनु	हिंदी दलित कथा साहित्य - अवधारणाएँ और विधाएँ	पृ 89
25. डॉ.रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 199
26. डॉ.एन सिंह	दलित साहित्य के प्रतिमान	पृ 190
27. साक्षांत मस्के	परंपरागत वर्ण - व्यवस्था और दलित साहित्य	पृ 97

तीसरा अध्याय

हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में

(सन् 2010 तक)

साहित्य के सभी रूपों में समाज और मानव जीवन का ही वर्णन है। बीसवीं सदी में साहित्य में दो नयी प्रवृत्तियाँ आयीं। दलित विमर्श और नारी विमर्श। इन्होंने सैकडों सालों से समाज में हाशिये की ओर धकेले गये मानव समाज को मुख्यधारा में पहूँचा दिया। साथ ही साथ मुख्यधारा सवर्णिम संस्कृति की अमानवीयता पर पडे आवरण को भी ह़टा दिया।इनमें दलित साहित्य दलितों की समस्याओं से भी आगे बढकर नारी और आदिवासी जैसे सभी हाशियेकृतों की समस्या को लेकर सामने आया है।

बाहर से आये हुए लोगों ने यहाँ के लोगों को गुलाम बनाकर उन्हें पूरी तरह बेहाल कर दिया। उनकी अस्मिता को पूरी तरह मिटाकर उन्हें शारीरिक रूप से ही नहीं मानसिक रूप से भी गुलाम बना दिया। सदियों से मौन बैठे लोग जब बोलने लगे, तब भारत की शान पर भी प्रश्न चिन्ह लगाये जाने लगे। हर एक व्यक्ति के जन्म तथा मृत्यु को शुद्धता की कसौटी पर कसना भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है। ढाई हज़ार वर्ष की इस परंपरा में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों को ही ज्ञान,सत्ता और संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार मान्य किया गया। उनके नीचे आनेवाले दलितों को अस्पृश्य और अछूत माने जाने लगा। नारियों को अबला और आदिवासियों को अपरिष्कृत मानने लगे।

जीवन-यापन केलिए व्यक्ति को भोजन, घर, कपडे आदि चीज़ों की जरूरत है। साथ ही साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, कानून आदि भी आवश्यक है। इनके निषेध का मतलब है समाज की मुख्यधारा से उसका बहिष्कार। इसप्रकार व्यक्ति समाज से हाशियेकृत किया जाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था जाति व्यवस्था पर टिकी है। ऊँची जाति को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था। इसलिए सत्ता पर अंकुश रखना स्वभाविक था। सत्ता, संपत्ति या ज्ञान केलिए किये गये आर्यों के

संघर्षों में कहीं भी ऐसी कथा नहीं मिलती जिसमें अछूतों के अधिकार की बात कही गयी हो।

हिंदी दलित उपन्यास भारतीय जीवन के विशाल अनदेखे अनजाने पहलुओं को पाठकों के सम्मुख रखते है। अंबेडकर के राजनीति प्रवेश से दलितों को एक अलग स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद सुनाई देने लगा। अंबेडकर की विचार धारा से प्रभावित होकर बहुत सारे दलितों में अस्मिता बोध जाग उठा। यह अस्मिता बोध दलित उपन्यासों में भी प्रतिबिंबित होने लगे।

अपने होने का बोध ही अस्मिता है। क्यों हम ऐसा जीवन जीते हैं। क्यों हम समाज से अलग, बहिष्कृत, अपमानित, दलित अछूत,मजबूर बेबस जीवन जीते हैं, हमारे लिए क्यों ऐसा बंधन है, स्वतंत्र देश में रहकर भी, रूढी और परंपरा से क्यों पराधीन हैं आदि सोच अस्मिता की पहली सीढी है। यह अस्मिता बोध हिंदी दलित उपन्यास की आत्मा है।

ज्योतिबा फुले, पेरियार, नारायण गुरुदेव और अंबडकर ने आत्मसम्मान और सामाजिक अस्मिता केलिए भावभूमि तैयार की।वेदना,आक्रोश और आमूल परिवर्तन की आकांक्षा से भरे दलितों के अस्मिता संघर्ष को एक आकार दिया। सदियों से समाज ने जिन लोगों को समाज के हाशिये पर फेंक दिया, अछूत, चंडाल, अवर्ण पंचम तथा हरिजन आदि नामों से पुकारा और सहानुभूति का पात्र बनाया, आज वह प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों को ठुकराकर स्वयं दलित के रूप में अपनी अस्मिता का बोध साहित्य, समाज और राजनाति में करा रहा है।

दलितों का अस्मिता बोध साहित्य में ज़बरदस्त दस्तक देता रहा है और अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा रहा है तथा अपने अधिकारों केलिए संघर्ष कर रहा है। दलित उपन्यासों में दलित उत्पीडन, आक्रोश और रोना धोना नहीं है। उनमें दया

घृणा और सहानुभूति नहीं है।दलित उपन्यासों में मुख्यधारा समाज में अपनी अस्मिता की स्थापना करने की कोशिशें ही हैं। ये कोशिशें अंबेडकरवादी विचारधारा के प्रभाव से परभावित है। दलित उपन्यासों में प्रमुख रूप से हाशियेकृतों की अस्मिता पर विचार किया गया है।

3.1.छप्पर (1993)

छप्पर जयप्रकाश कर्दम का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें गंगा नदी के तट पर बसे अनेक दलित परिवारों का चित्रण किया गया है। चंदन, सुक्खा,हरिया, रमिया, कमला आदि इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। ये सब दलित जाति के हैं। दलितों के अस्मिता के संघर्ष में बाधा डालकर उन्हें परंपराओं में जकडे रहने केलिए मजबूर करनेवाले सवर्ण जाति के ब्राह्मण, पुरोहित, जमीनदार और ठाकुर भी उपन्यास के बीच में आते हैं।

3.1.1.शिक्षा

शिक्षा के अभाव के कारण दलित अंधेरी गुफाओं में भटक रहे हैं। शिक्षा से वंचित रखने के कारण उनकी सभ्यता संस्कृति आदि सब कुछ सवर्ण लोगों ने उनसे छीनकर उन्हें गरीबी और अपमान की भट्टी में झोंक दिया है। संस्कृत और वेदों का अध्ययन उनके लिए निषिद्ध था। हाशियेकृत लोग इसे सुनने मात्र उनके कानों में पिघला सीसा डालने की प्रथा भारत में प्रचलित थी।

अंग्रेजों ने शिक्षा का द्वार सभी केलिए खोल दिया। इससे शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी को मिल गया। अंबेडकर की कोशिशों से मिले कम्यूणल अवार्ड द्वारा भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। अंबेडकर के अनुसार भारत की उन्नति जनसाधारण की शिक्षा से ही संभव है। अतः इने गिने लोगों के

हाथ में शिक्षा सीमित रखना नहीं चाहिए। 1951 में मिलिन्द विश्वविद्यालय का शिलान्यास भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया। इसके स्वागत भाषण में अंबेडकर ने कहा - "दलित समाज को रोटी कपडा और मकान देकर परंपरानुसार उन्हें उच्चवर्ग की सेवा में लगाना सच्ची उन्नति नहीं। निम्न वर्ग की इससे प्रगति रुक जाती है, उन्हें दूसरों का गुलाम बनना पडता है। स्वयं के और राष्ट्र की दृष्टि से किस प्रकार दलितों का महत्व है, इसका एहसास करा देना, यही निम्न वर्ग का प्रश्न है। उच्च शिक्षा के प्रचार प्रसार के बिना यह सब होनेवाला नहीं है। हमारी सभी बीमारियों का मेरी दृष्टि में.यही रामबाण उपाय है।" [1]

शिक्षा दलित अस्मिता की महत्वपूर्ण सीढी है। सुक्खा पढा लिखा नहीं है। फिर भी वह जानता है कि दलितपन से मुक्ति पाने का एकमात्र रास्ता शिक्षा ही है। इसलिए वह बेटा चंदन को पढाकर इस अरक्षित जीवन से सुरक्षित जीवन की सीख देना चाहता है। चंदन पढाकू लडका है। वह गाँव से प्राईमरी शिक्षा प्राप्त करके उच्च शिक्षा केलिए शहर जाता है। उस समय तक गाँव से पढाई केलिए कोई शहर नहीं गया था। गरीबी और अभाव में भी वह अपनी शिक्षा ज़ारी रखता है। वह एम .ए करने के बाद पी.एच .डी केलिए पंजीकरण किया।

चंदन शिक्षा प्राप्त करने के साथ साथ वह दूसरों को शिक्षा देता भी है। चंदन बस्ती में ऐरे गैरे घूमते बच्चों को इकट्ठा करके स्कूल खोलता है। उसमें बस्ती के बच्चों को पढाने लगता है। इतना ही नहीं बस्ती के लोगों को अपने बच्चों को पढाने केलिए प्रेरित भी करता है। दोपहर तक कॉलिज में जाकर अपनी पढाई करता है और उसके बाद बस्ती के बच्चों को पढाता है।

दलितों में यह भावना रूढ हो गयी है कि उनके पढने से कोई फायदा नहीं है। जितना भी पढे मेहनत मज़दूरी ही उसकी नियति है। चंदन लोगों की इस

गलतफहमी को दूर करता है। वह लोगों को इकट्ठा करके समझाता है कि " हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। धर्म ग्रन्थ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जडें हैं। इन जडों को उखाड फेंकने की जरूरत है। उसके लिए जरूरी है कि अधिक से अधिक पढें ताकि इन धर्म ग्रन्थों में निहित अन्याय और असमानता के दर्शन को समझ सकें तथा शोषण और असमानता के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए स्वयं को तैयार कर सकें। हमारे शोषण का आधार क्या है,हमारे उत्थान और विकास में कौन से तत्व बाधक हैं यह जाने बिना सार्थक संघर्ष नहीं किया जा सकता।"[2]

चंदन के स्कूल में छात्रों की संख्या बढने लगी। चंदन से प्रभावित होकर बच्चों के अलावा बूढों और महिलाओं ने भी पढना शुरू किया।संतनगर से ही नहीं उन्य दलित बस्तियों से भी उनके पास पढने केलिए लोग आने लगे। उसके द्वारा प्रज्वलित इस दीप से दूसरों की जिंदगी रोशनी से भरने लगी। जो लोग शिक्षित होते वे दूसरे लोगों को भी पढाने लगे। यह दिया जलते चले गए और शिक्षा का प्रचार होता गया।

3.1.2. जागृति

भारतीय समाज में यह धारणा फैल गयी है कि दलितों को ज्यादा पढने की आवश्यकता नहीं है। कुछ पढकर उसे सेवा कार्य में लगना चाहिए। क्योंकि यही समाज की नीति है।इसे तोडना नहीं चाहिए। इस सेवा केलिए उसे कुछ नहीं दिया जाता।भूख मिटाने केलिए कुछ खाना मिलता है या थोडा पैसा।जिस पैसे से एक आदमी का गुजारा नहीं होता उससे छह या आठ लोगों के पूरे परिवार का गुज़ारा करना पडता है। बीच में शादी,रोग आदि आने पर कर्ज लेना पडता है। कर्ज का भार कभी जिंदगी भर या पीढी दर पीढी उन्हें ढोना पडता है। क्योंकि आमदनी कम है

और सूद ज्यादा। इस सेवा ने दलितों को गरीब बनाकर रख दिया है।इससे मुक्त होने केलिए चंदन गरीब,दलित माँ बाप के मन में बच्चों को पढ़ा कर नारकीय जीवन से मुक्ति पाने की इच्छा भर देता है।

बचपन से लेकर भोगनेवाले शोषण और अत्याचार सुक्खा में जागृति उत्पन्न करता है। जागृति उसमें सभी शोषणों का सामना करने का साहस उत्पन्न करती है। सुक्खा और पत्नी रमिया अपने इकलौते बेटे चंदन को खूब पढा लिखा कर बड़ा आदमी बनाना चाहते हैं। शोषण से अपने बेटे को मुक्त करने की अदम्य इच्छा और जागृति सुक्खा को सभी दुख झेलकर चंदन को पढाने की शक्ति देती है। इसलिए उसे पढने के लिए शहर भेजा । गाँव के सवर्ण चंदन को वापस बुलाने की बात करते हैं, क्योंकि आज तक किसी सवर्ण बच्चे ने शहर जाकर नहीं पढा है। परंतु वह चंदन को वापस नहीं बुलाता। क्योंकि वह जानता है कि शिक्षा में ही दलितों की मुक्ति है।

हाशियेकृतों को सदियों से दासता में रखने के षडयंत्र में धर्म का हाथ बहुत बडा है। अस्मिता की तलाश करनेवाले दलितों को इससे टटकर मुकाबला करना पडता है। क्योंकि हिंदू धर्म ही ऐसा तत्व है जो दलितों को दलित बनाए रखता है। इसके हर रीति रिवाज में दलित विरोधी तत्व उपस्थित है। इसलिए दलित उपन्यासों में हिंदू संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह के स्वर उभरे है। पूजा अर्चना आदि भी शोषण को गहरा बनाता है। देवी देवताओं की पूजा अर्चना तथा उनकेलिए यज्ञ और हवन आदि अनुष्ठानों की परंपरा से भयभीत रख कर धर्म विशेष को जीवित रखना है। अस्मिता के बोध से इस तरह के रीति रिवाज़ भी अपने आप मिट जाएगी। सामाजिक आंदोलन केलिए प्रयत्न करनेवाला चंदन दलितों को तर्क की कसौटी पर धर्म को कसने की प्रेरणा देता है।

3.1.3 संगठन

अधिकतर दलित पढ लिख कर अच्छी नौकरी कमाकर दूसरों के समान ऐश-आराम की जिंदगी बिताना चाहते हैं।इसलिए वह नौकरी मिलने के बाद शहर में ही रह जाते हैं और अपने गाँव और लोगों को पलटकर भी नहीं देखते। दलितों को अच्छा कपडा, भोजन और मकान बटोरने के साथ साथ अपने समाज की उन्नति केलिए भी काम करना चाहिए। तभी दलितों की समाजिक प्रस्थिति बढेगी। इसके बिना दलितों की सामाजिक स्थिति में कभी बदलाव नहीं आएगा। आर्थिक रूप से बडा होकर भी दूसरों के सामने छोटे ही महसूस करेंगे। इसकेलिए शिक्षित दलितों को संगठित होकर काम करना चाहिए। यह शिक्षा, चंदन शिक्षित नौजवानों के मन में भी भर देता है।

शहर के कॉलेज में पहले चंदन बिलकुल ही अकेला था।दलित होने के कारण दूसरे लडकों के सामने कुछ हीन भी महसूस करने लगा था। लेकिन उसने जल्दी अपने संकोच पर विजय पायी और अपने अंदर आत्मविश्वास जगा दिया। कॉलेज में गैर दलित लोगों के तिरस्कार के कारण चंदन ने दलित युवकों की एक सर्किल बना लिया। सभा और संगेष्ठियों से चंदन ने अपने अंदर ही नहीं साथियों के अंदर भी आत्मविश्वास भर दिया। शोषण,अन्याय और उपेक्षा के विरुद्ध लडने की प्रबल इच्छा उन लोगों के मन में थी। नन्दलाल वकील बनना चाहता था,रतन प्रशासनिक सेवा, रामहेत बिजिनेज़ और चंदन अपने आप को दलित उत्थान में लगाना चाहता था।

भारतीय समाज में दलितों की कोई ऐहसियत नहीं है। सवर्ण उनके शिक्षा के मार्ग में रोडा अटकाये रहते हैं। दलित बच्चों को पढाने केलिए माता पिता को बहुत सारे विरोधों और प्रतिरोधों का सामना करना पडता है। स्कूलों और कॉलेजों में भी उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। इस तरह की परिस्थितियों का सामना करके बहुत

थोडे दलित ही सामने आ पाते हैं। वे पढ-लिख कर चाहे कुछ भी बन जाय उसे नंबर दो के नागरिक के रूप में ही बाकी लोग देखते हैं। इस स्थिति से मुक्त होने केलिए शिक्षित दलित लोगों को सामने आना चाहिए। नहीं तो हर दलित माता पिता को इस समस्या का सामना करना पडेगा। संघर्ष करने की शक्ति सभी में नहीं होती। ऐसे में वह परास्त हो जाता है। इस स्थिति से बचने केलिए शिक्षित नौजवानों की जरूरत है, ताकि उसे आर्थिक, कानूनी और हर तरह की मदद मिले। जब तक दलित एक दूसरे की मदद नही करेंगे तब तक दलितों की स्थिति में कोई अंतर नहीं आनेवाला है। चंदन अपने दोस्तों से कहते हैं कि - "हम को पढाने केलिए हमारे माता - पिताओं ने जो त्याग किये है उसकी सार्थकता इस बात में नहीं है कि हम लोग केवल अपनी उन्नति की ओर ध्यान दें। अधिक से अधिक पैसे कमाएँ तथा दूसरे लोगों की तरह वैभव और आहलाद पूर्ण जीवन बिताएँ। "[3]

चंदन अपनी बस्ती के बच्चों को शिक्षा देता है साथ ही साथ उन्हें संगठन का संदेश भी देता है। संगठन से वह आत्मग्लानि से मुक्त हो जाएगें, कुछ करने का आत्मविश्वास और समाज द्वारा किनारे करने की प्रवृत्ति से बच जाएँगे। क्योंकि वे अकेला नहीं है एक ग्रूप है। संगठन का संदेश वह धीरे धीरे बस्तिवालों को भी देता है।

3.1.4. दृढ़ता

गरीबी के कारण दलित माँ बाप को अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने केलिए जिन्दगी से संघर्ष करना पडता है। दलित विरोधी परंपरा को तोडने के इस संघर्ष में विजय पाने केलिए दलितों को ढृढ रहना चाहिए।सुक्खा शरीर से कमजोर होने पर भी मन से बहुत ही ढृढ है।किसी के भी कहने पर वह अपना निश्चय बदलने केलिए तैयार नहीं होता। सूक्खा और रमिया गरीब है। बीमार रमिया यही चाहती कि चंदन

पढाई छोडकर गाँव में आकर कोई न कोई काम करें। कुछ पैसा मिल जाएँगे तो सुक्खा की दवादारू हो जाएगा और सिर से कर्ज भी उतरेगा। वह यही सोचती थी कि पढकर बाबू बनना तो उच्चवर्णों की बात है। लेकिन अपने थोडी सुख केलिए सूखा चंदन का भविष्य बर्बाद करना नहीं चाहता था। वह रमिया से कहता है – "चुप रह पगली, कोई पेट से बनकर आता है। पढ लिख कर बडे बनते हैं सब। क्या पता कि हमारा चंदन भी कल को कलक्टर बनेगा।" [4]

चंदन केलिए उसके माँ- बाप भूखे प्यासे रहकर दुनिया भर के कष्ट उठाने केलिए तैयार रहते हैं। विपरीत परिस्थितियों के आँधी तूफान में भी वे अपने निर्णय पर दृढ रहते हैं। चंदन को शहर भेजने पर धर्म के ठेकेदार श्रीराम शर्मा और ठाकुर हरनाम सिंह यह अनर्थ कार्य कहकर चंदन को गाँव बुलाने केलिए कहता है। सुक्खा ऐसा करने केलिए तैयार नहीं होता। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसी दिन की पंचायत हुई। इस में यह फैसला लिया गया कि सुक्खा को कोई खेत में घुसने नहीं दिया जाय और कोई मज़दूरी केलिए नहीं बुलाया जाय। लेकिन सुक्खा हार मानने केलिए तैयार नहीं हुआ। उस समय भी सुक्खा यही कहता है सब कुछ बर्दाश कर लूँगा मैं, पर चंदन को इस नरक में पडने नहीं दूँगा। वह बेटे की पढाई और आंदोलन में कोई अडचन आने नहीं देता।चंदन की शिक्षा और उन्नति के पीछे सुक्खा के मन की दृढता ने ही काम किया है।

3.1.5. आत्मसम्मान

दलितों को आत्मसम्मान के साथ रहना चाहिए। उन्हें अपनी हालत से हीनता कभी महसूस नहीं करना चाहिए। अपने फटे हाल से मुक्ति पाने केलिए आत्मसम्मान की भावना को जागृत रखना चाहिए। यह उन्हें लक्ष्य प्राप्ति तक जल्दी पहूँचा देगा। चंदन अपने माँ बाप की कुर्बानी को हमेशा याद रखता है। इसलिए पढ़

कर कुछ बनने के अलावा और कोई विचार उसके मन में कभी नहीं आया। स्कूल की सहपाठी रजनी जो ठाकुर की बेटी है, उसके फटे पुराने कपडों को देखकर उसे नया कपडा खरीदने केलिए पैसा दिया। लेकिन चंदन ने उसे स्वीकार नहीं किया - "मेरा काम पढना है और मैं पूरी ईमानदारी और मेहनत से पढ़ता हूँ। मेरे फटे कुर्तों का मेरी पढ़ाई से कुछ संबंध है मैं नहीं समझता। परीक्षा होने दो रिजल्ट बता देगा कि उपहास का पात्र कौन है। तुम देखना रजनी मातापुर का फटे कुर्तों वाला यह गरीब लडका सबसे अच्छे नंबरों से पास होगा। "[5]

3.1.6. सत्चरित का समर्थन

दलितों के दलितपन को बनाए रखने में शराब का स्थान बहुत बडा है। शराब या नशीली चीजों के सेवन की लत इतनी अधिक है कि वह अपनी पूरी कमाई ही इसमें खो देता है। घर में प्यार नहीं दहशत पैदा हो जाता है। मार- पीट ,शोर- शराबा रोज़ का तमाशा बन जाता है। इसके बीच पलनेवाले बच्चे एक तरह की विचित्र मानसिकता के शिकार हो जाते हैं। बस्ती के दलित अपने बच्चों को पढाने में कोई रूचि नहीं रखते थे। शराब पीकर पत्नी और बच्चों को मारना और गालियाँ बकते रहना अपना जीवन मानते हैं। मध्यपान एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति मदिरा लेने की मात्रा पर नियंत्रण खो बैठता है। एक बार शुरू कर देने पर इससे छूटना भी मुश्किल है। इस तरह की परिवारिक पृष्ठभूमि से आनेवाले बच्चे अन्य बच्चों के समान स्वस्थ नहीं होंगे।यह उसके व्यक्तित्व और भविष्य पर बहुत बुरा असर जरूर छोडेगा।

चंदन शहर की बस्ती में रहता है। बस्ती के लोग दलित हैं। वहाँ के लोग शराब पीकर रोज़ आपस में झगडा करते थे। उसके आय का बहुत बडा हिस्सा शराब पर खर्च हो जाता है। शराब पीने से व्यक्ति की क्षमता कम हो जाती है। धीरे धीरे

इनका शरीर नष्ट हो जाता है और उनके व्यक्तित्व बर्बाद हो जाता है। यह उनका आर्थिक स्तर पूरी तरह तोडनेवाली चीज़ है। वे जो भी कमाते हैं दारू में खर्च करते हैं। इसलिए उसके घर में हमेशा आर्थिक तंगी बनी रहती है। वे अपने बच्चों को शिक्षा भी नहीं दे पाते थे। शिक्षा केलिए खर्च का दिक्कत बतानेवाले बस्तिवालों से चंदन ने यही कहा कि अपने बच्चों को पढाने के ढृढ निश्चय लेने के बाद समस्या का हल हो जाएगा। इसकेलिए नशीले पदार्थों का सेवन बंद करके अपने जीवन में नया सवेरा लाने का सलाह देता है।

3.1.7. आंदोलन

कॉलेजीय शिक्षा के साथ चंदन शहर के बस्ती के लोगों में संगठन का कार्य करता है। गरीब दलित बस्ती के लोगों के दिल और दिमाग में स्वस्थ -सुखी जीवन बिताने की इच्छा भर देता है। उनमें गहराई से समा गयी धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक रुढ परंपराओं को वह तोडता है। चंदन ने विरोध करनेवालों से यही कहा कि बात जो भी हो उसे पहले तर्कों की कसौटी पर कसना, फिर विश्वास करना। लोगों के चिंतन में बदलाव आने लगा।

स्वतंत्रता और समता के इच्छुक लोग आंदोलन से जुडते गये। आंदोलन बृहत से बृहत्तर होता गया। शहरों से होकर बस्तियों तक फैल गया। यह अनेक शाखाओं में बँट गया। धीरे धीरे उसका आंदोलन गाँवों तक पहूँच गया। “चेतना के जागृत होते ही समाज में मिथ्या विश्वास और आडंबर का विरोध शुरू हुआ तथा आस्था और अनुष्ठानों को औचित्य और अनौचित्य की कसौटी पर परखा जाने लगा।मनुष्यों के जन्म से लेकर मृत्यु तक होनेवाली धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों के सहारे फलने फूलनेवाले पण्डों-पुरोहितों के परंपरागत व्यवसाय को भी जबरदस्त झटका लगा।” [6]

3.1.8. सवर्णों का सहयोग

अस्मिता की तलाश केलिए दलितों को सवर्णों से बहुत सहयोग मिला है। ठाकुर की बेटी रजनी बचपन से ही सभी दलितों से उदार व्यवहार करती थी। रजनी ठाकुर की बेटी होने पर भी समाज में परिवर्तन लाना चाहती थी। वह दलित आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेती है। चंदन आंदोलन के नेता है। सेठ दुर्गादास चंदन को गांव वापस न बुलाने के कारण सुक्खा और रमिया को बेघर कर उनका जीना दूबर कर दिया।आंदोलन में कार्यरत चंदन को परेशानी न देने केलिए रजनी सुक्खा और रमिया की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती है। उनके सुख और दुख में रजनी उनके साथ रहती है।

3.1.9. मानवता

मानवता ही मानव को मानव बनाती है।मानवता मानव को हौसला और प्रेरणा देती है। गाँव से शहर आनेवाले चंदन को रहने केलिए कहीं जगह नहीं मिली।हरिया नामक एक खोमचावाला उसे अपने घर में रहने देता है और अपने ही बेटा मानकर प्यार करता है। फीस न भरने के कारण पढाई छोडने के हाल में पहूँचा चंदन को वह पैसा देकर पढाई जारी रखने केलिए हिम्मत देता है। हरिया उसके हर दुख में उसका साथ देता है। उसके समाज सेवा कार्य में भी पूरा का पूरा साथ देता है। हरिया की मानवता अपनेपन के स्तर तक पहूँच जाती है। यह चंदन की मानवता को बूस्ट की तरह उत्प्रेरित करती है, उसकी मानवता को एक विशाल फलक देती है।

बस्ती में कोई विद्यालय नहीं था। बस्ती में रहनेवाले सब गरीब थे। उनके पास फीस देकर पढाने केलिए पैसा नहीं थे। चंदन वहाँ के बच्चों को मुफ्त में पढाया। चंदन गाँववालों को अँधविश्वासों से मुक्त होने और आपस में इज्जत देकर जीने का पाठ सिखाता है।

3.2. मिट्टी की सौगंध (1995)

मिट्टी की सौगंध प्रेम कपाडिया का उपन्यास है। इसमें भारतीय गाँवों में बेईज्जत होनेवाली नारी सम्मान की कहानी है। बदली हुई परिस्थिति के अनुसार अस्मिता की तलाश में भी परिवर्तन आना चाहिए। नारी हो या दलित अंदर के दुखों को पिघलाकर लोहा बनना चाहिए। इस लोहे से अस्मिता की लडाई लडने से विजय जरूर मिल जाएगी।

3.2.1. नारी अस्मिता

सवर्णों केलिए दलित नारी मनोरंजन की साधन है। उसके मन और व्यक्तित्व को मानने केलिए भी वे तैयार नहीं होते। पुरुष वर्चस्ववादी समाज को ऐसा सोचने की हिम्मत संस्कृति और समाज दे रखी है। इसके सिर से भूत को नारी ही निकाल सकती हैं। बलात्कार का से पहले विरोध सबसे पहले नारी की ओर से आना चाहिए। उसे टूटने के बजाय अपने अंदर की सिंहिनी को जगाना चाहिए।

शीला एक गरीब दलित नारी है। उसे माँ के अलावा और कोई नहीं था। ठाकुर मदनसिंह एक दंभी, कामी लंपड आदमी है। वह जब चाहा नारी को अपने हवस का शिकार बना लेता है।एक दिन वह शीला के घर घुस कर उसकी माँ के सामने उसका बलात्कार करता है। इस सदमे से शीला की माँ बच नहीं पायी, वह थोडे दिनों के अंदर मर जाती है। माँ के मरने पर वह बिलकुल अकेली हो जाती है। ठाकुर से बदला लेने की कामना उसके मन में हमेशा रहती है। शीला को न्याय दिलाने केलिए विजेंद्र कानून का सहारा देता है तो शीला उसकी हर कोशिश में उसका साथ देती है। वह मदन सिंह के खिलाफ पुलिस में केस दर्ज करती है।

3.2.2. आत्मविश्वास

एक व्यक्ति के चरित्र की पहचान उसका आत्मविश्वास है।जिस व्यक्ति के पास आत्मविश्वास है उसे कोई भी आसानी से परास्त नहीं कर सकता।जगजीवनराम दारोगा है।वह दलित है।लेकिन उसके मन में गुलामी की भावना बिलकुल नहीं है।वह किसी से डरता भी नहीं है।उसे अपना कर्तव्य ईमानदारी से करने की हौसला भी है।ठाकुर मदनमोहन नारी को भोग की वस्तु ही मानता है।उसमें भी दलित नारी उसके लिए एक खिलौना है ।वह शीला का बलात्कार करता है।इस केस की तहकीकात जगजीवन करता है।ठाकुर उसे जान से मारने की धमकी देता है और दलित कहकर अपमान भी करता है।जगजीवन ने गुस्सा दबा कर कहा कि - "ज़मीन्दार साहब अब तो आप के हाथों में हथकडी ही लगाऊँगा...चाहे मेरी लाश ही क्यों न यहाँ से जाएँ....सिर्फ तीन दिन के बाद।"[7]

3.2.3. संगठन

संगठन आंदोलन की पहली सीढी है। सत्ता और संपत्ति से वंचित जनता को आगे बढने के एक मात्र रास्ता संगठन है। ठाकुर मदन सिंह के विरुद्ध हरिया, सूरज, शीला और दारोगा जगजीवनराम संगठित होते हैं। ठाकुर अपनी ऊँची जाति और धन के घमंड के कारण गरीब लोगों पर अत्याचार करता है। निर्बल कन्याओं का बलात्कार करता है और सहायता माँगकर आनेवाले साधारण लोगों को निर्दयता से ठगता है। पाँच हजार लेनेवालों को पच्चास हजार का कर्जदार बनाता है। विरोध करनेवालों को चुपा दिया जाता है या कत्ल किया जाता है। गाँव में उसका दहशत हमेशा रहता है। इस आतंक से बचने केलिए उनके द्वारा पीडित युवा लोग संगठित होकर न्यायसेना नामक एक संस्था का संगठन करता है। वे जीत की प्राप्ति तक लडने की प्रतिज्ञा लेते हैं। दारोगा ने जमीन की रेत उठाकर थोडी थोडी सबके हाथों में

रखने के बाद अपने मिट्टीवाले हाथ को तानकर कहा कि – "हम धरती माँ की इस मिट्टी की सौगंध खाकर कहते है कि ठाकुर के जुल्म को जब तक समाप्त नहीं करेंगे ....भर पेट रोटी नहीं खाएँगे।"[8] उन लोगों ने विजेंद्र को न्यायसेना का नेता बनाया।

'न्याय संगठन' एक गुप्त संगठन है। इस संगठनकर्ताओं ने इसके बारे में बाहरवालों को कोई जानकारी न मिलने की पूरी कोशिश की।अन्यथा मदन सिंह इसे शुरू में ही कुचल डालेगा या इसके आक्रमण केलिए सदैव तैयार रहता। बहुत सारे नौजवान न्याय सेना के सदस्य बन गये। विजेंन्द्र सेना केलिए एक नेता को चुना। उसने संगठन केलिए आवश्यक धन की व्यवस्था की। विजेन्द्र हर एक नौजवान को चाकू और रिवाल्वर रखने का आदेश दिया। उसे आवश्यक जानकारी देने केलिए नेता को वॉकी टॉकी दी।

3.2.4. मानवता

सवर्णों में ऐसे बहुत सारे लोग है जो दलितों से इंसानियत के साथ व्यवहार करते हैं, उससे सहानुभूति रखते हैं। ठाकुर विजेंद्र सिंह इस तरह का एक आदमी है।अपने पिता द्वारा पीडित शीला का साथ देता है। बेसहारे शीला को सहारा देता है और अपनी फार्म हाउस में क्लर्क का काम भी देता है। वह सभी के साथ अच्छा व्यवहार करता है। गंगा नामक लडकी को हवेली के दो नौकर बलात्कार करने की कोशिश करते हैं तो उसे बचाता है। दसवीं पास गंगा को नौकरी भी देता है। वह जाति के नाम पर मानव को पहचानना पसंद नहीं करता।

3.2.5. अंतर्जातीय विवाह

शीला पढी-लिखी दलित नारी है। जीवन के कठिन आतंक झेलकर भी वह दृढ रहती है।ठाकुर विजेंद्र उससे प्यार करता है और सारी प्रतिवंधों का सामना करके उससे विवाह करता है।

3.3. जस तस भई सवेर (1998)

जस तस भई सवेर सत्यप्रकाश का उपन्यास है।इसमें दलित जीवन की भयावह त्रासदी का अंकन किया है। पंडों पुरोहितों, भगतों तथा सामंतों की जालसाजी का वर्णन किया। भारत तीसरी दुनिया की कोटि में आनेवाला पिछडा हुआ देश है। यह एक स्थापित सत्य है कि पिछडे हुए समाजों में अनेक अंधविश्वास का वर्चस्व रहता है। जिस समाज में साक्षरता कम हो,स्वतंत्रता एवं समानता को समुचित स्थान न हो ऐसे समाज में अंधविश्वास का होना स्वाभाविक है।

3.3.1. अंधविश्वास का विरोध

दलितों को दलित बनाए रखनेवाला एक प्रमुख तत्व है, अंधविश्वास। दलितों में अंधविश्वास भयंकर रूप में दिखाई देता है। ब्राहमण जाति ने दलितों में इतना अंधविश्वास फैला दिया है कि उनकी हर बात को वे अंधों की तरह मान लेते हैं। वे इन्हीं अंधविश्वास के कारण बच्चों को पढाते तक नहीं है। छोटी छोटी बातों केलिए भगतों के पास जाते हैं। पुराने ज़माने में बनाई गयी, कही गयी बातों पर आज भी वह विश्वास करते रहते हैं। दलितों में अंधविश्वास का बोलाबाला अधिक है। शिक्षा से दूर रखने के कारण गाँववाले अंधविश्वास की जकड में बहुत जल्द ही फँसते हैं। पंडित और भगत उसे बहुत जल्द ही झूठा विश्वास दिला पाते हैं कि उसके हर दुख और बीमारी का कारण उसकी किस्मत का दोष है। लोग इससे मुक्त होने केलिए

उनके द्वारा कहे गये हर कर्म करने केलिए तैयार होते हैं। यह अंधविश्वास उसे और गरीबी में धकेल देता है। हंसा की जिन्दगी इसकेलिए उदाहरण है।

अंधविश्वास से मानव की सूझ पूरी तरह मिट जाती है। विश्वास ही उसका जीवन बन जाता है। हंसा के लिए भगत और उसका उपदेश ही सब कुछ है। ऐश्वर्य, बेटे की बीमारी सब केलिए हंसा और पत्नी सुनहरी भगत के पास ही जाते हैं। इसके विरोध करनेवालों को वे अपना दुशमन मानते हैं। हंसा और सुनहरी में इतना अँधविश्वास है कि वे बीमार पडने पर डाक्टर के पास तक नही जाते।

विश्वास अच्छा है। लेकिन विश्वास जब अंधविश्वास बनता है तो वह नशा का कारण बन जाता है। विरोध करने वाला दुश्मन बन जाता है, चाहे वह सखे भाई ही क्यों न हो। हाशियेकृतों को अपने परिस्थितियों पर हमेशा विश्लेषणात्मक दृष्टि रखना चाहिए। तब ही रिवाजों और सामाजिक नियमों के ओट में छिपे शोषण को वह पहचान पाएगा। दलितों को दलित बनाए रखनेवाला तत्व है अंधविश्वास। निर्धन, गरीब इसमें फँसकर अपना घर - बार तक इसके लिए लुटाते हैं। हंसा अपने परिवार के साथ अपने इष्ट देव जागवीर का जात लगाया। सप्ताह भर की यात्रा और बिरादरी की भोज में लगभग पाँच हजार रूपये खर्च हो गये। इसे भैंस के दूध के बदले अग्रिम लेकर और चौधरी देवीपाल से कर्ज लेकर पूरा किया।

हंसा का भाई सरवन पढा लिखा है। सरवन अंधविश्वास को बिलकुल नहीं मानता था। वह अपनी मेहनत की कमाई अपने बच्चों की उचित शिक्षा और चिकित्सा में लगाता था। सरवन भाई हंसा को समझाने की कोशिश करता है - "हंसा तुम पोंगा पंडितों के चक्कर में पडकर बेकार में पाँच हजार रूपये खर्च कर दिए। इस पैसे से तुम अपना टूटा हुआ घर बनाने में लगा सकते थे। बच्चों को पढाने में तुम कहते हो कि पैसै नहीं है।अरे हंसा, मूर्ख मत बनो, दिमाग से काम लो, पूजा पाठ में

कुछ नहीं रखा। इससे पूजारियों, शोषकों और भक्तों को छोडकर और किसी को लाभ आज तक नहीं हुआ है और कभी नहीं होगा। भला कर्म करने से ही होगा। भाई, अपनी मेहनत की कमाई यूँ बेकार में मत लुटाओ।"[9]

3.3.2. जागृति

भारतीय समाज,संस्कृति और राजनीति में ऐसे बहुत सारे तत्व हैं जो दलित विरोधी हो।ये दलित अस्मिता केलिए घातक हैं।इन तत्वों की जानकारी पाना दलित अस्मिता का पहला कदम है। भारत के स्वतंत्र नागरिक होने पर भी दलितों को अभी तक इसका एहसास नहीं हुआ है। भारत की सामाजिक स्थिति दलित विरोधी रही है। अब भी सवर्ण उन में यह एहसास पनपने नहीं दिया है। इसलिए वह हर क्षेत्र में पीछे की ओर हटते है।

दलित मुक्ति केलिए कोशिश करनेवाले लोगों के बारे में दलित अनजान है। समाज की मुख्य धारा साहित्य और उनके बारे में ज्यादा कुछ नहीं कहता। दलित जाति से जितने भी बडे लोग आये हैं उन्हें मानने केलिए उनका मन अभी तक तैयार नहीं हुए है। जो कुछ श्रेष्ठ है उस पर सवर्ण पहले ही कब्जा कर लिया है। नहीं तो उन्हें आर्यों ने ऐसा प्रस्तुत किया है कि उसकी ओर ज्यादा ध्यान न जाए। भारत के मीलपत्थर माननेवाली रचनाएँ दलितों ने लिखी हैं। अर्थात् समाज केलिए जब भी मानवता युक्त रचाओं की आवश्यकता पडी, तब सवर्णों ने दलितों का ही सहारा लिया है।

महाभारत के रचनाकार महर्षी वेदव्यास ब्राहमण नही है, शूद्र है। महाभारत आर्य समाज की पारिवारिक संघर्ष की कहानी है। आर्य संस्कृति और आर्य दर्शन के प्रचार प्रसार केलिए लिखी गयी यह रचना बहुत जल्द ही भारत का इतिहास बन गयी। तब आर्यों ने व्यास के दलित होने की बात को उसके अंदर ही दबा दिया।

रामायण के रचनाकार वाल्मीकी की बात भी इससे कुछ भिन्न नहीं है। उसी प्रकार भारत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है भारतीय संविधान। यह विश्व के महत्व पूर्ण संविधानों में एक है। अमेरिका, रूस, अयरलैंड, ब्रिटन आदि अनेक देशों के संविधानों को पढकर उनमें से महत्वपूर्ण मानवीय तत्वों को लेकर इसकी रचना अंबेडकर ने ही की है। सवर्ण मेधावी राज्य में ऐसा महत्वपूर्ण कार्य एक दलित को सौंपना उसकी योग्यता का प्रमाण है। लेकिन सवर्ण समाज उसे उसकी योग्यता के अनुरूप सम्मान देने केलिए तैयार नहीं हुए है। अगर यह रचना किसी सवर्ण ने की होती तो उसकी प्रशंसा का पुल बाँधता फिरता। इसलिए शिवदास दलितों को उक्साते हुए कहता है कि दलितों को सवर्णों द्वारा सिखाये मार्ग पर न सोचकर अपने आसपास की ओर भी देखना चाहिए। सवर्ण करें य न करें दलितों को उन्नीस्वीं सदी के महान समाज सुधारक एवं नारी शिक्षा प्रेमी ज्योतिबा फुले और प्रथम महिला स्वयं सेवी अध्यापिका माता सावित्री देवी फुले के त्याग एवं उनके सत्कर्मों की याद रखनी चाहिए। सवर्ण इनकी ओर कभी ध्यान नहीं देंगे, क्योंकि यह पिछडे वर्ग के हैं।

दलितों पर हो रहे अन्याय का विरोध करने केलिए दलित सामने नहीं आता। दो औरतों को नंगा घुमाने का दृश्य देखकर कोई इसका विरोध नहीं किया। शिवकुमार ने अकेला ही इसका विरोध किया। यह भीषण दृश्य देखकर शिवदास ने कहा - "अरे मूर्खों,देख क्या रहा हो कल तुम्हारे बहू बेटियों के साथ यही होगा।अन्याय का विरोध करो। अन्याय का चुपचाप सहन करना भी अन्याय है।"[10]

3.3.3. सवर्ण राजनीति का पर्दाफाश

दलित और पिछडे हिन्दू अब भी अपने अस्तित्व जाने बिना आर्यों द्वारा बनाए गये नियमें को ही अपना प्रमाण और जीवन का अंतिम रास्ता मानकर चल रहा है। वे अपने आप को हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण से ही देख रहे हैं।भारतीय समाज में

धार्मिकता के नाम पर जो कुछ सिखाया जा रहा है उन सब के पीछे गूढ राजनीति ही कार्यरत है।

तत्कालीन समाज में जिसे हम दलित कहते हैं इतिहास और पुराणों में उन्हें ही असुर या राक्षस कहा है।पुराणों में इन्हें गाडे रंगों में रंग कर विकृत किया गया है। आर्यों के आक्रमण के समय जो भारत के मूल वासी थे, उन लोगों ने आर्यों के आक्रमण को सशक्त रूप में सामना किया। उनको मूलवासी भारतीय इतिहास और पुराणों में क्रूर पात्र के रूप में चित्रित किया गया। शंबुक,बली,रावण आदि सत् चरित्रवाले अनार्य या द्रविड आर्यों की रचनाओं में खलनायक बन गये। आर्यों के राजाएँ नायक। इन ग्रन्थों में आर्य देवता और मूल निवासी भोले भाले भारतीय क्रूर विकृत असुर बन गये। उसकी हर योग्यताओं पर पाप का आरोप लगाकर मृत्यु दंड दिया गया। चार वेद,108 पुराण के द्वारा आर्य अपनी आगामी पीढियों को यही सिखाते रहे कि दासों, शोषितों अछूतों, और स्त्रियों को शिक्षा और अधिकार देने की माँग करने के जुर्म में उसका कत्ल करना चाहिए। एकलव्य निषाद होने के कारण उसकी अँगुली काट दी गयी। इस राजनीतिक नीति का विरोध करते हुए शिवदास ने लोगों से कहा कि – " एकलव्य,कर्ण, महर्षी वाल्मिकी,शंबुक के नाम पर पुरस्कार क्यों नहीं दिये जाते।उसका कारण यही है कि ये लोग योग्य और दक्ष तो थे।परन्तु धमक और हनक एवं राष्टीय बहस के नाम पर खुला शक्ति प्रदर्शन करनेवाले वर्ग को प्रतिनिधित्व नहीं करते थे।"[11]

3.3.4. शिक्षा

जस तस भई सवेर में एक ही दलित पात्र शिक्षित है। दो पात्रों के माध्यम से शिक्षा के महत्व को दिखाया है। सरवन और उसका बेटा शिवदास। सरवन शिक्षित नहीं है। फिर भी वह शिक्षा का महत्व जानता है।

हंसा और सुनहरी के माध्यम से अशिक्षा का भीषण परिणाम दिखाया है। अज्ञान अंधविश्वास की जननी है। अनपढ लोगों को अंधविश्वास जल्द ही जकड लेते हैं। अशिक्षा और उससे उत्पन्न अंधविश्वास को शिक्षा से ही दूर किया जा सकता है। अशिक्षा ही दलितों को दलित बनायी रखती है। हंसा अनपढ है। उनका का मन पढाई में नहीं लगता था। वह पढाई छोडकर जल्द ही अखाडे में उतरा और पहलवानी में काफी नाम कमाया। पहलवानी से उसे जीने का धन तो मिलता था। अशिक्षा के कारण हंसा पूरी तरह अंधविश्वास में फँस गया। भैंस बीमार पडने पर देवता कोप कहकर इलाज करना ठीक नहीं समझा। झाड फूँक करने के कारण भैंस मर गया। कुछ दिनों के बाद हंसा की पत्नी मेंड से फिसलकर गिरने के कारण दायी टाँग टूट गयी।इसे भी देवकोप मानकर उन्हें फिर खुश करने केलिए पंडित जो कहते हैं वे सब करने केलिए भी तैयार होते हैं।

दलित किस प्रकार जीना है इसकेलिए भारत में सुनिश्चित अलिखित नियम है। अशिक्षा दलितों को गरीबी में जीने केलिए विवश करता है। इससे मुक्त होने केलिए शिक्षा पाना आवश्यक है। हंसा का भाई सरवन पढे लिखे है वह अपनी कमाई भगतों और देवताओं को खुश करने केलिए नहीं देता। दलितों केलिए बनाए नियमों को तोडकर सरवन ने पक्का मकान बना लिया और बच्चों को अच्छी शिक्षा भी दी। वह कडी मेहनत करता है और कमाई अपने लिए खर्च करता है। अपनी खाडी कमाई वह अंधविश्वास केलिए नहीं उडाता। उसने अपने जेष्ठ पुत्र को पढाकर राष्ट्रीय बैंक में खजानजी के पद तक पहूँचाता है। वह अंधविश्वासों और दलित विरोधी सामाजिक नियमों के विरुद्ध आवाज उठाता है। सरवन शिक्षा को दलित अस्मिता के एकमात्र तत्व के रूप में स्वीकार करता है।

भारतीय समाज केलिए सामाजिक नियम बनानेवाला आर्य या ब्राह्मण है। कोई इसे तोडे भारतीय संस्कृति के ठेकेदार माने जानेवाले सवर्णों को यह सह्य नहीं है। मानवीयता के आधार पर सभी को समान हक देना उसे कभी स्वीकार्य नहीं है। इसकेलिए विश्वासों को अँधविश्वास बनाकर दलितों में प्रचार किया। उसने दलितों की आर्थिक स्थिति में ऐसा प्रहार किया कि वे हमेशा केलिए गरीबी की भट्टी में ही तडपने केलिए मज़बूर हो गये। इस तडप से मुक्त होने केलिए दलितों केलिए शिक्षा ही एकमात्र सहारा है। यह उसे हर अमानवीय तत्वों तोडने की शक्ति देगी और हर मानव विरोधी सामाजिक नियमों का विरोध करने का आत्मविश्वास भी।

3.3.5. आत्मविश्वास

अस्मिता की तलाश केलिए आत्मविश्वास बहुत आवश्यक है। शिक्षा और शिक्षा से मिली नौकरी दलितों में आत्मविश्वास लाती है। जातियाँ दलितों के आत्मविश्वास को तोडती हैं।सदियों से दबे कुचले रहने के कारण वे अपने आप को अब भी छोटा ही समझते है। जाति व्यक्ति की खुशी में बाधा डालती है। दलित शिवदास और ब्राहामण कन्या सुमेधा कॉलेज में एक साथ पढते थे। उन दोनों के बीच एक आकर्षण भी था। शिवदास उस समय एक रिशतेदार के यहाँ आश्रित रहकर अध्ययन कर रहा था और रोजी रोटी के संकट से गुजर रहा था। सुमेधा अमीर है और ब्राह्मण भी।इसलिए शिवदास में उसके प्रेम प्रस्ताव स्वीकार करने का साहस नहीं किया।

शिक्षा और ज्ञान व्यक्ति में आत्मविश्वास भर लेता है।शिक्षा, नौकरी और सामाजिक संगठन शिवदास के जातिगत संकुचित मनोवृत्ति को दूर करके उसमें आत्मविश्वास भर लेता है। शिक्षा व्यक्ति को बौद्धिक और आर्थिक सहारा देता है। उसके मन और शरीर को मजबूत बना लेती है। पढाई के बाद शिवदास को एक सरकारी बैंक में नौकरी मिली। जब उसे मालूम होता है कि सुमेधा अब भी उसे प्यार

करती है तो वह सधैर्य उसे स्वीकार करता है। गाँव में अंधविश्वास के नाम पर करनेवाली कुरीतियों का विरोध करता है। गाँव का कोई भी आदमी उसका साथ नहीं देता फिर भी वह डरता नहीं है। दलितों पर हो रहे सामाजिक और धार्मिक शोषणों की जानकारी देकर गाँववालों को जागृत करने की कोशिश करता रहता है।

सरवन आत्मविश्वस के साथ अंधविश्वास के खिलाफ लडता रहता है। अंधविश्वास में जकडा रहनेवाला हंसा को सरवन और शिवदास समझाने की कोशिश करते हैं। इस संघर्ष में उसे भाई हंसा और पिता मंगल पहलवान से भी दुश्मनी लेनी पडी। सरवन के अस्मिता बोध और आत्मविश्वास को तोडने केलिए भगत और चौधरी ने मिलकर षड्यंत्र बनाया। हंसा के घर में चोरी करने की झूठा इल्जाम सरवन पर डालकर उसे जेल भेज दिया ।फिर भी वह इन झूठे भगतों को मानने केलिए तैयार नहीं हुआ। वह भाई द्वारा दे रहे जुल्मों को सहता रहा पर अपनी अस्मिता को बचाता रहा।

3.3.6. आरक्षण का समर्थन

दलितों को पिछवाडे में रखने की संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। इन्हें आगे लाने केलिए अंबेडकर ने राजनीतिक सुरक्षा के रूप में आरक्षण की मांग की। क्योंकि अपनी लंबी राजनीतिक बहुदर्शिता से उन्होंने यह जान लिया था कि आरक्षण के बिना दलितों को कहीं भी जगह नहीं मिलेगा या सवर्ण, देने केलिए तैयार नहीं होगा। सवर्णों ने प्राचीन काल से लेकर दलितों के सामने शिक्षा प्राप्ति और विकास के समस्त द्वार को बंद कर दिये थे। सभी अधिकारों का उपभोग सवर्ण वर्ग ही कर रहे थे। गुलाम माननेवाले दलितों को मानवीय अधिकार देने केलिए सवर्ण कभी भी तैयार नहीं थे। इसलिए अंबेडकर ने आरक्षण का सुझाव सामने रखा।

आरक्षण पर दोष देने वाले लोग यह नहीं जानते है कि आरक्षण हमारी संस्कृति में वेदकाल से ही उपस्थित है। यहाँ काम और इज्जत जाति के आधार पर आरक्षित है। वेद पढनेवाले चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी बन गये। इससे उन्हें समाज में ऊँचा स्थान मिला। साथ ही देश के करोडों मंदिरों में पुजारियों, शैवाइतों ,मठाधीशों, महंतों और शंकराचार्यों के पद पर भर्ती पाने का एक मात्र आधार यही ब्राह्मणता है। यह वर्ग भी जाति के नाम में दी गयी आरक्षण ही है।करोडों परिवारों के लिए पीढी दर पीढी केलिए जन्म और जाति के आधार पर काम आरक्षित किये गये हैं। यहाँ योग्यता और दक्षता निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। यह भी आरक्षण है, सवर्णों द्वारा दलितों केलिए दिया गया आरक्षण। तब तो इसका विरोध किसी ने नहीं किया, क्योंकि इससे वे समाज के सभी ऊँचे पदों और अधिकारों के एकमात्र अधिकारी बन गये। संविधान में दिये गये आरक्षण से अधिकारों का आरक्षण समाप्त हो जाता है। इसलिए सवर्ण जी तोडकर इसका विरोध कर रहा है।

भारत में आरक्षण हमेशा सुर्खियों में रहा है। ऐसा कहा जाता है कि आरक्षण से अयोग्य व्यक्ति यदि ऊँचे पद पर पहूँच जाए तो विपरीत प्रभाव पड सकता है। इस पर अपना विचार प्रकट करते हुए शिवदास कहता है कि - "आप उसे अपेक्षाकृत कम योग्य कह सकते हैं परन्तु अयोग्य कथापि नहीं। परन्तु आप लोगों की आदत ही बन चुकी है तो उसमें कोई भी क्या कह सकता है। फिर भी इतना तो जान लीजिए प्रो.साहब कि अब स्थिति बदल गयी। पहले भी इन लोगों में अपेक्षा कृत, कम योग्यता इसलिए रही कि आपने उनके शिक्षा प्राप्ति और विकास के समस्त द्वार बंद कर दिये थे।"[12]

सभी निचले स्तर के काम जैसे टट्टी साफ करना, मृत पशुओं को उठाकर ले जाना और उसका खाल उतारना आदि दलितों को दे रखे हैं। आरक्षण का विरोध

करनेवाले यह नहीं जानते हैं कि यह भी एक आरक्षण है। सवर्णों ने सभी निकृष्ट काम दलितों पर लाद कर उन्हें मुख्य धारा समाज से अलग या दूर रखा। इसे एक काम के रूप में नहीं जाति यानी एक मानव वर्ग के रूप में माना है। तब सभी काम अच्छे है या अच्छा मानना चाहिए वाला भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्त सामाजिक व्यवस्था में कठपुतली बनकर रह जाता है।

दलितों के आत्मविश्वास का हनन करने की कोशिश समाज में गुप्त रूप में चल रही है। आरक्षण संबंधी विरोध और बहसें इस तरह की कोशिश है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण के माध्यम पहूँच रहे दलितों को हीन दृष्टि से देखा जा रहा है। लोग हमेशा दलितों की दक्षता या योग्यता पर चिंतित है। धनराशी देकर शिक्षा संस्थानों में सीट पाने और नौकरियाँ खरीदने वालों की क्षमता पर वे चिंतित नहीं होते।

3.3.7. निर्धनता के कुचक्र को तोडना

हाशियेकृतों के पिछडेपन का कारण निर्धनता का कुचक्र है। इससे मुक्ति का मार्ग ढूँढने से पहले इसका कारण भी जानना जरूरी है। क्योंकि इसे तोडने का मंत्र भी वहाँ ही छुपा है। यदि व्यक्ति निर्धन है तो उसके पास कम संसाधन होंगे।उससे कम निवेश,कम रोजगार,कम लाभ और कम बचत होंगे। कम रोजगार और कम उत्पादन से कम ही लाभ मिलेंगे। अर्थात निर्धनता ही गरीबी का कारण है। निर्धनता को दूर करने केलिए बचत के साधन बढाने होगें, फिज़ूल खर्च रोकनी होगी। बचत में वृद्धि करके निवेश बढाना होगा। लघु बचतों का महत्व समझना होगा।लघु संसाधनों को बृहद रूप देना चाहिए। पैसा जेब में रहता है तो उसका मूल्य घटता है। जब कि निवेश करने पर बढता है। इसप्रकार बचत को दुगुना किया जा सकता है। इस प्रकार अमीर गरीब की खाई धीरे धीरे मिटा सकते हैं। निर्धनता के कुचक्र को जल्द से जल्द

मिटाने का मार्ग बताते हुए शिवदास कहता है – "निर्धन के साथ कथित रूप से समान रोटी बेटी का व्यवहार करनेवाले, उसकी महिलाओं की इज्जत आबरू, शील और लज्जा को अपनी वासना तृप्ति का साधन समझनेवाले, उसका पेट काटकर उसका शोषण करनेवाले, उसे कीडे - मकोड़े जैसी जन्दगी देनेवाले ये सुविधा भोगी, मानंतवादी एवं शोषक तथा कथित योग्य और दक्ष ऐशो आराम कर रहा है। उसका पेट काटकर रंगरेलियाँ मनायी जा रही हैं। कुत्तों को मक्खन उसकी मेहनत से खिलाया जा रहा है। दस दिन गरीबी की परिभाषा और उसका कारण समझ आ जाएगा उसी दिन निर्धनता का दुष्चक्र टूट जाएगा।"[13]

3.3.8. नारी अस्मिता

हमेशा ऐसा कहा जाता है कि नारी के प्यार पर विश्वास नहीं करना चाहिए। वह पुरुष के समान प्यार में कभी भी गंभीर नहीं होंगे। मौका मिलते ही पुरुष को धोखा देकर चली जाएगी। सुमेधा नारी पर लगे इस कलंक को धो डालती है।ऐसी बहुत सारी नारियाँ है जो सच्चा प्यार करती है और उसपर अटल रहती है।

सुमेधा होशियार सुंदर ब्राहमण कन्या है। सुमेधा और शिवदास दोनों हापुड़ कालिज में स्नातकोत्तर शिक्षा एक साथ किये थे। सुमेधा अपने दोस्त शिवदास से प्यार करती है। बातों बातों में हुए इस प्यार को पहले वह समझ नहीं पायी। जब मालूम हुआ तब वह इसकी सूचना देती है।सुमेधा अमीर पिता की पुत्री है। जाति बंधन की समस्या इससे भी गुरुतर थी। इसलिए शिवदास ने अपना प्यार चुपाकर शिष्टता पूर्वक इनकार कर दिया। तीन बार उसने शिवदास के मित्र सुमंत के पास कहला भेजा कि वह जाति का बंधन नहीं मानती, माता - पिता को वह मनाएगी, अमीरी गरीबी पर विचार कर लिया है। लेकिन शिवदास सब समझकर भी नासमझ ही बना रहा। इसलिए सुमेधा की अनुरक्ति विरक्ति में बदल गयी। इस के बाद सुमेधा

फिर कभी न उससे कुछ बोली और न ही मिली। लेकिन इस बात को लेकर उसके पीछे पीछे रो धोकर चलने केलिए वह तैयार नहीं थी, और किसी से प्यार करने केलिए तैयार भी।

सुमेधा अपनी पढाई ज़ारी रखती है। अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद शोधकार्य करने लगी। इस बीच दोनों की मुलाकात हुई। सुमेधा तब भी वैसी ही थी, जैसी पहली थी। उसका तिरस्कार शिवदास सह नहीं पाया।वह अपने मन की बात सुमेधा से कहा और अपनी विवशता भी। सुमेधा उसे समझाती हुई कहती है कि - "नारी किसी एक को हृदय सौंपती है उसी के हृदय की साम्राज्ञी बनना चाहती है वह समर्पण चाहती है। जाने क्यों तुम नारी मन की गहराई तक नहीं पहूँच सकते। तुम्हारे जैसे पाषाण हृदय को हृदयहीन ही कहा जाना चाहिए।अब मेरी नियति थी कि मुझे एक हृदयहीन से प्रेम हो गया। यथापि मैंने राह सोच - विचार कर चुनी और राह पर निकलकर पीछे मुड़ना मैंने नहीं सीखा।"[14]

नारी को अपनी पसंद के लडके के साथ शादी करने का हक नहीं है। शादी में नारी के गुण नगण्य है। वर्चस्ववादी समाज में पुरुष और जाति ही प्रधान है। शादी चाहे किसी से भी करे, लेकिन एक दलित से कभी न हो,यह सोच घृणित सवर्ण मानसिकता की उपज है। शादी के मामले में व्यक्ति के चरित्र और उसकी नौकरी को नहीं बल्कि उसकी जाति को महत्व देता है। नालायक और ऐरा गैरा ही क्यों न हो अपने जाति का है तो माँ बाप बेटी देने केलिए राजी हो जाते हैं।नीच जाति का लडका शील गुण संपन्न और नौकरी पेशा व्यक्ति हेने पर भी माँ-बाप बेटी का हाथ देने केलिए तैयार नहीं होते। सुमेधा के परिवारवाले उसकी शादी सहजाति के लडका सुशांत नामक नालायक लडके से करने जाते हैं। सुमेधा इसका विरोध करती है।जाति

के बंधन में वह अपने जीवन को बर्बाद करना नहीं चाहती। इसलिए वह अपने प्रेमी शिवदास से सभी प्रतिबंधों को तोडकर शादी करती है।

3.3 .9. शोषण का विरोध

दलित और नारी अनेक तरह के शोषण के शिकार हैं। सवर्ण उनका शारीरिक और मानसिक शोषण कर रहे हैं।लेकिन वे इसे पहचानने में असमर्थ हैं।अंधविश्वास को उसके शारीरिक और मानसिक शोषण केलिए इस्तेमाल किया है।इसके द्वारा उसका आर्थिक शोषण भी करता है। वे काम करते रहते है। लेकिन जात,पूजा,ईश्वर प्रीति के नाम ब्राह्मण लोग उसे ठगते रहते है।पूजा के बहाने नारी का शारिरिक शोषण भी करते हैं।शोषण का जाल ही सवर्ण दलितों केलिए बिछाए बैठे है।

हंसा और पत्नी भगत के बडे भक्त है।लेकिन भगत की नजर हमेशा सुनहरी के शरीर पर थी। बच्चे की बीमारी के इलाज के बहाने भगत सुनहरी को अपने घर बुलाया। पूजा के दौरान नशा देकर उसे बेहोश करके चौधरी और भगत ने उसका बलात्कार किया। सुनहरी के बलात्कार का खबर और भगत की भगताई की असलियत उनके ही मुंह से सुनकर हंसा पर चढा अंधविश्वास का भूत उतर गया। हंसा हाथ में गन्ना काटने का कुदाल लेकर भगत के घर की ओर चला।लेकिन चौधरी के लठैतों ने उसे मार कर घायल कर दया।उसके पिता मंगल पहलवान ने चौधरी के लठैतों के हाथपाँव तोड डाला और चौधरी की जमकर धुलाई की। फिर मंगल पहलवान ने भगत के घर जाकर कहा कि - "आ आ भगत,आज तेरी भी भगताई निकाल दूँ।बुला साले कौन सा देवता है तेरा।आज तेरा देवता भी सामने आ गया तो उसकी भी खैर नहीं है।"[15] मंगल पहलवान ने भगत के कमरे में घुसकर देवताओं की तस्वीरें, पूजा का सामान निकाल कर बाहर फेंक दिया और भगत को घसीटकर बाहर

निकाल लाये। उसने भगत की एक न सुनी। उन्होंने भगत को ऊपर उठाकर नीचे पटक दिया और मार मारकर उसकी हड्डी पसली एक कर दिया।

3.3.10. अंतर्जातीय विवाह

शिवदास और सुमेधा सहपाठी थे।शिवदास दलित है फिर भी उसे बचपन से ही पढने का शौक था। उसने हिंदी, अंग्रेजी तथा रूसी साहित्य, इतिहास, चिकित्सा शास्त्र,राजनीतिक शास्त्र, अर्थ शास्त्र, नीति शास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। सुमेधा उसे प्यार करने लगी। शिवदास पहले मानने केलिए तैयार नहीं हुआ। लेकिन सुमेधा के सच्चे प्यार के सामने अंत में वह झुक गया। उनके प्यार मानने केलिए सुमेधा के परिवारवाले तैयार नहीं हुए। परिवारवालों ने घोर विरोध किया। सुमेधा को घर के अंदर कैद कर दिया और रिश्ते के लडके के साथ शादी करने की तैयारियाँ करने लगा।शिवदास सुमेधा को ढूंढ निकाला और कार्ट में शादी की।

3.4. मिस रमिया (2007)

स्त्री और पुरूष एक जाति के होते हुए भी दोनों केलिए समाज में अलग अलग नीति है। पुरुष उसे पूरी तरह दबाकर रखना चाहते हैं। दलितों की जिंदगी ही कठिन है। दलित स्त्रियों की जिंदगी उससे भी ज्यादा कठिन और यातनाओं से भरी हुई है। दलित समुदाय के पुरुषों में ही शिक्षा का प्रचार कम है, तो नारी की स्थिति विचारणीय है। सवर्ण पुरुष जिस तरह दलित पुरुषों को सताते हैं उसी तरह दलित महिलाओं को भी सताते है। दलित महिलाएँ तिहरे शोषण के शिकार हैं। एक पितृसत्तात्मक व्यवस्था की, दूसरे छुआछूत की, तीसरे सवर्ण पुरुषों की।

3.4.1. जागृति

भारतीय समाज में स्त्रियों की गुलामी और पुरुषों के प्रभुत्व की जो प्रवृत्ति है, उसका असर दलित समाज में भी है। घर हो या समाज उसकी प्रतिष्ठा नारी के कंधों पर टिकी है। पुरुष चाहे कुछ भी करे घर पर कोई आफत नहीं आएगा क्योंकि वह लडका है, समाज ने उसे सबकुछ करने की छूट दे रखी है। घर और खानदान को इज्जत देने का काम बस नारी को दिया है। नारी जितनी भी सुशील रहे, उसकी आँख ज़रा सी भी इधर का उधर हो जाय तो नयी नयी मनगठत कहानियाँ हवा में उठने लगेगी। इसलिए हमेशा उसे बाँधकर रखता है। इसी कारण उसे पढने केलिए भी नहीं भेजता। यदि पढाई करे तो भी एक उम्र के बाद पढाई रोक कर घर में बिठाती है। उसकी इच्छाएँ खिलने से पहले ही झर जाती है।समाज में एक अलिखित नियम है कि नारी के जीवन का लक्ष्य शादी करके घर संभालना मात्र है। इसके आगे भी कुछ नहीं, पीछे भी कुछ नहीं। रमिया घर बैठे रहना नहीं चाहती वह सामाजिक बंधनों को तोडकर स्वतंत्र रहना चाहती है देश की सेवा करना चाहती है।

भारतीय समाज में नारी को घर की चीज़ ही मानी है। बिना शादी न करके यहाँ नारी को जीने नहीं देते। जिधर चलो दो चार जलती आँखें हमें झुलसाने केलिए तैयार रहती है। समाज की इस मनोवृत्ति के अनुसार अपनी इच्छाओं को बदलने केलिए रमिया तैयार नहीं होती - " मैं डरनेवाली नहीं हूँ। मैं अपनी दुशमनों से डटकर मुकाबला करूँगी और शमी, जब मैं अपना कर्तव्य सच्चे हृदय से करूँगी तो भगवान भी मेरी सहायता करेंगे।मैं सोचती हूँ कि अपना जीवन इन्हीं सीधे साधे गाँववालों के साथ बिताऊँ।इनके बच्चे पढ नहीं पाते इनके लिए एक छोटा स्कूल खोल दूँ।"[16]

3.4.2. शिक्षा

नारी को शिक्षा से जितनी सुरक्षा मिलती उतनी किसी और से नहीं मिलती। अपने चारों तरफ की जीवन से शमी और रमिया ने यह जान लिया था कि नारी और दलितों को दूसरों के समान सम्मान की जिंदगी मिलने केलिए शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। रमिया और शमी दसवीं तक पहूँचते ही उनके घर में शादी की बात करने लगी।दोनों ने अपनी माताओं से साफ साफ कहा कि मेट्रिक तक तो पढ़ने दीजिए। दसवीं पास करने के बाद शमी की शादी हो जाती है। रमिया अपने घर में एक स्कूल खोलती है। गाँव प्रधान इसे सरकारी स्कूल बनाते है।

शिक्षा एक ऐसी शक्ति है जो नारी को पितृसत्तात्मक समाज में इज्जत के साथ जीने की शक्ति देती है। शमी को ससुराल में आर्थिक तंगी के कारण बहुत कुछ सहना पडा। रमिया का स्कूल सरकारी स्कूल बनने के बाद शमी को वहाँ नौकरी मिलती है और उसकी आर्थिक स्थिति संभल जाती है। दलित नारी केलिए अस्मिता का रास्ता आसान नहीं है। लेकिन शिक्षा उसकी तलाश को एक हद तक आसान बनाती है। रमिया ने अपनी अस्मिता की तलाश केलिए शिक्षा का साथ ही लिया। रमिया का स्कूल सरकारी स्कूल बनाकर सवर्ण गाँव प्रधान अपनी भतीजी को स्कूल का प्रधान बनाकर उससे दुश्मनों की तरह व्यवहार करने लगा तो रमिया ने प्रतिकार केलिए शिक्षा का रास्ता ही अपनाया। क्योंकि वह जानती है कि एक दलित बिना ऊँची शिक्षा लिये आगे नहीं बढ़ सकता।

विद्यालय में अध्यापन का काम करती हुई वह पढाई में जुट गयी। जहानाबाद के कॉलिज से रमिया और शमी इन्टरमीडियट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करती हैं। फिर दोनों शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय से प्रशिक्षण की उपाधी भी प्राप करती।शिक्षा के द्वारा दोनों समाज में सम्मान के साथ रहती हैं।

3.4.3. सवर्ण दंभ पर प्रहार

सवर्णों को अपने पर बडा गर्व है। वे अपने को देवताओं की संतान मानते हैं। देवों के पुत्र होने के कारण अपने आपको गुणों का प्रतिरूप मानते हैं और दलितों को नीच और निकृष्ट मानते हैं। निकम्मा, दुराचारी भी अपनी जाति के नाम पर इतराकर शीलवान दलितों का मजाक उठाते हैं। रतन, अनुज और शंकर तीनों कायस्थ जाति लडके हैं। वे दिन भर गुल्ली डंडा खलते रहते हैं। मन लगा तो ही। वह वे स्कूल जाते हैं नहीं तो दिन भर गली गली घूमकर लडकियों के पीछा आवारा कुत्तों की तरह भौंकते रहते हैं। इतने लुच्चे और लफँगे होने फिर भी वे समाज में पंडित ही कहलाते है। क्योंकि उनेक बाप,दादे तक पंडित कहलाते आए है। बैजू दलित लडका है बहुत ही शांत और सौम्य स्वभाव का है।पढ़ाकू होते हुए भी दलित होने के कारण वह नीच ही पहचाना जाता है। शामिली,रमिया और बैजू दोस्त हैं। लेकिन शंकर,रतन और अनुज को यह दोस्ती बिलकुल पसंद नहीं है। वे कायस्त शामिली से बात करने से बैजू पर वार करते हैं। इसके कारण वह डर कर एक हफ्ता बीमार रहता है।

एक दिन शामिली, रमिया और बैजू तीनों खेत में मचान पर बैठकर डम्हा तोडकर खा रहा था। तब तीनों वहाँ पहूँच गए और मचान हिलाने लगे। और बैजु को गाली देने लगा और शमी को बैजू से दोस्ती तोडने केलिए कहा। शमी ने उसके सवर्ण्य की दंभ पर प्रहार करते हुए कहा कि -" अरे नीच के बच्चों यह क्या रास रचाएगा रचाता तो है तू जो अपनी चचेरी फूआ को नहीं छोडा। कुंती फुआ के पेट में किसका बच्चा है।"[17]

3.4.4. अत्याचार का विरोध

दलितों पर अत्याचार करना सवर्ण अपना अधिकार मानते हैं। वे दलितों को मार मार कर और गाली देकर अपना अधीन बनाए रखने की कोशिश करते रहते हैं।

दलितों के लिए बनाये गये नियमों को तोडने पर दलितों को कड़ी सज़ा दी जाती है। सवर्णों की इस मानसिकता पर प्रकाश डालकर राजकिशोर कहते है कि – " यह चेतना की एक कैद है, जो सैकडों हजारों वर्षों से चली आ रही है। इस कैद में उसके पिता-पितामह रहे और उनके पिता-पितामह भी।"[18]

दलितों को सवर्णों के पास से होकर गुजरने का अधिकार नहीं है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था छुआछूत के भीषण शिकंजे में फँसी हुई है। इसके अनुसार दलितों को देखने मात्र से अशुद्ध हो जाते हैं। कुछ पास से गुजरने से। प्राचीन काल में इसका पालन इसलिए करता था कि जाति के कारण सभी गंदगी साफ करने काम दलितों को है। काम करने के बाद शरीर पर लगी गंदगी साफ करने केलिए वे गरीबी के कारण साबुन आदि खरीद नहीं पाते थे। इसलिए शरीर से आनेवाली बदबू के कारण उसे दूर रखा जाता था। बाद में यह एक परंपरा ही बन गयी। सवर्ण ऐसे सोचने लगा कि दलित हो तो छुआछूत का पालन करना चाहिए। वह अब भी इस जर्जर परंपरा को ढोते हुए चलते है। आधुनिक समाज में दलित दूसरों के समान स्वच्छ रहते है।फिर भी सवर्ण उस पर छुआछूत का पालन करते हुए वार करते रहते हैं। इस कैद से मुक्त होने केलिए दलितों की चेतना जागृत होनी चाहिए, उन्हें शोषण का विरोध करना चाहिए। बैजु चमार का बेटा है।सवर्णों के पास से गुजर जाने से उस नादान बच्चे को सवर्ण बुरी तरह पीटता है। जब उसे हरामी बुलाता है तब बैजु बिफर कर बोला - देखो चाचा मारा,मैं मार खा लिया लेकिन अब से हरामी मत बोलना।,,,,हाँ, हाँ मैं हरामी नहीं हूँ।"[19]

जाति की चिंता भारत के बच्चे बच्चे में है। गैर दलित बच्चे मौका मिलते ही दलित बच्चों को जाति के नाम पर छेडते हैं। कायस्त शमी से बात करने से रतन, शंकर और अनुज ने मिलकर बैजु की खूब पिटाई की और कहा देख तुझे रास रचा

ना है तो चमार टोली की लडकियों के साथ ही रचना। उनके मार खाकर बैजू एक हफ्ता तक बुखार रहा। फिर भी शमी उससे ही दोस्ती बनाये रखती है। इस पर इन लोगों ने बैजू पर वार किया। बैजु मार खाने के बजाय गीदडों को मारनेवाला डंडा लेकर टकर खडा रहा। अत्याचार और उत्पीडन सहना भी जुर्म है। क्योंकि जब तक सहता रहेगा तब तक सतानेवाला सताता रहेगा। वह यह नहीं जान पाएगा कि वह जो कर रहा है वह गलत है।

3.4.5. नारी अस्मिता

रमिया गरीब किसान की बेटी है। वह अपनी गरीबी और लाचारी कभी प्रकट नहीं करती। बरसात के मौसम में उसके घर मे गरीबी बनी रहती है। एक बार फीस भरने के केलिए उसके पास पैसा नहीं था। पिता परेशानी में थे। उसे और परेशान करना वह नहीं चाहती थी। इसलिए वह चुप रही। शामिली से भी एक शब्द नहीं कहा। अंतिम दिन कक्षा का एक छात्र शिवा ने उसका फीस भर लिया। इसके बाद जब भी रमिया एकांत में पाता तो शिव कहता कि जिस चीज की कमी है तो कह देना। दुख के भागी नहीं रहेंगे तो ब्राहमण, ब्राहमण नहीं है। उसकी बात सुनकर रमिया के मन में उसके प्रति एक लगाव पैदा हो गया।

एक दिन साबुन की जरूरत पडी तो वह शिवा के दूकान से उधार लेने केलिए गयी। शिवा की माँ रसोई में काम कर रही थी इसलिए शिवा को साबुन देने को कहा। शिवा उसे साबुन दिया। रमिया के मुडते ही शिवा ने उसे गोद में उठा लिया। सहमी रहनेवाली रमिया गुस्से से लाल हो गयी। वह साबुन फेंकते हुए नागिन की तरह फुंफकार उठी – " क्या यही तुम्हारा उपकार है।लाचारी के ऊपर व्यभिचारी करते हुए तुम्हें शरम नहीं आई। अब से मेरी ओर नज़र उठायी तो आंखें फोड़ डालूँगी।" [20]

3.4.6. मौन विद्रोह

कभी कभी मौन भी धार के समान तेज़ होता है।मेट्रिक के बाद रमिया गाँव में भटकते हुए बच्चों को शिक्षा देने केलिए अपने घर में ही एक स्कूल खोल दिया।गाँव के बहुत सारे दलित,पिछडे,गरीब बच्चे उसके विद्यालय में पढने आये।वह फीस लिये बिना दलित बच्चों को पढाने लगी।वह दलित बच्चों को शिक्षित करके जागृत बनाना चाहती थी। एक साल तक ऐसा चलता रहा।जब गाँव प्रधान माधव चाचा को इसकी खबर मिली तो उसने भाग दौड करके रमिया की स्कूल को सरकारी स्कूल बना दिया।

माधो चाचा ने स्कूल को सरकारी स्कूल बनाने के बाद रिश्तेदार मधु को स्कूल का प्रधान बनाया। दलित बच्चों केलिए स्कूल बनानेवाली, उनके लिए दिन रात काम करनेवाली रमिया वहाँ की अध्यापिका मात्र बन गयी। गाँव प्रधान ने बच्चों के प्रति प्यार के कारण नहीं सरकार की ओर से मिलनेवाली ग्रांट आदि पाने केलिए और अपनी भाँजी की नौकरी केलिए इसे सरकारी स्कूल बनाया था। मधू को दलित बच्चों के प्रति कोई सहानुभूति या प्यार नहीं है। सरकारी स्कूल की प्रधान बनने की लालच से ही वह इन दलित बच्चों को पढाने केलिए आयी। बच्चों को पढाने के नाम पर वह खुद पढती थी। अभी शुद्ध से एक अक्षर नहीं लिख सकती थी। रमिया को हमेशा यह शक रहता था कि वह प्रवेशिका कैसे पास हो गयी। लेकिन वह उसका कभी प्रत्यक्ष विरोध नहीं किया लेकिन मौन विद्रोह करती रही ।

3.4.7. संयम

हाशियेकृतों केलिए अस्मिता की तलाश एक संघर्ष भी कम नहीं है। इसलिए कभी कभी संयम को भी अपनाना पडता है। लक्ष्य की प्राप्ति तक हाशियेकृतों को

संयमित रूप में रहना ही चाहिए। नहीं तो उसकी अस्मिता की कोशिश बीच में ही रुक सकती है।

सवर्णों को समाज में हाशियेकृत वर्गों की उपस्थिति बिलकुल पसंद नहीं है। इसलिए वह दलितों को सताते रहते हैं।प्रशिक्षण महा विद्यालय में दलित होने के कारण रमिया को कठोर तिरस्कार सहना पडा। दो चार सीनियर लडकियाँ जाती- पाँति का भेद रखती थीं। पढाई में कमज़ोर और नैतिकता में गिरी हुई होने पर वे अपने आप को ऊँचा मानती है। वे शमी को रमिया के साथ रहने के कारण डाँडती है। खाना खाते समय उसे दूर रहने केलिए कहती है। शमी रमिया का अपमान देखकर क्रुधित रहती।लेकिन वह अकेली कुछ नहीं कर पायी। रमिया मानसिक रूप से परेशान रहती है। एक दिन वह पूरी तरह टूट गयी जब सिन्हा माडम ने उसे खाना परोसने से मना कर दिया। रमिया इसका विरोध नहीं किया। विरोध करके अपनी पढाई में वह बाधा डालना नहीं चाहती थी। वह जल्द ही होस्टल से खिसक गयी और मौसी के घर में रहकर पढने लगी।

रमिया की अंदर की पीडा पढाई की तीव्र धारा बन गयी। वह पढाई मे इतनी तेज़ निकली की अध्यापक लोग दंग रह गये। भाषण, खेल कूद सभी प्रतियोगिताओं पर अव्वल आती रही। वह प्रशिक्षण प्रथम श्रेणी में पास किया।

3.4.8. संघर्ष

इक्कीस्वीं सदी में नारी शिक्षित होकर अपने पैरों पर खडी है लेकिन पुरुष आज भी उसे इज्जत देने केलिए तैयार नहीं है। आज भी उसके नज़रों में नारी ऐरा गैरा ही है। नारी बुद्धि और क्षमता से पुरुष से चाहे कितनी भी ऊँची क्यों न हो पुरुष की नज़र में वह ही बडा है। क्योंकि समाज ने उसे बडा स्थान दिया है। अपनी अस्मिता को यों कुचलते देखने केलिए रमिया तैयार नहीं थी।

रमिया कंपनी स्कूल में अध्यापिका बन गयी। अच्छा वेतन था। गरीब बच्चे पढनेवाला स्कूल था। गणतंत्र दिवस पर विद्यालयों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम में रमिया के विद्यालय को सीमित समय का बहाना बनाकर रोक दिया गया।लेकिन गणतंत्र के दिवस विद्यालयों द्वारा प्रस्तु कार्यक्रम बहुत लंबा था। इसके बारे में प्रोग्राम इन चार्ज से पूछने केलिए रमिया कार्यक्रम की समाप्ति पर मंच पर पहूँची। मंच पर अफसर नहीं था।इसलिए मंच पर उपस्थित लोगों से रमिया ने पूछा कि प्रसाद साहब कहाँ गये। हमारे बच्चों के प्राग्राम क्यों रोक दिये गये। इसी बीच भीड़ में से एस. के सिंह निकल कर चिल्ला उठे चुप चुप,एक दम चुप,जाकर अपने प्रधान अध्यापक से जाकर पूछो। रमिया ने उससे ज़बान संभालकर बात करने केलिए कहा। वह तैश में आकर कहा कि हरामज़ादी अपने आप को क्या समझती है रमिया इस अकारण गाली से अवाक् रह गयी। रमिया को धक्का सा लगा कि क्या गणतेत्र दिवस पर भी एक महिला को सही बात पूछने का अधिकार भी नहीं है। किसी को भी यह बुरा नहीं लगा और किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया।

प्रत्येक जाति या समुदाय की स्त्रियों की दशा उस जाति को समाज में मिलनेवाली प्रतिष्ठा के समान होती है। ब्रहमण,क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र पुरुषों की समाजिक दशा जिस प्रकार होती है उनके समाज स्त्रियों को मिलनेवाला सम्मान भी उसी के अनुसार होता है। जिस समाज में नारी को ही सम्मान नहीं है वहां एक दलित नारी का वर्चस्ववादी पुरुष अधिकारी पर उँगली उठाना एस.के सिंह को अच्छा नहीं लगा। इसलिए उसने रमिया पर बरस पडा था।लेकिन रमिया इस घटना को यों ही भूलने केलिए तैयार नहीं थी। उसने कानून की सहायता से वर्चस्ववादी समाज के खिलाफ मोर्चा लगा दिया।

अगले दिन ही उसने प्रधान अध्यापक को एक लिखित शिकायत पत्र दिया। लेकिन उसने इस पर कोई कार्यवाही नहीं की तो उसने एक और शिकायती पत्र तैयार किया और उसकी प्रतिलिपि राष्ट्रीय महिला आयोग नई दिल्ली, सामाजिक न्याय मंत्री, भारत सरकार नई दिल्ली ,अ .ज .अ बोकारो, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग नई दिल्ली, मानवाधिकार झारखंड, मुख्य अभियन्ता, उपमहा प्रबंधक, वरीय कार्मिक प्रबंधक आदि को भेज दिया। लोकतांत्रिक देश में राष्ट्रीय झंडे के सामने एक नारी को कोई इस तरह गाली न दे, इसकेलिए वह संघर्ष करने केलिए सामने आयी। नारी को अपनी अस्मिता के लिए आगे आना चाहिए। नारी पुरुष में कोई मुडभेड है तो पुरुष पुरुष का ही साथ देता है। सभी पुरुष अधिकारी रमिया को समझाने की कोशिश करता है लेकिन वह अपने निर्णय पर अडिग रहती है कि एस. के सिंह भरी सभा में माफी माँगे बिना वह मानने केलिए तैयार नहीं है। नारी संस्था और दलित संस्थाओं ने रमिया का साथ दिया। इस प्रकार पुरुष के साथ नारी की अस्मिता की लडाई बन गयी।

जब रमिया स्वयं नारी सम्मान केलिए आगे आयी तब सब की आँखें खुली। तब लोगों को लगा कि एक नारी के साथ अपमान हुआ है। उसने सब जगह शिकायत की प्रतिलिपि भेज दी, तब अधिकारी जोश पर आ गये। यही भारत का शाप है। हमेशा कहते है कि यहाँ नारी की पूजा होती है लेकिन यहाँ यही पूजा बिंब बिकती है और सरे आम उसका अपमान हो रहा है लेकिन उसे देखकर भी लोगों को यह अपमान ही नहीं लगता या वह इसकी ओर ध्यान ही नहीं देता।

नेता पासवान रमिया से बात की उसने नहीं मानी। मुख्य अभियंता के पास मीटिंग हो गया। यहाँ उसने कहा कि मैं ऐसे मानने केलिए तैयार नहीं है। एस .के सिंह दो बार उससे क्षमा माँगा। लेकिन अकेले में की इस क्षमा को उसने स्वीकार नहीं

किया। लेकिन बाद में घर और बाहर वालों की प्रेषर से उसने एस.के सिंह को माफी दी। क्योंकि अंबेडकर दर्शन पर विश्वास रखने वाली रमिया मानववाद को भी मानती थी।

3.4.9. संगठन

मिस रमिया में कावेरी ने नारी संगठन पर ज्यादा जोर दिया है। कायस्त रमिया और दलित रमिया की दोस्ती एक दूसरे को एक संगठन की ऊर्जा देती है। हमेशा ऐसा कहा जाता है कि दो नारी एक साथ नहीं रह सकती। भारतीय समाज द्वारा बनायी गयी इस धारणा को यह उपन्यास तोडता है। रमिया और शम्मी की दोस्ती और उससे उत्पन्न संगठन गाँव के रूप को ही बदल देता है। दलित संगठन का भाव उपन्यास के अंत में व्यापक रूप लेता है। अंत में शमी गाँव के विद्यालय में अंबेदकर जयंती मनाने केलिए तैयारी करती है। वह इस केलिए रमिया को मुख्य वक्ता के रूप में बुलाती है। इस कार्यक्रम का आयोजन और रमिया का भाषण दलित बच्चों और लोगों में नयी चेतना का संचार करके संगठित करने केलिए प्रेरणा देता है।

3.5. उधर के लोग (2008)

दलित को दलित बनाए रखने के सांस्कृतिक कारण बहुत हैं। लेकिन सालों की कोशिशों और संवैधैनिक प्रावधान के बाद भी दलित दलित बने रहने में कुछ कारण उनके अपने हैं। इसे ढूँढने और इसीके द्वारा अस्मिता की तलाश को नयी राह देने का प्रयास 'उधर के लोग' में किया गया है।

हमारी नामंजूरी के बावजूद भी जाति हमारी पहचान है। व्यक्ति जिस जाति में जन्मा है, मरने के बाद भी जाति उसका गर्दन नहीं छोडेती। जाति की यह पहचान

पीढियाँ भी वहन करती है। कभी कभी वह ऐसा भार बन जाता है कि जो उसके कंधा ढो नहीं पाता। इसे खतम करने की कोशिश दलित करते हैं। लेकिन अपने अंदर की जाति बोध को वह खतम कर नही पाता। पढे लिखे, नौकरी पेशा दलित भी जाति के पछडे से मुक्त नहीं है।

3.5.1. जागृति

आरक्षण को अंबेडकर ने दलित लोगों को ऊपर उठाने के माध्यम के रूप में प्रयोग किया है। दलितों को सभी मावनीय अधिकारों से वंचित रखा गया था। जानवरों की तरह माने जानेवाले एक जनता को मानवीय दर्जा दिलाना आसान काम नहीं है। डेढ़ हजार साल के शासन से आर्यों ने उनके अनुकूल एक दृढ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था बना ली। इसे तोडने के लिए उन्होंने आरक्षण की पद्धति अपनाई और इसे संविधान में नियम बनाकर रखा दिया।

सवर्ण जाति की देखा देखी दलित भी अपने बीच भेद भाव की भावना रखते है। इसे दूर करने केलिए अंबेडकर ने शिक्षित होकर संगठित करने केलिए कहा है। दलित शिक्षित हो गये है और अच्छी अच्छी नौकरियों में भी प्रवेश पाया है। लेकिन उसकी आपसी भेद भाव में गहराई से देखें तो अभी भी कुछ खास परिवर्तन नहीं आया है।आरक्षण का लाभ उठाकर आई.ए.एस, आई.पी.एस और कालिज प्रोफसर बनकर वे अपने समाज में मध्यवर्ग की नींव रख चुके हैं। यह सवर्णों की दुनिया में अजनबी और एकाकी महसूस करनेवाला, अपने आपको, अपनी पहचान को किसी खोल में छुपानेवाला वर्ग नहीं है, बल्कि इसने अपने मध्यम वर्ग की रचना कर ली है। यह दलितों की दूसरी पीढी है।इसके चिंतन के विषय, समाज से इनकी अपेक्षाएं पहले से बदली हुई हैं इनकी समस्या यह नहीं कि सवर्ण उससे घृणा करते हैं, उसे उसका हक नहीं देते। अब बहस का मुद्दा यह है कि स्वयं दलितों के भीतर

अल्पसंख्यकता और बहुसंख्यकता के आधार पर उभर आए विभिन्न दरारों का क्या किया जाय।

पढे लिखे लोगों में उभर रही संकरी सोच बन रहे एकता बोध को जल्दी मिटा देगा। सुशील सिविल सर्वीस परीक्षा पास होने के बाद दोस्तों को पार्टी दे रहा था। इसमें जाति की बात को लेकर जयंत और सुशील में तू-तू मैं मैं हो गया। वे दोनों अपनी अपनी जाति को श्रेष्ठ कहने लगे। इसके बाद सुशील अपने नये दोस्तों का परिचय दिया। जैसे ही उसने शुरू किया तब नया दोस्त अपना परिचय जाति के साथ दिया। जाति के भेद मिटाने केलिए रखी पार्टी अंत में जाति का प्रचारक बनी। यह दलितों की सबसे बडी त्रासदी है कि वह सवर्ण मानसिकता में पूरी तरह फँस गये है।

अंबेडकर ने दलितों से शिक्षित, संगठित और संघर्ष करने का आह्वान दिया है। दलित इन तीनों का ठीक रूप से निर्वाह करेगा तो दलितों का सम्मान अपने आप आ जाएगा। आज के जमाने में दलित बहुत पैमाने में शिक्षित तो हो रहे हैं। दलित अपनी अस्मिता केलिए संगठित होकर संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन संगठन में कमी दिखाई दे रही है। संगठन में भी वह अपनी जाति का परिचय देते हैं या परिचय पाने केलिए उतावले होते हैं। सब जाति व्यवस्था के खिलाफ है दलितों के लिए कैंप लगा रहे हैं, दलित जातियों को एक समूह में बदलना चाहते हैं फिर भी जब एक दलित से परिचित होतो है, तब अनजाने में ही उसके मन में यह इच्छा जागृत होते है कि उसकी जाति क्या है। इस सोच से सबसे पहले दलितों को बचना चाहिए। अपने मन के जातीय बोध से जब तब दलित मुक्त नहीं हो जाएगा तब तक वह अपनी अस्मिता की तलाश करता रहेगा, भटकता रहेगा। सालों ढूढने पर भी कुछ हाथ नहीं आएगा।

3.5.2. शिक्षा

हाशियेकृतों को अपने आप की पहचान स्थाई बनाने केलिए शिक्षा बहुत आवश्यक है। शिक्षा दासता से मुक्ति देती है। इस उपन्यास के सभी पात्र शिक्षित है। पन्ना कालिज लक्चर है, जयंत कलक्टर, सुशील आई .पी. एस अधिकारी और संगीता डाक्टर है। इस उपन्यास के मूल ही शिक्षित दलितों की चेतना और उनकी अस्मिता की तलाश है। नारी को हर हाल में शिक्षित होना ही चाहिए। परावलंबी होने के कारण हमेशा उसे अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों को सहनी पडती है।दलित और नारी को अपने आत्मसम्मान पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। उसे किसी के सामने समर्पण करने की जरूरत नहीं है।

3.5.3. पुश्तैनी धंधों का विरोध

दलितों पर हमला और उसके अधिकारों को छीनने की बात आज भी खुले आम चल रही है। देश के सार्वजनिक जगहों को स्वच्छ बनाए रखना देश की इज्जत का सवाल है। लेकिन स्वच्छता के काम करनेवालों को किसी अन्य कामों की तरह सम्मान देने केलिए भारतीय सामाजिक नियम तैयार नहीं है। इसलिए दलित इन जातीय कामों को छोडकर शिक्षा प्राप्त करके नयी नौकरी अपनाना चाहते है, ताकि इससे उसकी जातीय कंलक मिट जाए। लेकिन मौका मिलते ही सवर्ण उसपर उनका जातीय काम थोपता है। सुशील वाल्मीकि जाति का है। उसके पिता नगर निगम में कर्मचारी है। एक बार सीवर साफ करते हुए उस की मौत हो गयी। तब उसकी नौकरी अनुकंपा के आधार पर माँ को मिल गयी। दसवीं पास माँ को सड़क पर झाड़ू लगाने का काम देने केलिए ही अधिकारी लोग तैयार है। लेकिन वह इस काम लेने केलिए तैयार नहीं हुई। शहर को साफ करके वह खुद पर गंदगी पुतवाना नहीं चाहती थी। वह

कहती है - " जब काम की वजह से ही हमें गंदा समझा जाता है तो हम ऐसे काम क्यों करें। "[21]

साधारणतया नौकरी देते वक्त व्यक्ति की योग्यता को नज़र में रख कर नौकरी देते हैं। परन्तु दलित के मामले में योग्यता कोई भी नहीं देखता। दलित है तो उसकी परंपरागत नौकरी ही उसे देते हैं। पन्ना के पिता और कुछ लोग मिलकर लगातार भाग दौड़ करने के बाद ही उसे नगर निगम में वाटर वुमन की नौकरी मिली। इसका नतीजा यह हुआ है कि उसने अपने दोनों लडकों को अच्छी शिक्षा दिलाई। सतीश सिविल सर्वीस पास करके देश के सर्वोच्य सेवा में चुन लिया गया।ऐसा कहा जाता है कि नारी शिक्षित होने से पूरा घर प्रकाशमय बन जाएगा। यह शत प्रतिशत सच है।

3.5.4. संगठन

संगठन और संघर्ष के नये रूप इस उपन्यास में मिलते हैं। शिक्षित दलितों का संगठन दूसरे उपन्यासों में दिखाया है। लेकिन इस उपन्यास में शिक्षित द्वारा दलित गरीब दलितों की सहायता केलिए संगठित संस्था बनाने की बात कही है। शिक्षित होकर नौकरी पाने के बाद दलित शिक्षित लोगों में ही घूमता रहता है। अपनी जाति के गरीब लोगों की ओर देखता ही नहीं है। मित्रमंडल के संश्रय से दलित लोगों की अस्मिता केलिए एक नई तरह की कोशिश उभर कर आयी।हर शहर के बाहर शहर केलिए काम करनेवाले लोगों की बस्ती है।वहाँ के अधिकतर लोग दलित है।

गरीबी और असुविधा दलितों के पिछडेपन के कारण हैं। इन गरीबों के जीवन में परिवर्तन लाने केलिए मीटिंग की नहीं आक्टिंग की जरूरत है।पन्ना, सुशील, जयंत ने संघमित्र नामक एक गैर सरकारी संस्था का पंजीकरण करवाया। शहर के फॉरस्ट लैंट में सात सौ सैंतालिस परिवारों की बस्ती थी।बस्तिवालों को जगह का मालिकाना

हक नहीं था। यहाँ पानी की समस्या थी।लोगों में एक लक्ष्य बोध नहीं था। शराब की लत थी, एक दिन काम पर जाएँगे तो तीन दिन खाली, ताश खेलते रहेंगे। अभावों के दबावों में पडकर वे बिलकुल निकम्मे हो गये हैं।

वहाँ के बच्चे प्राथमिक स्कूल में भी नहीं जाते। क्योंकि माता पिता दोनों मज़ूदूरी पर जाते हैं तो छोटे बाच्चों की देखभाल केलिए बडे बच्चे रह जाते हैं। इस बस्ती की इन समस्याओं का हल करके उन्हें मुख्यधारा में लाने केलिए वे प्रयत्न करने लगे। केलिए वह प्राथमिक चिकित्सालय और शिशुगृह बनाने का निर्णय लिया। पानी की व्यवस्था थोडे दिन में ही की गई।

3.5.5. अंतर्जातीय झगडों से मुक्ति

दलित जाति के सीमित दायरे से मुक्त होकर एक प्रतिष्ठित वर्ग के रूप में खडे होना चाहते है। इसकेलिए सब मौका मिलते ही पार्टियाँ आदि करते हैं। लेकिन कुछ ही देर उसकी सोच जाति में सीमित हो जाती हैं। जिसे भी वे परिचित होते है, उसकी बातों से जाति खोज निकालते है। जब तक जाति की जानकारी नहीं मिलती मन शांत नहीं होता।

आरक्षण बात लेकर दलितों में हमेशा खींचा तानी होती रहती है। आरक्षण को दलित अपना अधिकार मानते हैं।सुशील यह रोना रोते रहते है कि सभी आरक्षण पर चमारों ने कब्जा कर लिया हे। अंबेडकर ने आरक्षण को दलितों को अवसर दिलाने केलिए रखा था।सभी क्षेत्र में दलितों को प्रवेश दिलाने का मार्ग ही माना था। लेकिन अब इससे दलितों में मुठ भेंड का कारण बन गया है। सुशील हर समय ताना मारकर रहता है कि सारा का सारा आरक्षण चमार खा गए है। अब एस.सी का मतलब है सिर्फ चमार। तब जयंत ने पलटवार किया कि तुम उसे सिर्फ चूहडा बना देना चाहते है। अब दलित आरक्षण के पीछे दौडने लगा है।

पढे लिखे होने के बावजूद भी जाति के मामले में दलित अपने आप को इनसेक्युअर महसूस कर रहे हैं। सुशील वाल्मीकि है। वह हमेशा अपनी जाति को छोटा मानता और दूसरे को बडा। इसलिए वह सभी जाति के लोगों को अपना विरोधी मानता है। मौका मिलते ही उस पर फब्तियाँ कसता है। सुशील हमेशा यह शिकायत करता रहता है कि जाटव वाल्मीकियों से छुआछूत करते हैं। वे छिपे हुए ब्राह्मण सोचवाले हैं। इसका विरोध करते हुए जयंत कहता है कि - "दस-बीस नहीं, दसियों लाख लोग है जिनके दिलों में वाल्मीकियों के प्रति प्यार है, बराबरी है। पर वल्मीकि खुद असुरक्षा - बोध, अपमानबोध और हीनता बोध से पीड़ित है। इसका इलाज उन्हें खुद करना पडेगा।"[22] दलितों को अपने बीच ही अस्मिता की खोज करना पड रहा है। भारत की सामाजिक नीति की पैठ बहुत गहरी है। दलितों को अस्मित के संगठित होकर मेल मिलाप से आपसी संबंध को दृढ़ बनाना चाहिए।

3.5.6. नारी अस्मिता

परिवार की सफलता के लिए नारी और पुरुष दोनों जिम्मेदार है। पन्ना कालेज में अध्यापक है। वह दलित है। वह कालिज की एक ब्राहण कन्या से प्रेम करके शादी करता है। प्यार भरे जीवन में थोडी थोडी परेशानियाँ आती है। पन्ना उसे लेकर अलग घर में रहने लगता है। वह हमेशा चाहती है कि पति उसके साथ ही रहे। एक दिन वह आत्महत्या करती है। इस बात को छुपा कर परिवारवाले उसकी शादी संगीता से कराते हैं। पन्ना भी पहली शादी और उसकी मौत के बारे में उससे कुछ नहीं कहता। जब वह यह जानती है तो उसे धक्का सा लगता है। शादी के मामले में नारी हमेशा ठगा दिया जाता है। इसका कारण यह है कि शादी के बाद धोखे के बारे में जानने पर भी नारी इसे सह लेती है। लेकिन यही धोखा पुरुष के साथ होता है तो वह उसे तलाक देते हैं। फँदा पडने पर नारी जिंदगी भर उसे पकडती

रहती है। लेकिन संगीता अपने साथ हुए इस धोखे को सहने केलिए वह तैयार नहीं होती। वह घर छोडकर चली जाती है और हॉस्टल में रहने लगती है।

3.5.7. नयी सोच

नारी के संबध में अनेक लोकोक्तियाँ और मुरहावरे प्रचलित हैं। इसमें एक भी नारी की एकता संबंधी नहीं है। उसी प्रकार समाज में सब कहीं नारी की अनबन की कहानी ही प्रचलित है। इसके विपरीत इस उपन्यास में नारी संबंधी एक नयी सोच प्रस्तुत है। इस उपन्यास के सभी नारी पात्र एक दूसरे का साथ देती है,एक दूसरे की इज्जत करती है। आईशा एक हाईक्लास वेश्या है। वह पन्ना से प्यार करती है। लेकिन जब उको से मालूम होता है कि वह शादी शुदा है, पत्नी से अलग रहता है तो वह उन्हें मिलाने की कोशिश करती है। संगीता अपने पति को दूसरी नारी के साथ देखकर नहीं जलती है। वह यही सोचती है कि अगर पति इससे खुश है तो खुशी से रहने दे। इसलिए वह जब भी आईशा से मिलती है सभ्यता के साथ मिलती है।उसके साथ चीना चपटी और गाली गलौच नहीं करती।

उपन्यास की अन्य प्रमुख नारी पात्र है संगीता की सास।इसमें सास बहू के झगडे नहीं है। अपनी बहु की पूरी की पूरी साथ देनेवाली सास मुख्यधारा साहित्य के सास से बिलकुल भिन्न है। इनके आपसी रिश्ते भी। पहली शादी की खबर चुपाने के कारण पन्ना का साथ तोडनेवाली संगीता को सास कभी दोष नहीं देती। बल्कि यह उम्मीद रखती है कि वह एक न एक दिन वापस आएगी। संगीता पन्ना से अलग है, फिर भी वह परिवार में जब भी कोई बात आती है चाहे वह अच्छी हो या बुरी सबसे पहले संगीता ही आती है। वह अलग रहकर भी हमेशा सास के पास ही रहती है। यह रिश्ता बेमिसाल है, जो कहीं नहीं मिलते।

3.6. थमेगा नहीं विद्रोह (2009)

इस उपन्यास में दलितों की अस्मिता की तलाश का व्यापक फलक मिलता है। इसमें भंगियों और जाटवों की अस्मिता तलाश के साथ साथ नारी की अस्मिता की झांकी भी मिलती है।उत्तर भारत के दलित आंदोलन में आग्रा आंदोलन का विशेष महत्व है। जातीय आंदोलन और संस्कृतीकरण से शुरू होकर इसने समाज में अपनी पहचान बनाई। यह दलित आंदोलन के शानदार इतिहास का एक रोचक अध्याय है। इस आग्रा आंदोलन ने पूरे जाटव जाति को प्रभावित किया। कोलंबिया विश्व विद्यालय के शोधार्थी ओवन .एम.लिंच ने आग्रा के जाटवों के संबध में अस्पृश्यता की राजनाति नामक शोध प्रबंध लिखा। उन्होंने 1963-64 के दौरान यहाँ आकर फील्ड वर्क भी किया। इस आंदोलन का प्रभाव थमेगा नहीं विद्रोह में स्पष्ट दीखता है।

3.6.1. जागृति

दलितों को अपनी अस्मिता की पहचान केलिए जागृत होना चाहिए। हमारे साथ ही ऐसे क्यों होता है,इसकी चिंता किए बिना दलित सवर्ण नेताओं की बातों को यूँ ही निगलना नहीं चाहिए। भारत के अधिकांश नेता सवर्ण वर्गों से आये हुए है। इसलिये वह सनातन हिंदू धर्म के वक्ता रहे।सामाजिक संस्कृति में कोई परिवर्तन लाना वे नहीं चाहते।

साढे तीन सौ साल पहले आर्यों द्वारा बनाई गयी गुलामी अनार्यों में एक मानसिक गुलामी या एक लत के रूप में समा गयी है। सवर्ण सेवा की यह लत दलितों की अस्मिता बोध को उठने नहीं देता। आजादी के पहले के जमाने के भंगियों का जीवन बहुत ही घृणात्मक था। उन दिनों आज के समान समाज में फिलैस की लैटरीन नहीं थी। घर के एक कोने में ही पखाने केलिए छोटी सी एक घट्टी बना लेते

थे। मालिक का पूरा परिवार जब उसे भर देता था मेहतरानी आकर उस गंदगी को कनस्तरों में भर कर शहर से बाहर फेंक आती थी। कनस्तरों का चलन अंग्रेजों के समय आया था उसके पहले बाँस अथवा टहनियों के टोकरों में भर कर जब मेहत्तर चलता था तो गू उसमें से टपकता जाता था। भंगी जाति की औरतें पखाना साफ करने का काम करती थी। इसलिए उसके शरीर में यह गंध हमेशा रहती थी। खुशबू वाले साबुन से नहाने पर भी यह गंध उसके शरीर से जाती नहीं थी। असल में यही उसके दूर रखने का कारण है। यह काम एक जाति को देने से पूरी जाति समाज में घृणित मानी गयी।

दलित जाति के लोगों में हिंदू धर्म और वर्ण व्यवस्था के प्रति एक समर्पण की मानसिकता है। यह अधनिता उनके मन में ऐसे घर गयी है कि वे इसे भग्वान का नियम मानते हैं। वे यही सोचते हैं कि सवर्ण ऊँच जाति का है। परमात्मा ने उन्हें ऊँचा और मेहतरों को नीचा बनाया है। दलितों को इस मानसिकता से मुक्त होना चाहिए। इस एहसास ने ही सवर्णों को लंबे साल तक दलितों के शोषण करने का अधिकार देता रहा। इस शोषण से जागृत चावली के पिता इसका विरोध करता रहा। बिरादरी से बहिष्कृत और पत्नी द्वारा उपेक्षित होने पर भी वह अपने निर्णय पर अटल रहा।

शिक्षा से दूर रखे गये दलितों को गुजारा करने केलिए जातीय कामों के अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इसलिए हर एक जाति अपने लिए दिये गये कामों को अपना धरोहर मानते थे। स्वतंत्रता के पहले के जमाने में वे अपनी जाति के कामों को छोडकर अन्य किसी काम के बारे में सोच भी नहीं सकते थे। कभी कभी किसी लोगों में यह एक लत के समान आदत बन जाते है कि वह यह काम किये

बिना सो नहीं पाता। चावली की माँ ऐसे दलितों की प्रतिनिधि है, जो पुश्तैनी धंधे को ही जीवन समझते है।

3.6.2. गाँधीवाद पर प्रहार

दलितों को दलित बनाए रखने की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में है। साथ ही साथ समाज के नेता लोग भी इसे बनाए रखने की कोशिश करता ही रहता था। सवर्णों के दलित उद्धार पर विचार के उसका पोल खोलकर कटु आलोचना की है। गाँधीजी के हरिजन शब्द में दलितों में कुछ अपनी अस्मिता ढूँढता रहा था। गाँधीजी के दलितोद्धेर पर दलित विश्वास नहीं रखते। महात्मा गाँधी के अनुसार सब हिंदू भाई भाई है। लेकिन यही कहते थे कि सामाजिक व्यवस्था के अनुसार दिये गये कामों को कोई न छोडे। उसमें कितनी भी अवमानना या कष्ट उठाने पडे उसे करते रहना चाहिए। भंगी मैला कमाता रहें,जाटव केवल सेवा करते रहें, ऊँची जाति उन्हें सेवा कराते रहें। उन्होंने ऊँच नीच बनाये रखना चाहा। गाँधीजी ने भी आर्यों की उच्चता बनाए रखने की कोशिश ही की है। चाहे इसकेलिए कितना भी सफाई दे इसके मूल में यही है। चावली कहती है कि छुआछूत को भगाना उनकी कार्यसूची में दिखावे केलिए था। वे सब मेहतरों को समाज सेवा के कार्य में बाँधे रहने का आह्वान ही दिया। समाज में सभी काम करने केलिए लोग चाहिए। यह सही बात है। इसकेलिए एक वर्ग को आरक्षित करके रखने की जरूरत नहीं है। देश की स्वच्छता और सफाई सरकार का काम है। इसलिए इसे एक नौकरी के रूप में रख दिया जाय तो इसे करने केलिए हज़ारों लोग लाईन में खडे हो जाएँगे। इस पर लगी जाति का धब्बा भी मिट जाएगा। लेकिन इस प्रकार आरक्षित करके रखने का फैदा आर्यों को मिलते है। उन्हें मुफ्त में काम करवाने केलिए सेवक वृंद मिल जाएगा। इससे उसे आराम की जिंदगी मिलेगी और साथ में आर्थिक लाभ भी। इस लिए सवर्ण समाज के

समाज सुधारक की तरफ से इस ओर कोई ठोस कदम इस ओर अभी तक नहीं किया है। गाँधीजी भी इसका अपवाद नहीं है।

चावली की माँ महात्मागाँधी की अनुयायी है।वह सेवा का काम छोडना ही नहीं चाहती थी। चावली के पिता गाँधीवाद का विरोध करते हुए कहता है कि - " ऐसा महात्मा कौन है, जो हमारे लिए सेवा का कार्य बाँध रहा है और अपने और अपने जात केलिए सेवा कराने का आर्यसमाज कहता है कि सब मनुष्य समान हैं,बराबर हैं।"[23]

3.6.3. संघर्ष

दलितों पर हो रहे अन्याय और अत्याचार के खिलाफ दलितों ने संघर्ष किया है। ऐसे बहुत सारे संघर्ष इतिहास में जगह भी पा लिया है। भारतीय सामाजिक नीति के अनुसार अवर्णो को धरती के किसी भी चीज़ पर कोई अधिकार नहीं है। सवर्ण उसके सभी चीजों पर हक जताते आये हैं। विरोध करने पर वे अवर्णों को मार कर भगा देते हैं। दरियापुर सवर्ण गूजर, अवर्ण जाटवों के कुएँ पर कब्जा किया। जाटवों को कुएं से पानी भरने से रोक दिया गया।चौबीस घंटों में गूजर लाठी, बल्लम लेकर कुएँ पर पहरा दिया। जाटवों की बहू- बेटियों की मटकों को फोड़कर भगा दिया। इस के स्वामित्व को लेकर गूजर और जाटवों में काफी खून खराबा और मुकदमे बाजी शुरू हुई। यह जाटवों केलिए उसकी अस्मिता की लडाई थी।

जाटवों का एक प्रतिनिधि मंडल गूजरों के मुहल्ले के असरदार तथा किसी सीमा तक जाटवों से सहानुभूति रखनेवाला गूजर चंदा के पास गये। लेकिन चंदा ने जोरदार शब्दों में यही कहा कि गूजर मालिक है और जाटव प्रजा। पानी का मामला होने के कारण जाटव पुनः गूजर के पास गये। गूजर के बारह - चौदह साल के लडके ने जाटवों के सबसे बुजुर्ग और सम्मानित मथुरा को जूतों से मारा। विरोध करने का

साहस उनमें नहीं था इसलिए मुकन्ने की गंदा पानी का बंदोबस्त किया। लेकिन जाटवाडा के बच्चों के गिरोह ने सुनियोजित प्रकार से रात भर कुएँ पर पहरा दे रहे गूजरों पर ढेले फेंक कर मारे। यह एक खमासान लडाई की शुरुआत थी।

इसकी प्रतिक्रिया में सुबह होते ही जटवाडे के कई बुजुर्गों को गूजरों न पकडकर मँगवाया और जूतों से पीटा। लाठी गोला लगाकर तपती धूप में घंटों डाले रखा। पहले जाटवों को अपने बच्चों पर गुस्सा आया। लेकिन कुएँ के विषय में बच्चों के कुकृत्य ने कुआं की समस्या को हल करने की प्रेरणा जाटवों को दी।

गूजरों से लडने केलिए पंचायत में योजना बनायी। सब लोगों ने यह शपथ लिया कि परिणाम जो भी हो, मथुरा के द्वारा दिये गये गए आदेशों को कोई उल्लंघन नहीं करेगा। लडाई जीने मरने के स्तर तक पहूंचने के कारण बहु बेटियों को रिश्तेदारों के घर भेज दिया गया। थाने में रपट लिख लिया और कचहरी में भी केस फायल किया। कुआँ के ऊपर जाटवों के संपूर्ण स्वामित्व के अलावा अन्य कोई विचार भी आज के बाद उनके मन में न आने का शपथ भी लिया। सदियों से पद दलित जाटवें को गूजरों ने ही अनजाने में एक जुट होने का साहस और लड़ मरने का मूल मंत्र दे दिया। कारण, अकारण गूजरों द्वारा जाटवों का अपमानित होना, पिटना अत्यन्त मामूली घटना बन गयी थी। लेकिन जाटवों का पलटकर वार करना यह गूजरों केलिए एक अनहोनी घटना थी। जाटव थाने कचहरी तक जाने की हिम्मत ही जुटाना कम बात नहीं थी। इसलिए प्रतिक्रिया के रूप में गूजरों ने जाटवों के जंगल पानी की व्यवस्था पर प्रतिबंध लगाया।

जाटव गूजरों के खेत में शौच्य करने केलिए जाते थे। गूजरों ने खेत में पहरा रख दिया। अगले दिन सुबह खेत में जंगल पानी केलिए गई औरतों को गूजरों ने भद्दे इशारा और गालियाँ देकर भगा दिया। पंचायत हुआ। मथुरा ने जाटवों की प्रतिक्रया

स्वरूप यह फैसला सुनाया कि -" गूजरों के पास खेत हैं, लेकिन उन खेडोसे पहूँचने केलिए रास्ता जाटवाडे से है। हम भी सिर पर तये बाँध कर और लाठी लेकर खडे हो जाएँगे।"[24] इस प्रकार गूजरों के मार सहकर रहनेवाले जाटव उससे होड़ लेनेवाला बन गया। जाटवों को शौच्य करने केलिए गांव के पास के जंगल के इस्तेमाल करने का निश्चय किया।

फैसला अभी अमल करने का निश्चय किया गाया। जल्द ही लगभग सारे जाटव के सभी बच्चे बूढों ने चूल्हे से उतार कर तवों को सिर पर बाँधकर लाठियाँ लेकर गूजरों के खेतों तक जानेवाला रास्ता बंध किया। गली को घेर लिया।गूजरों ने पहले गाली दी। मथुरा ने बडी विनम्रता के साथ उनसे कहा कि आप अपनी संपत्ति खेतों पर हम लोगों का गुज़रना बंद किया। यह हमारी संपत्ति है। इस पर हमारा अधिकार है। सोलह साल का एक गूजर लडका आकर मथुरा की माँ को गाली दी और उसके मुँह पर एक थप्पड जड दिया।जाटवों ने इसका सशक्त विरोध किया । ज्यादा लोगों को ले आने की धमकी देकर गूजर चले गये।फनफनाये हुए गूजरों से हुए इस गुत्थम गुत्था, धौलधप्पा, मुक्का थप्पड में अचानक जाटवों को एक अवर्णनीय रोंमांच का अनुभव हुआ। वे गूजरों के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। गूजरों के आते ही फिर से लडाई शुरू हुई। दोनों ओर से लोग घायल हुए।गूजरों में कुछ लोग सिर फुड़ाकर और लहलुहान होकर अपने मुहल्ले को भाग गये। जाटवो ने पहली बार विजेता न होकर भी कम से कम बराबर होने का सुख चखा। इस संघर्ष ने दलितों के अस्मिता बोध की स्थापना की।

हैथ पंप लगा कर पानी की समस्या का हल किया।फिर भी वे मुकदमा ज़ारी रखा।अंत में न्यायालय ने उसे कुएँ का अधिकार जाटवों को देते हुए प्रस्ताव

आया।इस प्रकार जाटवों ने गूजरों के अधीक्षण को तोड़कर अपनी अस्मिता की पुनः स्थापना की।

3.6.4. पुनर्जन्म का विरोध

जाटवाडे कुएँ की स्वामित्व को लेकर जब गूजर और जाटवों में घमासान हो रहे थे,ऐसे समय में अचानक तुले भरी पंचायत में ऐलान कर दिया कि हमें न तो ईसा बचा सकता है,न आर्य समाजी,हमें सिर्फ हमारा धर्म या भक्ति ही बचा सकता है।पिछले जन्मों के पापों का फल जाटव भुगत रहे है।जब सज़ा पूरी होगी तब सब ठीक हो जाएगा।जाटव हिंदु होते हुए भी हिंदू धर्म के दलित विरोधी तत्वों को मानने केलिए तैयार नहीं थे। दलित को दलित बनाए रखने की,उसकी अस्मिता को कुचलनेवाली हिंदू धर्म के सिद्धान्तों पर प्रहार करते हुए जयचंद ने कहा " कुकर्म और सुकर्म, पाप और पुण्य के फलस्वरूप अनेकानेक पुनर्जन्मों में भ्रमण का दंड पाने की बात तो तब उठे यदि ब्रह्मा ने समस्त मानवों को एक ही अंग से तथा एक जैसा उत्पन्न किया होता है। विकल्प दिया होता कि सुकर्म करो तो जन्म की आवश्यकता नहीं, बुरे कर्म किये तो पाप के अनुसार भंगी चमार इत्यादि बनो।" [25]

3.6.5. एकल विरोध

दलितों के अस्मिता संघर्ष का नया रूप तुले राम ने दिया। तुले जाटव और गूजरों के विरोध में अपने लिए एक मंदिर ही बना लिया। गूजरों के सम्मुख जाटवों की अस्मिता केलिए तुलेराम का एकल विद्रोह बहुत काम आया है। जाटवाडे की लडकियों को प्रारंभिक और उच्च शिक्षा देने केलिए उसका यही कृत्य प्रेरणा बनी।

मंदिर में तुले का बहुत सारा धन खर्च होगा इसे समझाने की कोशिश गाँववालों ने की। क्योंकि जाटवाडे के अधिकांश घरों में गूजरों के द्वारा बहिष्कार के

बावजूद उसने घर के पास ही मंदिर बनाया। उसकी पत्नी बेटे सब इसका विरोध किया। जात,पूजा,रोज़ा,भोज सभी में हजारों रुपये खर्च हो गये। वह जमीन के मालिक से मज़दूर बन गये। फिर भी उसने सवर्णों मंदिर के समान एक मंदिर बनाकर ही चैन लिया।

3.6.6. संगठन

दलितों को पिछडेपन से मुक्ति संघर्ष से ही मिलेगी। दलितों को कुशल चालाक संगठन कर्ता की जरूरत है जो उसे संगठित कर उसके और समय समय पर हौसला देकर उसे सक्रिय बनाये। संपूर्ण दलित समाज केलिए एक या दो संगठन कर्ता नहीं बल्कि एक एक गली या गाँव से मथुरा जैसे स्वाभिमानी संगठन कर्ता आना चाहिए। वह न तो सरपंज थे याकोई नेता। गूजर जाटवों के कुआ पर कब्जा करने पर गांव के एक बुज़ुर्ग व्यक्ति के रूप में वह जाटवों से मिलने गया। लेकिन परिस्थितियां बदलने पर उसने क्रांति का मशाल उठाया। दसोंदी की मौत से हताश जाटवाडे के लोगों को सक्रिय बनाते हुए मथुरा ने कहा - " अब अंजल मंजल करो दसोंदी की। रोने केलिए तो पूरी जिंदगी पडी हुई है। मुहल्ले के दस आदमी थाने में बंध पडे हैं, उन्हें भी छुडाना है। कुआँ के साथ अब एक और मुकदमा भी भुगतना होगा। उठो बहुत हुआ रोना धोना। गूजरों से जंग ठानी है तो और कई ऐसे दृश्य देखने होंगे। "[26]

गूजर, जाटवों को अकारण ही पकड कर मारते थे उनकी बहु बेटियों के इज्जद लूटते थे। इसे कोई असाधारण घटना कोई नहीं मानते थे क्योंकि यह भारत में साधारण सी घटना थी। भारत की सामाजिक व्यवस्था ऐसी ही थी। पानी की लडाई ने पहली बार जाटवों की अस्मिता को जगा दिया। मथुरा ने सालों की तिरस्कार और गुलामी की चुभन आगे न सहने का निर्णय लिया। दसोंदी की मृत्यु पर दुखी होकर

गूजरों से समझौता करने की सलाह देनेवाले सूका से मथुरा कहता है- "तो मेरे ससुरो सब मरो, गूजरों के जूते चाटकर मरो, जोहड तालाब का पानी पीकर मरो, अपनी बहु बेटियों की इज्जद लुटाकर मरो। मेरी उमर सत्तर साल का है, जितनी जीनी थी जी चुका। मैं लडूँगा अकेले इस गूजर राकछस से, इस उमर में भी लडूँगा। बड जाओ सब अपने लुगाइन के घाघरे में। मर जाऊँ तो मेरी ल्हास बी ले दीजों चीवाणेन में।"[27]

'एन आईडिया कान चेंज युवर लाईफ' की तरह मथुरा की हिम्मत ने जाटवों के अस्मिता बोध को ही जगा दिया। उन्होंने बिखरे गूजरों संगठित करके एक फौज बनाया जाटवों को लाश को सडक से ले जाने का अधिकार नहीं था। जाटव अपने मुर्दों को गाँव के बाहर बाहर नहरवाले रास्ते से लेकर जाते थे। दसोंदी की अर्थी गूजरों के घर के सामने राम राम सत्त कहता हुआ सडक पर रखकर खडे हो गये। इस अनहोनी घटना को देखकर गूजर हतप्रभ हो गए। जाटव गूजरों के आक्रमण केलिए भी तैयार थे। शमशान से लौटते वक्त भी जाटवों ने एक बार फिर सडक पर बैठकर अपनी हिमाकत और दृष्टता गूजरों को दिखाई।

मथुरा जंगल पानी की समस्या का समाधान कोर्ट कचहरी द्‌वारा ही करना चाहता था इसलिए उसने एक नयी योजना बनाई। जंगल पानी करने केलिए गूजरों के खेतों में जाने का आदेश दिया। गूजर इसका विरोध करेंगे तो केस बन जाएँगे और जिस प्रकार पानी का हल हुआ है उसी प्रकार जंगल पानी की समस्या का भी स्थाई हल निकलेगा। दूसरे दिन ही जाटव लाठी बल्लम लेकर जाटव, गूजरों के खेतों में जंगल पानी करने केलिए जाने लगा। लेकिन गूजरों ने इसका विरोध नहीं किया। थोडे दिन बाद चंदा गूजर के यहाँ एक विशाल पंचायत जुटी इसमें गूजरों जाटवों के साथ समझौता किया। उन्होंने जाटवों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि जाटव पुलिस केस वापस ले लेंगे तो, गूजरों के खेतों पर लगाये गये बहिष्कार समाप्त किया जाएगा

जाटवों का कुँआ जाटवों को ही दिया जाएगा और किसी जाटव को जबरन गूजरों के खेतों में मज़दूरी केलिए मज़बूर नहीं किया जाएगा।

3.6.7. आत्मसम्मान की भावना

रोटी की चिंता और स्वाभिमान की चिंता से दलित धर्मपरिवर्तन के बारे में सोचने लगे। दलित बहुत अधिक संख्या में ईसाई धर्म में परिवर्तित होने लगो तो भारतीय सवर्ण हिंदू सोच में पड गये। इसके नतीजा यह हुआ कि भारत में एक सांस्कृतिक नवजागरण युग आ गया। क्योंकि भारत की आबादी में सिर्फ 15 प्रतिशत ही सवर्ण है। दलित 50 प्रतिशत है। इसके दौरान आर्य समाज का आगमन हुआ। 1875 में इसकी स्थापना हुई। शक्ति उन लोगों के पास होती है जो जनसंख्या में बहुसंख्यक होते हैं। लेकिन यहाँ शक्ति अल्पसंख्यों में ही सीमित रहा, चाहे वह आर्य हो या अंग्रेज़।

चावली के पिता आर्यसमाज के रहन सहन और भाषण से पूरी तरह प्रभावित हुआ। आर्य समाज द्वारा वह अपने परिवार का उद्दार करना चाहता था। आर्य समाज सभी को बराबर मानते थे। सवर्ण समाज दलितों पर सेवा कार्य थोपकर, उसे गंदगी में रख कर अपने ही नज़र में छोटा बना दिया था। स्वच्छता के साथ आत्मविश्वास जुडा रहता है। आर्य समाज में शामिल होने के बाद पिता स्वच्छता पर ज्यादा ध्यान देने लगा। वह सुबह नहा धोकर ही सारा काम करता। उसने यह महसूस किया था कि ऊँचे समझे जाने वाले लोगों में दिखाई देनेवाली स्वच्छता उनके मान सम्मान का एक कारण है। आर्यसमाज के प्रभाव के कारण वह अपने घर और अपने आप को हमेशा साफ रखने की कोशिश करता था। वह सडक साफ करने का काम करते थे। वह सुबह नहाकर काम पर जाते थे। लौटकर नहाते थे। फिर में हवन पूजा करके घर

में एक स्वच्छ वातावरण पैदा करते थे। जिस वातावरण में बच्चा पलते है उसी का प्रभाव होता है। इस लिए चावली में भी यह आदत लग गयी।

अच्छी आर्थिक स्थिति और बेहतर जीवन लोगों में आत्मविशवास पैदा कर देगा। लेकिन दलितों को उनके काम केलिए वेतन भी नहीं मिलता था। उसके काम को भारतीय संस्कृति में सेवा का दर्जा दिया है। गू मूत की कमाई केलिए वह कैथों के घर के सामने उनके दरवाजे पर, सडक पर गंदगी में अपनी दीनता हीनता दर्शाती उनके द्‌वारा रोटी दिये जाने की प्रतीक्षा में बैठा करते थे। चावली के पिता खडेचू हमेशा पत्नी से कहा करते थे कि - "मैला साफ करके हमें अपनी मेहनत का फल प्राप्त करने का अधिकार है, उसे हमें देकर कोई हम पर उपकार नहीं करता। इसलिए गृहस्वामी का इसप्रकार हमें अपमानित करके और मानो हमारे ऊपर एहसान करके प्रतिदिन दो रोटी देने की आवश्यकता नहीं है और यदि इसप्रकार वे दें तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए।"[28]

3.6.8. धर्मांतरण

दलितों को दलितपन से मुक्ति कहीं से नहीं मिलेगा। धर्म परिवर्तन से सिर्फ झोला ही बदलता है,उसका सामाजिक सम्मान वहीं का वहीं रह जाता है। अंतर बस इतना है कि दूसरे धर्म में यह सिर्फ एक काम है एक जाति का प्रतीक नहीं है।जिसके आधार पर उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है।

आर्यसमाज द्‌वारा अस्मिता की खोज करने वाला पिता अंत में दोहरी नीति से मार खाकर आर्य समाज छोड देता है। उच्च दर्शनों की बात करनेवालों बातों में ही बडे होते हैं असल में वह केवल पुरुष ही है, मौका पाकर नारी पर झपड पडनेवाला पुरुष। आर्य समाज और वहाँ के लोगों की इंसानियत की बडी बडी बातों पर प्रभावित होकर खडेचु अपना जीवन भी उनके आचरण के अनुसार बदल दिया। पुरखों के काम

छोडने कारण उसे इस काम को अपना सब कुछ मानने वाले मेहतरों की जाति से ही निष्कासित किया गया था। लेकिन खडेचू इसकी परवाह ही नहीं किया। उसकी पत्नी तक उसका दुश्मन बन गयी।पति और पत्नि में हमेशा झगड़ा होता था। एक दिन पत्नी ही उसे छोड़कर चली गयी।

पत्नी के छोड़कर जाने से वह दुखी नहीं होता। वह अकेले बेटी का पालन भी करता है। बडे होने पर वह बेटी को भी आर्यसमाज ले जाने लगे। एक दिन अकेले में मौका पाकर आर्य समाज के महाशय ने उसकी बेटी से बलात्कार किया। दलित नारी पर किया गया हमला सवर्णों केलिए अपराध नहीं है। उनके लिए यह एक मामूली सी बात है। जब खडेचू ने अपनी फरियाद सुनाई तो आर्यसमाजी लोगों ने पाठक जी को खरी खोटी तो सुनायी साथ ही साथ खडेचू को धमकाकर यही कहा कि समाज की बात बाहर नहीं जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति में नारी को देवी का रूप दिया है। लेकिन वास्तविक जीवन में उसे देवी तो क्या इंसान भी नहीं मानता। उसके शरीर के साथ किये खिलवाड़ को एक मामूली घटना मानता है। नारियों में तो दलित नारी का शरीर सवर्ण पुरुषों की तृष्णा के लिए बनाया गया है। इसलिए दलित के नारी शरीर पर होनेवाले अतिक्रमणों को भारतीय समाज में बडा अपराध नहीं माना जाता।

आर्यसमाज में अस्मिता की तलाश करने वाला खडेचु को वहाँ से शोषण ही मिला। सवर्ण और सवर्ण मानसिकता से हारकर वह अपनी बेटी को लेकर मेहतरों की मुहल्ला छोडकर बुलंद शहर में अपने एक मित्र हेरिसन के घर गया। गिरिजा में जाकर दोनों ईसाई बन गये। हेरिसन ने उसे एक अंग्रेजी अफ़सर के घर में काम दिलाया। धर्म के दमनकारी सोच को धकियाये अपने भंगी काम को छोडकर आर्यसमाजी बननेवाला खडेचू ईसाई बन गया।

खडेचू को अंग्रेज़ी अफसर के यहाँ भंगी का काम मिला। उसे इस काम से कोई नफरत नहीं थी नफरत थी काम से मिलनेवाले तिरस्कार से। ईसाई धर्म में भंगी का काम बस एक काम है जाति नहीं है। खडेचू बेटी से कहती है - " ईसाई होकर भी भंगी अवश्य हूँ। लेकिन अछूत नहीं हूँ। एडवर्ड साहब की टट्टी अवश्य कमाता हूँ लेकिन कैथवाडे में जिसप्रकार दीनता हीनता को दर्शाती और अपने आपको शर्मसार करती तुम्हारी माँ जिसप्रकार उनके गू मूत साफ करके भी भीख याचना जैसा करती चार रोटियों की प्रतीक्षा में उनके दरवाजे पर धरती पर बैठकर गुहार करती थी,ह यहाँ नहीं करना पडता है।"[29] ईसाईयों में भी ऊँच नीच की दरार गहरी और अभेद्य थी। भाईचारा चर्च, ईसाईयों के मेले त्योहारों में, साथ बैठने खाने तक सीमित था। भंगी भंगी ही था,पर अछूत न था।

3.6.9. मौन विद्रोह

मौन विद्वान केलिए भूषण है। मौन को कभी कभी दुर्बल हथियार के रूप में अपनाते हैं। सामाजिक व्यवस्था में पीसती भागमली का मौन विद्रोह उसके असहाय रूप को नहीं उसकी सशक्त व्यक्तित्व को सामने लाता है। भारतीय समाज में व्याप्त दहेज प्रथा ने नारी की सामाजिक स्थिति को बहुत ही निचला कर दिया है। इस प्रथा ने लडकी जन्म को शाप बना दिया। क्योंकि लडकी के अठारह तक होते ही वर ढूँढकर अच्छा दहेज देकर शादी करवानी पडती है। अच्छा दहेज नहीं दे पाएँगे तो कभी कभी उसकी शादी योग्य वर के साथ कर दी जाती है। क्योंकि मनु महाराज की व्यवस्था के अनुसार हर हाल में नारी की शादी जल्द से जल्द करानी चाहिए। जितनी जल्दी करवाएँगे परिवारवालो को समाज में उतनी इज्जत मिलेगी। यह प्रथा नारी मन की अस्मिता की भावना को अंकुरित होते ही मिटाता है। अपने आप को अपने नजरों में ही गिराता है। क्योंकि वह कितनी भी गुणवती क्यों हो दहेज नहीं दे

पाएँगे तो उसकी योग्यताओं का कोई मूल्य नहीं रह जाता। अगर लडकी केलिए दहेज देने की व्यवस्था होती तो भारत में नारी की दशा कुछ और होती।

भागमली के नाम में भाग अर्थात भाग्य होते हुए भी वह हमेशा अभागा की संगिनी बनी रही। भागमली गरीब है। उसके माँ-बाप को उसके अलावा और तीन बेटियाँ भी हैं। कुंवारी होते ही लडकी की शादी करनी चाहिए ।समाजिक व्यवस्था के कारण उसके माता पिता उसकी शादी एक तपेदिक अंतिम अवस्था के रोगी के साथ कर लेता है। क्योंकि उसके पास दहेज देने केलिए कुछ भी नहीं था। विद्रोहिणी भागो इसका विरोध नहीं किया मौन रहा। वह फिर वापस नहीं आया। तपेदिक रोगी की देखभाल कर करके वह भी सात आठ महीने में तपेदिक की रोगी बन गयी। उसे मौत की खाई में फेंकनेवाले माँ बाप यह उसकी नियति मानकर अपने आप को इस झपेट से मुक्त किया। भागो न रोयी न चिल्लायी वह भी इसे अपना भाग मानकर नियति से, सामाजिक अमानवीय नारी विरोधी व्यवस्था से अंत तक मौन प्रतिकार करती रही।

3.6.10. नारी अस्मिता

ईश्वर की सृष्टि में बहुत ही शक्तिशाली रूप नारी का है। सभी समाज में उसके लिए कठोर से कठोर व्यवस्था बनायी गयी है। उसकी कुचली गये सपनों में ही समाज की इज्जत खडी है। उसकी दृष्टी इधर से उधर होने पर सब कुछ बर्बाद होने की मिथ्या सोच में पडे हैं।इस तरह की कुटेव में फँसकर लोग अपनी तथा दूसरों की जिंदगी को भी बर्बाद करते हैं। इस मिथ्याभिमान पर नसरिन जिंदगी भर प्रतिशोध करती रहती है।

हमीद की बहन नसरिन संतोष से प्यार करती है। वह उसके साथ भागकर शादी करती है। लेकिन घरवालों ने संतोष का खून बहाकर उसे पकड कर लाया। माँ,

बाप, भाई, बहन, रिश्तेदार सबने मिलकर उसे बहुत समझाया। वह नहीं मानी। वह यही कहती रही कि संतोष से शादी करके मैं हिंदू हो गयी हूँ। मुझे अपने पति के घर जाने दो। बहुत मार पीट के बाद वह संतोष को भूलने केलिए तैयार हुई। लेकिन दूसरे विवाह करने से साफ इंनकार कर दिया। उसने साफ कह दिया कि ज़ोर ज़बर्दस्ती करेंगे तो फिर से भागकर उसके पास चली जाऊँगी। हमीद बहन को लेकर अपने परिवार के साथ गाँव छोड दिया और दरियागंज में आकर रहने लगा।

संतोष भी नसरिन को ज़नून के हद तक प्यार करता था। वह नसरिन केलिए मुसलमान बन गया और फकीर बनकर उसे ढूँढता रहा। पच्चीस साल तक वह उसे ढूंढा और अंत में दरियागंज में उसे पाया। वह गाँव आता रहा और अल्लाहु अल्लाहू कह कर मुसलमान की गली में घूमकर चला जाता। गाँव की खाला बनकर रहनेवाली नसरिन उसके आते ही खुमसुम हो जाती थी। जब तक वहाँ न जाता वह घर के अंदर ही रहती। एक दिन फकीर गाँव आया और खाना पीना छोडकर अपने आप को मौत के हवाले कर दिया। यह खबर सुनकर नसरिन तब बाहर निकल आयी। बरगद के नीचे कुत्तों की जमात से घिरे फकीर के मृत शरीर के पास खुले हुए बाल और रोकर लाल हुए आखों से खडी रही। कभी आकाश को तो कभी फकीर को देखकर वह छाती पीटकर रोने लगी,बिना शब्द से।

संतोष की मौत के बाद नसरीन कभी घर के बार नहीं निकली। वह भी खाना पीना छोडकर आत्महत्या कर ली। पच्चीस साल तक वह अपने भाई के सामने एक मौन प्रतिशोध बनकर खडी रही। उसको दिये वचन के पालन केलिए वह फकीर से मुह चुपाते रहे। लेकिन अंत तक उसे उसके साथ जीने की उम्मीद थी। टूटी आशा से अंतिम क्षण तक वह बड बडाती रही। अपनी अंदर दबे रखे सारे के सारे दुखों को कहती रही। भाभी उसे सांत्वना देती रही। इसे दूसरों के सामने न कहने और व्यर्थ में

आँसू न बहाने और कुछ खाने केलिए कहती रही। नसरीन इसके जवाब में बस यही कहा कि -" भाभी जब जिंदा था तब परिवार,कुनबा, मजहब के सम्मान की रक्षा में होंठ सी लिए थे, अब वह खाक में जा मिला है। क्या अब भी कुनबा के सम्मान की खतरा है। " [30]

3.6.11. पुरुषवर्चस्ववाद पर प्रहार

चावली इस उपन्यास की सशक्त नारी पात्र है। दलित उपन्यासों में इतने सशक्त नारी पात्र बहुत बिरले है। चावली पचास साल से अधिक उम्र की, भारी वजन की, आभूषणों से लदी गोरी नारी है। वह कुशल दाई है। अनपढ़ होकर भी उसका ज्ञान बहुत गहरा है। जीवन के कटु अनुभवों ने उसे ऐसी शिक्षा दी कि समाज की हर कूटनीति से वह वाकिफ है।वह कुशल दाई है।विशेषकर गर्भपात की। पुरुषों के अपराधों के भरमार के कारण वह संपत्ति के अंबार पर रहती है।चावली की हर सोच पुरुषवर्चस्ववाद पर ज़ोर का प्रहार करती है।अपने दुखों को भूलने केलिए वह दारू पीती है।

समाज में बाँझपन का दाग हमेशा नारी पर ही पडता है।क्योंकि समाज की दृष्टि में पुरुष में सब श्रेष्ठ है। उसमें कोई कमी नहीं होती जो भी कमी है वह नारी की ही है। मर्द अपनी कमी को स्वीकार करने से डरते हैं। पिता बनने के चक्कर में दूसरी नारी का जीवन भी बर्बाद करते हैं।लेकिन तब भी अपनी कमी स्वीकार नहीं करते। लगभग अस्सी प्रतिशत मामलों में यही होता है।मर्द बाँझ है लेकिन बांझ की गाली मिलती है औरत को। चावली माँ नहीं बनी।कमी तो पति की थी।लेकिन यह मानने केलिए वह तैयार नहीं था।वह यह चावली की कमी मानकर उसे बिना कहे दूसरी शादी की। लेकिन दो साल के बाद भी वह माँ नही बनी तो सच सच पानी की

तरह साफ हुआ।कमी न चावली की है न सौत की।तब उसने अपने पति को माफी दी।लेकिन शर्त पर, वह जब चाहे उसे निकट आने देती,जब चाहे दुत्कार देती।

पुरुष वर्चस्ववाद का आधार मनुस्मृति है। इसने पुरुष को समाज का केंद्र बनाया। उस के हित में सामाजिक नियमों का निर्माण किया।इसलिए अपराध करने पर भी वह समाज से बच निकलता है।कोई उस पर ऊँगली नहीं उठाता। वह आजादी को अपने तक सीमित रखना चाहता है।इसलिए जो काम उसके लिए जायज है वह काम नारी करने पर नाजायज बन जाते हैं।कुछ इधर का उधर हो जाने पर सभी गलती सिर्फ नारी की ही रह जाती है। लेकिन कोई भी यह नहीं सोचता कि मात्र उसकी गलती से यह काम नहीं होता। फिर नारी को अबला कहकर समय समय पर पुरुष द्वारा उसकी संरक्षण की व्यवस्था करनावाले पुरुष यह कैसे भूल जाते है कि उस पर आक्रमण पुरुष ही करता है।तब वह कैसे दोषी बनेगी।दोषी तो पुरुष है जो अबला पर वार किया है, दोषी वह है जो उसका संरक्षण नहीं कर पाया है।

नारी की आज़ादी पुरुष को बिलकुल पसंद नहीं है।क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है नारी स्वतंत्र रहेंगे तो समाज में पुरुष का अधिकार ही मिट जाएगा। जिस केंद्र पर वह बैठ रहे हैं वहाँ नारी बैठेगी। आनेवाली पीढियाँ उनके नाम से जानी जाएगी। पुरुषवादी समाज की दोखली नीति पर प्रकाश डालकर चावली कहती है " गूजर,जाटव चमार ...ब्राहमण, नाई,चूहडे सब साले एक जैसे ही हैं।पाप स्वयं करते है,नारी को जिम्मेदार ठहराते हैं। चोरी चुपे बहनों को लेकर आते हैं यहां, उनकी मुश्क बाधकर नहीं लाते जो उस कुकर्म के साझेदार हैं। औरतों, लडकियों की बेहुरमती करते इन मर्दों को क्या तनिक भी लाज नहीं है। सुअर - सुअरी,गाय -बैल,भैंस -भैंसा की संतान को तो नहीं छिजवते। क्योंकि उससे तो माल मताल बढता है, और जब औरत बच्चा जनती है तो शर्त तैय कराकर मर्द की औकात, शान, गरिमा, मूँछ

बिरादरी,रस्म,जाति,उपजाति, गोत्र के हिसाब के साथ जुगाड बैठाकर ही उसे कुदरत के इस अनमोल सृजन को क्रियान्वित करने की सुविधा मर्दों ने दी हुई है।" [31]

नारी कहीं भी सुरक्षित नहीं है।घर के पुरुष ही उसका इस्तेमाल करते हैं।कुछ हो जाने के बाद चावली जैसी कुशल दायी के पास कलंक दोने केलिए आते हैं।बेटी ,भतीजी, सभी रिश्ते एक ढोंग बन कर रह जाते हैं। वे पाप करते हैं और सज़ा नारी को मिलती है और वे आज़ाद होकर घूमते रहते हैं।

3.6.12. संस्कृति के झूठे पहलुओं प्रहार

भारतीय संस्कृति में अनेक नारी विरोधी तत्व है। लेकिन पुरुषसमाज इसे गुड में लपेटकर ही प्रस्तुत किया है। इसे इतना बढा चढाकर प्रस्तुत किया है कि सुननेवालों को ऐसा लगेगा कि 'वाह... क्या बात है'। पर उसमें जीनेवालों से पूछे कि वह किस प्रकार जीता है तो असलियत सामने आएगी।

भारतीय समाज में नारी लंबी घूँघट में जीने केलिए मजबूर है। तंबू से अधिक लंबे और बारी बरकम घूँघट में रहनेवाली भारतीय नारी भारत के अंदर क्या है,वह यह नहीं जानते। उसके अंदर अपने जीवन को गँवाती है। इस तरह के भारत के आदर्श नारी रूप अनपढ़ है, शहर की भीड में सडक पार करने में भी सक्षम नहीं है। सवर्ण वर्णयवस्था के आधार पर बनी सामाजिक व्यवस्था को भारत की संस्कृति कहकर उसका प्रचार प्रसार कर रहे हैं।इसके मूल में निहित मानव विरोधी तत्वों को धर्म की आड में सुन्दर व्याख्या देकर दुनिया की आँखों में धूल झोंक रहे है।

3.6.13. अंबेडकर विचारधारा का प्रचार

अंबेडकर ने उच्चशिक्षा विदेशों से प्राप्त किया है। वहां की संस्कृति, मानवता, भाईचारा, लोगों को उसकी योग्यता के अनुसार सम्मान देने की रीति से वह बहुत

प्रभावित हुए। भारत में लोगों को उसकी जाति के अनुसार सम्मान मिलती है। विदेशी संस्कृति की मानवता ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया था। इसलिए वह वर्णवव्यवस्था को तोडकर एक मानवधर्म की स्थापना करना चाहते थे। चावली में अंबेडकर विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दीख पडता है। विदेशी संस्कृति के कुछ पहलुओं को लेकर उस पर कीचड उछालनेवालों को खरीखोटी सुनाती है। वह कहती है " दूसरों की सभ्यता के विषय में बच्चों से उदार लेकर इतिहास की पुस्तकें पढ लेता तो उनकी सभ्यताओं में मनुष्य और मनुष्य की समानता और बराबरी की भागीदारी को पढकर अपने संस्कृति पर इतराने के पूर्व, सोचकर अपना मुँह फाडता।" [32]

3.7 आज बाज़ार बन्द है (2009)

दुनिया में सबसे अधिक पार्श्वीकृत किया गया वर्ग नारी है। पार्श्वीकृत और पीडित भी वह ही है। इक्कीस्वीं सदी के नारी सशक्तीकरण के ज़माने में भी उसका शोषण जारी है। मनुष्य अक्ल में ईश्वर की अन्य सृष्टियों में से कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, मूल रूप में वह किसी पशु से भिन्न नहीं है। उन्मुक्त रूप में खाना और उन्मुक्त रूप में भोगना उसके स्वभाव में अंतर्लीन है।नारी और पुरुष इससे भिन्न नहीं है। जब पुरुष समाज का केन्द्र बना तब ईर्ष्यालु पुरुष ने नारी की इस स्वतंत्रता पर रोक लगाकर अपने लिए इसकी पूरी छूट देनेवाली एक नयी व्यवस्था की स्थापना की। नारी की पवित्रता पर ढींग मारने वाले समाज ने ही उसे वेश्या बनाने की व्यवस्था भी बनायी।

नारी को शरीर की भूख मिटानेवाले साधन के रूप में प्राचीन काल से ही पुरुष इस्तेमाल करने लगा था। नारी किसी भी धर्म की क्यों न हो पुरुष केलिए नारी सिर्फ शरीर है। संसार में केवल दो ही वर्ग है,एक पुरुष दूसरा स्त्री। सबल पुरुष निर्बल स्त्री को पूरी तरह अपना अधीन किया। अपने अधकार को स्थिर बनाने केलिए व्यवस्था

भी बनाई। इस व्यवस्था से मुक्त होने केलिए आज नारी छटपटा रही है। पुरुष ने अपने स्वच्छंद संभोग केलिए नारी को यथेष्ट मिलने केलिए वेश्यावृत्ति की स्थापना की। प्राचीन काल में राजा महाराजा अपने शौक केलिए वेश्याओं को रखते थे। मुगल काल में वेश्यावृत्ति को राज्य में बहुत प्रश्रय मिली थी। इस काल में रईस भी इसमें शौक रखते थे। अब भी व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। बडे नगरों में वेश्यावृत्ति खूब चलती है। कुछ संगठित रूप में वेश्यावृत्ति करते है कुछ असंगठित रूप में। आधुनिक महानगरों में वेश्याओं के कुछ बाज़ार हैं।

भारत चकलों की गलियों केलिए मशहूर है। ऐसे एक चकले की कोठी नं 8 में पाँच रंडियाँ रहती हैं। हिंदु पार्वती, फूल,मुसलमान शबनम बाई, हसीना और मुमताज। इन्हें किसी भी धर्म की परिरक्षा कहीं नहीं मिली है। उलटे धर्म ने ही पार्वती को वेश्या बना दिया। शबनम बाई को एक मुसलमान ने ही अपनी प्यार के जाल में फँसाकर यहाँ बेच दिया। पचास बरस की शबनम बाई एम. ए तक पढी थी।अब वह कोठ नं 8 की बाई है। बाकी चार नारियाँ उसकी निगरानी में रहती हैं।सब थोडे पैसा उसे देती हैं। एस .डी पुनेकर और कमला राव ने बंबई की 425 वेश्याओं का अध्ययन करके कहा कि- " सामान्यता वेश्याओं में से एक तिहाई देवदासियाँ थी।ग्रामीण क्षेत्रों से पिछडे समुदायों के परिवारों की लडकियाँ वेश्यावृत्ति केलिए भेजी जाती थी।"[33]

3.7.1 धार्मिक व्यवस्था का विरोध

नारी हाशियेकृत है।दलित हाशियेकृत है। तब तो दलित नारी हाशियेकृतों में ही हाशियेकृत है।देवदासी प्रथा सुंदर दलित नारियों को सवर्णों को यदेष्ट रूप में भोगने केलिए बनायी गयी व्यवस्था है। प्राचीन काल से ही यह प्रथा भारत में प्रचलित है। प्राचीन भारतीय परंपरा में देवदासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह व्यवस्था के प्रति दलितों के मन में एक अजीब सम्मोहन है। गरीब लोगों को अच्छे अच्छे खाने और

कपडों का लोभ देकर फँसाते है।उन्हें यह झूठा विश्वास दिलाता है कि देवदासी बनने पर मंदिर,पंचायत, धर्मशाला, गाँव का भाग सबकुछ उसका बन जाएंगे।दलित जातियों के लोगों को मंदिर में प्रवेश निषिद्ध है। इसलिए मंदिर में पूजा पाठ,कीर्तन,भजन नृत्य को अपना शान मानती है। असल में यह भ्रमित करनेवाला एक चित्र मात्र है।

दलितों को देखने मात्र से अशुद्ध बननेवाले ब्राहमण दलितों के साथ संभोग करने पर भी अशुद्ध नहीं बनता,यह विडंबना सिर्फ भारतीय संस्कृति की खूबी है। यहाँ बातें बात बात पर बदल जाती हैं। भारतीय साधना प्रणाली में संभोग भी एक साधना रीति है। रति सुख में ब्रहमानंद सहोदर की प्राप्ति के दर्शन यहाँ से आयी है। विराट धार्मिकता का आधार वह देह पर ढूँढते हैं। धर्म उनकी रास लीला में अडचन पैदा नहीं करता। धर्म उन्होंने बनाया है उनकी सुविधा केलिए बनाया है। इसलिए दलित नारी को पहले देव की दासी बनाते है। देव की दासी बनाकर समाज में उसका स्थान उन्नत करते है। देव को अर्पित करनेवाली हर चीज का भोग सबसे पहले ब्राहमण करता है।इसलिए भगवान पर चढाने के बाद उसका उपयोग पूजारी करता है। उसके बाद समाज के पुरोक्ता जो दुनिया का काम करता है देवदासी का भोग करते हैं। “हर रात आकाश से नहीं इसी धरती से नया पुरुष आता था। खास जाति के दबदबे वाले पुरुष होते थे।सामंत और पटेल अधिक रहते थे।कभी कभी एक रात में अनगिनत पुरुष हो जाते थे।उन पुरुषों को झेलती थी वह उत्पीडक था और औरत पीडा तथा दर्द का बयान करनेवाली। ”[34]

ऐसा कहा गया है कि देवदासी प्रथा में पहले उसका भोग शिव करता है फिर समाज के सवर्ण वर्ग के पुरुष अपने अपने सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार उसके शरीर का भोग करते हैं। धार्मिकता की आड में दलित नारी पर किये जानेवाले इस अन्याय पर कोई आवाज़ नहीं उडाता क्योंकि इस पर धर्म का परिवेश इतना कडा है

कि कभी कभी माँ बाप अपनी बेटी को दिल पर पत्थर रखकर एल्लमा को देते हैं। गाँव भर के लोगों का भविष्य बतानेवाला ऋषि मुनि भी देवदासियों के भविष्य खराब करने केलिए तुला है। नारी को पुरुष सिर्फ शरीर मानते है। इस प्रथा का विरोध नारी की ओर से ही आना चाहिए।

पार्वती पुरुषों के शोषण की प्रतीक है। 16 साल में ही वह देवदासी बन गयी। 16 साल की अबोध बालिका कुछ नहीं जानती थी। उसे माँ के अलावा और कोई नहीं था। माँ अनपढ़ गँवार थी। एल्लमा का प्रकोप और देवदासी बनने पर मिलनेवाली जीवन की बहकावे में आकर वह देवदासी बनाने केलिए तैयार हुई। देवदासी को गाँव में बुरा नहीं मानता। थोडी दिन में ही पार्वती को मालूम हुआ कि जिस सम्मान की प्रतीक्षा करके वह आयी थी वे सब झूठे हैं। पार्वती दलित नारी की अस्मिता की तलाश करने लगी। वह इस घृणित जीवन से मुक्ति पाने की कोशिश करती रही।

देवदासी को रखने से देवता कुपित नहीं होते थे। पार्वती अपने ऊपर हो रहे शारीरिक शोषण के आधार को जानने केलिए कोशिश करती।वह अपने पास आनेवाले पुजारियों,ज़मीनदारों,पटेलों से रोज़ इसके बारे में पूछा करती थी। लेकिन किसी से भी उसे कोई ठोस जवाब नहीं मिला।पार्वती ने हिन्दु धर्म के वरिष्ठ नेता श्री शंकराचार्य के नाम पत्र लिखा -"तुम हिन्दु धर्म के सबसे बडे स्वामी हो। मुझे मुक्ति दिलाओ। मुझे अबला से सबला बनाओ।"[35] मठ से उसे कोई जवाब नहीं मिला।देश के चार कोनों में चार पीठ और चारों में चार पीठों पर चार शंकराचार्य विराजमान थे।उसने एक के बाद एक चारों को पत्र लिखा लेकिन किसी से भी उत्तर नहीं मिला।

3.7.2. जागृति

नारी को अपने इच्छानुसार मिलने के लिए पुरुष द्वारा बनाई व्यवस्था है वेश्यावृत्ति।नारी इस शिकंजे को तोडना चाहकर भी इसे तोड नहीं पाता। क्योंकि इसे

बनाये रखने केलिए एक बहुत बडा पुरुष समाज आँख गडाये बैठे है। किसी को ट्रांसफर कराना, प्रोमोशन, टेंडर पास कराना, सरकारी दफतरों में कभी सीधे रिश्वत नहीं दी जाती ऐसे अवसरों में वेश्याओं को ही परोसी जाती है।

देवदासी प्रथा एक धार्मिक अंधविश्वास है। पुरुष वर्ग यही चाहते है कि वेश्याएँ हमेशा रहे।इसमें दलित कन्याओं को बलपूर्वक देवदासियाँ बना दी जाती हैं। इसकेलिए धर्म का इस्तेमाल भी किया गया है।सभी धर्म भीरू है।एल्लामा दलितों की देवता है। एल्लामा की प्रीति प्राप्त करने केलिए घर की कुँआरीयों को एल्लमा के मंदिर में देवदासी बनाने की रिवाज़ है। इसे तोडने पर एल्लमा कुपित होने का डर सभी में है।ये लोग धर्म की मान्यताओं को ओढ़ते बिछाते थे।उत्सवधर्मी समाज में प्रथाएँ लोगों के जीवन में रची बसी रहती है।भाग्य और भग्वान पर विश्वास रखने वाले लोग एल्लमा के खिलाफ जाने के लिए तैयार नहीं थे।

दलित जाति की नारियों को क्यों देवदासी बना दिया जाता है, यह सवाल उसने कई बार मंदिर में जाकर पूछा था।पार्वती इस व्यवस्था से अपने आप को बचाने की बहुत कोशिश की।लेकिन बच नहीं पायी।चकला एक मकडी का जाल है।एक बार फँस गया तो फँस गया।

नारी का शारीरिक शोषण कोठों में ही नहीं बल्कि हर कहीं हो रहा है।घर में स्कूल मे अफीस में,हर कहीं। एक राजनीतिक नेता ने कहा था कि जहाँ नारी है वहाँ शोषण भी रहेगा।नारी का सहारा देने केलिए सरकार द्वारा बनाया गया नारी निकेतन नारी के शोषण करने वाले संस्थाओं के नाम में प्रथम है।वेश्याओं को यह काम छोडकर नारी निकेतन में सहारा लेने की बात को शबनम बाई ठुकराती है। "मैं सरकार को जानती हूँ और सरकारी योजनाओं को भी।इन्हें घर चाहिए नारी निकेतन

नहीं।वर्ना होगा यही कि यहाँ प्राईवट तो पिंजरे है और वहाँ सरकारी पिंजरे हो जाएँगे।"[36]

3.7.3. आत्मविश्वास

अस्मिता की लडाई का पहला कदम मुक्ति या सम्मान पाने की इच्छा है। इसी इच्छा ने पार्वती और शबनम बाई में अपनी मुक्ति और उसी के द्वारा पूरी वेश्याओं की मुक्ति केलिए संघर्ष करने का हौसला दिया। समाज में बहुत सारे धंधे हैं। वेश्यावृत्ति को भी समाज ने एक धंधा ही माना है। अपने पास आनेवाले पुरुषों को खुश करना ही इसका उसूल है। रविवार हो या सोमवार दिन हो या आधी रात ग्राहक ही ईश्वर होना चाहिए। लेकिन कोठे न. 8 की वेश्याएँ इसकेलिए तैयार नहीं होती। राष्ट्रीय अवकाश के दिन अगस्त 15 उन्होंने भी अपने लिए छुट्टी घोषित किया। कोठे पर आनेवाले पुरुषों को वे साफ साफ कहती है..आज बाज़ार बंद है।

3.7.4. पुरुषों का समर्थन

दलित नारियों को बलपूर्वक देवदासियाँ बनायी जाती हैं। नारियों को पकडकर चकलों में बेच दिया जाता है।एक बार अपने परिवार से कट जाने पर नारी को स्वीकार करने केलिए उनके माँ बाप भी तैयार नहीं होते।असल में पुरुष की हवस की पूर्ति के लिए बनायी गयी गुलाम वर्ग ही वेश्या है। पुरुषों द्वारा बनायी गयी इस व्यवस्था को पुरुषों के समर्थन से तेडा भी जा सकता है।

अस्मिता की तलाश करनेवाली पार्वती और शबनम बाई सुमित को घर में आश्रय देने के बाद अपना निर्णय दृढ़ बनाती है। शबनम बाई सुमीत को अपना बेटा मानती है। सुमीत के आने के बादनम बाई खुद को वेश्या नहीं एक माँ मानती है। वासना के जंगल में फँसी शबनम सुमीत की माँ बनकर अपनी अस्मिता की तलाश

करती है। हवस की दुनिया से बचने केलिए बाहर से जोडनेवाली एक कड़ी की आवश्यकता है। सुमित की बातों से उनमें अस्मिता की भावना प्रज्वलित होता हैं।" तुम रंडियाँ नहीं हो राष्ट्र की बेटियाँ हो। मैं पूछता राष्ट्रपिता से अगर वह जीवित होता।हाँ अगर तुम राष्ट्र की बेटियाँ नहीं है तो राष्ट्र की पत्नियाँ हो।"[37]

3.7.5 संघर्ष

पार्वती भी इस सम्मोहन में फँसकर देवदासी बनी।सोलह साल की अबोध कन्या जो देव की दासी बनने केलिए आयी थी।उसे रात में कई देवताओं की सेवा करना पडा। संघर्ष करने केलिए मचलनेवाले उसके मन से उठनेवाले प्रश्न उसने अपने पास आनेवाले पटेलों, चौधरियों, पूजारियों और समाज के बडे माने जानेवाले सभी से पूछा। किसी से भी उसे ठोस उत्तर नहीं मिला तो उसे मालूम हुआ कि उसके साथ धोखा हुआ है। उससे सभी ने यही कहा कि देवदासी को शिकायत करने का अधिकार नहीं है।

मंदिर के पूजारी को भी उसके शरीर में हिस्सा था।धार्मिकता की आड़ में दलित नारी पर किये जानेवाले इस अन्याय पर कोई आवाज़ नहीं उडाते क्योंकि इस पर धर्म का परिवेष इतना कडा है कि कभी कभी माँ-बाप को भी अपनी बेटी को दिल पर पत्थर रखकर एल्लमा को देता है।गाँव भर के लोगों की भविष्य बतानेवाला ऋशि मुनि भी देवदासियों के भविष्य खराब करने केलिए तुला है। नारी को पुरुष सिर्फ शरीर मानते है इसका विरोध नारी की ओर से ही आना चाहिए।कुछ साल पहले कर्नाटक की एक लडकी ने देवदासी प्रथा के खिलाफ आवाज़ उठायी।उसने साफ कह दिया कि वह देवदासी बनने केलिए तैयार नहीं।उसके मंगेतर और माँ उसके साथ रही।उन्होंने कानूनी लडाई लडकर देवदासी प्रथा को कानूनी जुर्म घोषित

कराया।लेकिन गाँवों में अब भी देवदासियाँ बनाने की प्रथा ज़ारी है।गाँव की दलित लडकियाँ जवान होते होते देवताओं की अमानत मानी जाती है।

पार्वती ने पूजारी और पट्टेल से छुटकारा पाने केलिए बंबई शहर में नौकरी की तलाश की,लेकिन वहाँ भी उसे इससे छुटकारा नहीं मिला।वह समाज के अदृश्य पिंजर में तडपती रही,चिल्लाती रही।लेकिन कुछ नहीं कर पायी।पार्वती की माँ अपनी बेटी की दुर्दशा देख कर पागल हो गयी।अपनी एकलौती बेटी को देवदासी बनाने वाले पत्थर देवताओं पर थूक कर वह अपना विद्रोह प्रकट करती थी।

3.7.6. नारी शोषण का विरोध

पार्वती के समान शबनम बाई भी इस जिंदगी को छोडना चाहती थी लेकिन चकलों से निकलने पर बाहर की दुनिया दुनिया में उन्हें अपनाने केलिए कोई तैयार नहीं होता।वह यही चाहती है कि हर नारी इस शिकंजे से मुक्त हो जाय।वे किसी दूसरी लडकी को इस शिकंजे में फँसाना नहीं चाहतीं।बुढापे की दहलीज पर खडी शबनम बाई इस धंधे से पहले ही ऊब चुकी थी।वह मंदिर में शान्ति ढूँढने लगी थी।इससे हुद मुक्त होकर नारी की व्यक्तित्व अलग पहचान बनाने की इच्छा ने बेडियाँ तोडने की शक्ति उसे दी।बुढापे में नयी छोटी लडकियों को रखकर अपना भविष्य सेफ करना वह नहीं चाहती। इसलिए दल्ले द्वारा लायी गयी अठारह साल की तीखे नयनों नक्शेवाली पूनम को वह बचाती है।

3.7.7. निर्भीकता का साथ लेना

नारी को बलपूर्वक वेश्या बनाने की रीति भारत का दस्तूर है। अपने नारीत्व पर होनेवाले हर आक्रमण पर नारी बहुत जल्दी डरकर बेहाल हो जाती है। 80 प्रतिशत घटनओं में भी नारी टूट जाती है रोने लगती है बिसुरने लगती है। इस रोने से पुरुष

खुश हो जाता है अपने आप को विजयी मानता है। विपत्ति में रोने के बजाय हालात को समझकर अपने को बचने का रास्ता ढूँढना चाहिए। मुक्ति की याचना पूनम की आखों में थी लेकिन दीनता और हीनता नहीं थी। अंतिम समय तक अपनी अस्मिता की रक्षा केलिए वह सक्षम थी। वह दल्ले के सामने न रोई थी और न गिडगिडाई थी। दल्ले की मार सहकर भी वह लोह की तरह बनी रही। वह दल्ले से कहती है कि " नहीं मैं अपना जिस्म नहीं बेचूँगी। जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक मुझे कोई छू नहीं सकता।" [38]

पूनम की इस आत्म सम्मान की भावना ने शबनम बाई और पार्वती में धीमी पड गयी अस्मिता की आग को प्रज्वलित किया।यह उसकी मुक्ति के दोनों मि रास्ते खुद ब खुद खोल दिये। वे दोनों मिलकर पूनम को कोठे से बचने में मदद करती हैं।

नारी को भेड बकरों की तरह कैद में रखकर दल्ले यह काम करवाते हैं।उन्हें इफाज़त देने के नाम पर दल्ले उनसे पैसे लेते हैं। वेश्याओं के पुलिस से बचाने का स्वांग भरनेवाले दल्ले से शबनम बाई कहती है –" अपने स्वार्थ केलिए हमें इन पिंजरे में बंद कर रखा है तुम जैसों ने। "[39]

3.7.8. वेश्यावृत्ति छोडना

सुमित के प्यार पार्वती को इस शिकंजे से बाहर निकलने की प्रेरणा देता है। वेश्याओं से सहानूभूति रखने वाले पत्रकार सुमित के सहारे वह इस से निकलने का रास्ता ढूँढती है। तुम लोगों की मुक्ति एक न एक दिन होकर रहेगी के सुमित के स्वर ने पार्वती पर उमंग को पंग लगा दिया। मैं मुक्ति की उस घडी का इंतज़ार करूँगी ...में पार्वती की अदम्य लालसा ही प्रकट होता है। उसके इंतज़ार को सुमित संघर्ष के रूप में परिवर्तित करता है। इससे प्रेरणा पाकर पार्वती धंधा छोडती है।

वह कोठे में रहती है पर धंधा नहीं करती। धीरे धीरे कोठे की वेश्याओं पर पार्वती का प्रभाव पडने लगा। सुमित मुमताज़, और फूल से भी यह काम छोडने केलिए कहता है। वे भी इसे छोडती हैं। उसका नाम दूसरी कोठियों में भी फैल जाता है और खोई हुई अस्मिता की भावना सभी वेश्याओं में धीरे धीरे जाग उठती है। पहले से ही इससे मुक्ति पाने की कामना करनेवाली पार्वती की अस्मिता बोध उसकी चरम सीमा पर पहूँचती है। उसे धमकाने केलिए दल्ले आते है और बाद में कानून के रक्षक पुलिस भी आते हैं।

वेश्या यह धंधा छोडने पर भी समाज इसे मानने केलिए तैयार नहीं होता। वह उसे वेश्या बनाए रखने की कोशिश करता रहता है। पार्वती ने वेश्या का काम छोड दिया। वह सुमीत से शादी करके एक अच्छी जिन्दगी जीना चाहती है। पुलिस उसे थाने पर बुलाकर सुमित से रिश्ता तोडने और उसे कोठे से निकालने केलिए कहता है।पार्वती यह मानने केलिए तैयार नहीं होती।वह इंस्पेक्टर से सख्त शब्दों में कहती है कि वह यह काम आगे नहीं करूंगी। इंस्पेक्टर उसे रंडी बुलाता है तो वह इसका सख्त विरोध करती है - " इंस्पेक्टर मैं रंडी नहीं हूँ,नहीं हूँ,नहीं हूँ।तू इंस्पेक्टर नहीं है।भडवा है,भडवा है,अरे भडवागिरी करने की इतनी ही आग है भीतर तो यह वर्दी उतार दे और कोठे पर बैठकर ग्राहकों से दल्लाली खा। "[40]

3.7.9 शोषण का विरोध

वेश्यावृत्ति धार्मिक और नागरिक समूहों द्वारा वर्जित है और कानून द्वारा भी प्रतिबंधित है। व्यक्ति चाहता है कि उसे यौन संबंध में विविधता हो।यह विविधता ही वेश्यावृत्ति को बनाये रखती है। स्वच्छंद संभोग का अर्थ केवल अनेक व्यक्तियों के साथ स्वैच्छिक यौन संबध नहीं है, बल्कि अपरिचित व्यक्तियों के साथ यौन संबध से भी है। पुरुष अपनी उन्मुक्त भोग की इच्छा की पूर्ति केलिए इसका निर्माण

किया। वे नारी को पशुओं की तरह अस्तबल के समान के कोठे में रख कर दिन रात यही काम करवाते हैं।शरीर मात्र पर उसकी ज़िन्दगी रुक जाती। उसकी बेटी बनने,माँ बनने, पत्नी बनने, और दादी बनने का हक छीन लिया जाता है। पुरुष उसे इससे मुक्त होने ही नहीं देता। औरतों को पैदाइशी गुलाम मानने वाले पुलिस अधिकारी से पार्वती कहती है – " नहीं औरतें पैदाइशी गुलाम नहीं होतीं। गुलाम उसे आदमी बनता है। रस्म रिवज़ बनाते हैं।वे परंपराएँ बनाती हैं, जिन्हें मैंने कभी का छोड दिया।"[41]

पुरुष को एय्याशी की पूरी छूट देने वाले इस व्यवस्था को बनाए रखने वाले पुलिस और दल्ले है। वे वेश्याओं को अपनी निजी संपत्ति मानते हैं। इसलिए माँ-बाप के साथ खुशी से जीनेवाले छोटी छोटी लडकियों को अगवा करके लाते हैं। कडी निगरानी में उसे वेश्या बनाए रखता है।दोनों वेश्याओं से इसकी कम्मीशन भी लेते हैं। इसप्रकार कानून द्वारा प्रतिबंधित इस धंधे का रखवाला कानून ही बन जाता हैं। एक पुलिस अधिकारी ने रिश्वत देकर अपना ट्रान्सफर कोठों के मुहल्ले में करवा दिया। क्योंकि इस इलाके में काम मिलने पर उसका जेब भी भरेगा और एय्याशी से दिल भी।

कोठों का निर्माण करने वाला और उसे बनाए रखनेवाला दोनों पुरुष ही है। बुढापा आते ही रंडियाँ उसे आराम से काटने केलिए नयी नयी लडकियों को कोठे में बिठाती है। दल्ले उसके पास छोटी छोटी कन्याओं को लेकर आते हैं और उन्हें कोठे पर बिठाते हैं। जब तक वह नहीं मानती तो उसे तक मारता पीटता रहता है। दल्ला उसका बलात्कार भी करता है। बलात्कार करके उसकी अस्मिता को ही चूर चूर कर देता है और उसके मन में यह एहसास पैदा करता है कि अब आगे तुम्हारा दस्तूर यही है।

एक दलाल द्वारा लायी गयी पूनम नामक एक अठारह साल की लडकी को शबनम बाई और पार्वती भागने में मदद करती हैं। कहने केलिए वे वेश्याएँ ही है। लेकिन पारिवारिक माहौल में जीने की आकांक्षा उनके मन में हमेशा बनी रहती है।वे यहाँ से भाग नहीं सकते थे, क्योंकि जहाँ भी जाएगा हर कहीं उन्हें शोषण ही मिलेगा। परिवार से कटे उन्हें यहाँ से हटकर कोई पनाह ही नहीं है। इसलिए एक नारी को बचाने केलिए वे दोनों संगठित होती हैं। उन्होंने दल्ले के विरोध नही किया। बाई कुछ नहीं बोली बस यह सोचती रही कि मैं तो रंडी बन गयी। पर एक भली लडकी को रंडी होने से बचाउँगी। दल्ला जाने के बाद पूनम से कहा कि - " मुक्ति चाहती है न तू हिंयां से।.....शहर तेरे लिए अजनबी है पर तुझमें हिम्मत है।रात में मौका देकर.....।"[42]

3.7.10. संगठन

संगठन ही सबसे बडी शक्ति है। हर शोषण को संगठन से ही साफ किया जा सकता है। सुमित ने वेश्याओं को देह व्यापार छोडने केलिए प्रेरणा दी। उससे प्रभावित होकर पार्वती ने धंधा छोड दिया। शबनम बाई के मन में कोठे के सभी नारियों को मुक्त करने की इच्छा पैदा हुई। बाकि कोठों में भी इसका उसर पडने लगा तो धंधे के ठेकेदार दल्ले और पुलिसवाले परेशान हो गये। इंस्पेक्टर पार्वती को बुलाकर सुमित को कोठे से बाहर निकालने केलिए कहता है तो पार्वती इसे मानने केलिए तैयार नहीं होती तो उसे हवालात में बंध करता है।

पार्वती को बचाने आये सुमित को भी पुलिस जेल में बंद किया। सभी कोठेवालियाँ शबनम बाई के साथ संगठित हो गयीं । शाम होते होते बाज़ार की रंडियों में एक नया बदलाव आ गया।आज वे अपने अपने छज्जों पर सजधज नहीं बैठी थी

बल्कि संघर्ष केलिए अपने आपको तैयार किया। कोई कोठा ऐसा नहीं बचा था जहाँ की रंडियों के भीतर आक्रोश न था। कुछ ने तो थाने पर जाकर नारेबाजी की ।

3.7.11. आंदोलन

वेश्या धंधे को वर्चस्ववादी पुरुष समाज बनाए रखते है। खासकर अधिकारी वर्ग।वेश्याओं की बस्ती में पोस्टिंग मिलने केलिए इनस्पेक्टर ने एकलाख रुपये दिये है।इसलिए वह पाँच लाख रूपए वहाँ से वसूल करना चाहता था। इसलिए उसे पार्वती का धंधा छोडना अच्छा नहीं लगा वह इस धंधे को बनाए रखना चाहता है। धंधा छोडनेवाली पार्वती को वह हवालात में बंध करता है। उसे छुटाने केलिए आए पत्रकार सुमित को भी हवालात में बंध करता है। नारी को वेश्या बनाकर पैसा कमानेवाले पुरुष समाज के विरुद्ध शबनम बाई खडी होती है।

शबनम बाई के नेतृत्व में वेश्याओं ने थाने को घेर लिया। पहले उसके साथ थोडी ही रंडियाँ थी। लेकिन धीरे धीरे दूसरे कोठे की रंडियाँ भी कोठे बंध करके आने लगी। थाने के बाहर रंडियों की भीड़ बढती ही गयी। अंत में विरोध अपनी बांध तोड दी। इंस्पेक्टर गुलाब सिंह ने लाठी चार्ज का आदेश दिया। सबसे आगे खडी शबनम बाई घायल हो गयी। शहर और आसपास के शहर, सब कहीं हल्ला मच गया। ऐसे अवसर पर वहाँ राष्ट्रपति वहाँ आ गये और सुमित और पार्वती को रिहा किया। दबनेवालों को दबाने केलिए बहुत सारे लोग होंगो। लेकिन सहन के बाँध टूटने पर उसे रोकने केलिए खाई या पहाड को ही आना पडेगा। हाशियेकृतों को रोनो चिल्लाना छोडकर तूफान बनना चाहिए।

नारी अपनी बेडियों को खुद तोडती नहीं है। एक पुरुष की मदद से तोडती है। नारी की शक्ति को लेखक मानते हुए भी अपने उद्दार के लिए पुरुष की सहायता अनिवार्य मानते हैं। नारी और पुरुष एक होकर लडने से मुक्ति जल्दी संभव हो

जाएगी। इसलिए हाशियेकृतों को अलग होकर नहीं संगठित होकर काम करना चाहिए।पार्वती अकेले बहुत कोशिश करती है। लेकिन वह सफल नहीं हो पाती। सुमित की प्रेरणा से वह ही नहीं बल्कि उस गली की तमाम वेश्याएँ मुक्ति के रथ पर अग्रसर होती है।उससे उन्हे अपने पैरों पर पडी बेडियों को काटने की शक्ति मिलती है।

3.8. सुअरदान (2010)

समाज का अर्थ व्यवस्था से बहुत गहरा संबध है। भारतीय संस्कृति ने पूरे दलित समाज को अधिकार विहीन बनाने केलिए दलितों के आर्थिक व्यवस्था पर भी प्रहार किया। सबसे पहले उसे सेवक बनाया। ऐसा सेवक जिसकी सेवा केलिए कम पैसा ही देना है। दलितों के दिमाग में यह विचार भी ढूँस दिया है कि उसकी भलाई आर्थिक रूप में विपन्न रहने में है। भारतीय दलितों की नियति यह है कि वह उत्पादन तो करेगा लेकिन भोगने से वंचित रहेगा। वह संपत्ति जमा और अर्जित नहीं कर सकेगा। इन सारी व्यवस्थाओं को महज एक व्यवस्था नहीं बल्कि इन्हें शास्त्र और धर्म सम्मत सामाजिक व्यवस्था बना लिया। व्यवस्था को तोड़नेवालों को कठोर दंड देने का विधान भी किया। इसप्रकार दलितों को आर्थिक रूप में गुलाम बनाकर उसकी अस्मिता को तहस नहस कर दिया साथ ही साथ भारत को गरीब देशों की श्रेणी में डाल दिया। सुवरदान में दलितों की आर्थिक स्वावलंबन द्वारा देश की प्रगति पर प्रकाश डाला है।

3.8.1. शोषण का विरोध

शोषण से बचने केलिए पहले शोषण की जानकारी होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति ने उन्हें बहुत सुंदर ढंग से कर्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पोल समझने केलिए शिक्षा पाना ज़रूरी है। अपने अस्तित्स्व की जानकारी के साथ दलितों

को संविधान में दिये गये प्रवधानों की जानकारी भी होनी चाहिए। यह उसकी अस्मिता की तलाश में ठोस आधार प्रधान कर देगी, लडने की शक्ति देगी। सदियों से सवर्ण दलितों को अपनी निजी संपत्ति मानकर आया है। उनके पंजों से दलितों को छुडाना आसान काम नहीं है। इसके लिए कानून की शक्ति आवश्यक है। बस यूँ ही कहने से यह काम नहीं चलेगा। कानून सशक्त होने पर भी कानून का ज्ञान जब तक दलितों को नहीं होगा तब तक इसका पूरा फायदा नहीं मिलेगा।

पंचायती व्यवस्था भ्रष्टाचार, जड़ विकृत परंपराओं, समाज के कमज़ोर वर्गों के प्रति भाव हिंसा और स्त्रियों के प्रति अपराधों की भावना से ओत प्रोत है। पंजायतों के नाम पर सवर्ण जातियों के दबदबा और गुंडगर्दी चल रहे है। पुलिस भी इनके इशारों पर चलते हैं। ऐसी दशा में दलितों और स्त्रियों को न्याय मिलने केलिए इन लोगों में से ही पढे लिखे लोग आगे आना चाहिए। संकटा प्रसाद चिकवा स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करके शहर में अच्छी नौकरी कर रहा था। वह अपनी नौकरी छोडकर गाँव के पिछडेपन को दूर करने केलिए गाँव लौट आया। दलित और नारियों पर हो रहे शोषण का खुलकर विरोध किया। शिक्षा से मिली ज्ञान और आत्मविश्वास से वह हाशिएकृतों की जीवन में नया सवेरा लाया। गाँव के चुनाव में खडा होता है। विजय प्राप्त करने के बाद वह पूर्व प्रधान त्रिपाठी और उनके सहयोगियों द्वारा किये गये घपलों और घोटेलों की जाँच करवाते हैं। सरकारी योजनाओं के माध्यम से गाँव के गरीब लोगों को रोजगार, शिक्षा, न्याय, स्वास्थ्य, छुआछूत से मुक्त बेहतर जीवन अवसर भी प्रदान किया गया है।

3.8.2. कानून की जानकारी प्राप्त करना

अपने ऊपर हो रहे शोषण का विरोध अस्मिता की पहली पहचान है। शिक्षा के साथ संवैधनिक ज्ञान भी आवश्यक है। नहीं तो दूसरों की धमकियों से डर जाएँगे।

दलितों और गरीबों को जो भी सुविधाएँ सरकार की ओर से मिल रही है उसे सवर्ण अधिकारी अपनी मेहरबानी ही समझते हैं। इस लिए जो भी सहायता सरकार की ओर से मिलती है इसमें ज्यादा हिस्सा उसके हाथ ही जाता है। कहने केलिए या दिखाने केलिए थोडा कुछ दलितों को देते हैं। संकडा प्रसाद चिकवा जो इलहाबाद विश्व विद्यालय से एम . ए किया था और प्रशासनिक अधिकारी के पद से वि . आर.एस लेकर गाँव की सुधार केलिए काम करता है, वह गाँव के षडयंत्रों को पर्दाफाश करता है। खेती-बाडी में नवीन पद्धति लाता है। गरीबों को बैंक से लोन दिलवाकर उनकी स्थानीय स्थिति के सुधार में बहुत बडी भूमिका अदा करते हैं।

दलितों के उद्धार के लिए यहाँ बहुत सारी योजनाएँ है। लेकिन ये सभी दलितों तक नहीं पहूँचती। कोई इसका विरोध नहीं करता सब नियति समझकर सह लेते हैं। इनका विरोध करने की शक्ति उनमें नहीं है क्योंकि इन लोगों के पास धन नहीं है, ताकत नहीं है और अधिकार नहीं है। धन और ताकत दलितों को शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकते हैं। सिंहासन खेडा गाँव के प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी, हाईस्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव, प्राईमरी हेल्थ सेंटर के जोरावर सिंह आदि मिलकर गाँव को तबाह कर दिया। प्राइमरी हेल्थ सेंटर का डाक्टर जोरावर सिंह हेल्थ सेंटर में सरकार द्वारा दी दवाईयों को शहर के एक मेडिकल सेंटर में बेच देता है। जूनियर हाई स्कूल में आयी छह लाख रुपये की फर्णीचर तीनों मिलकर हडपते है। बच्चे टाट पट्टी ज़मीन के ऊपर पढ़ रहे हैं। रोगी गण अवश्य दवाईयों के अभाव में तडपते रहते हैं।

गाँव में दलितों को मिलनेवाली सभी सरकारी सहायताओं को हडपनेवाले सत्यनारायण से संकटा प्रसाद कहते हैं "ये सारे आदेश आपके ग्राम प्रधान रहते आए थे। आपने उनको लागू नहीं किया। मेरे पास उन आदेशों का रिमाईंडर आयी है। आपने

जो भी घोटाला किए है,उनकी जाँच एस . डी. एम करेंगे। प्रधानाचार्य और डॉक्टर ने जो सरकारी पैसे गबन किये है, उसकी भी जाँच एस.डी. एम द्‌वारा हो रही है।" [43]

3.8.3. शिक्षा

संपूर्ण उपन्यास शिक्षा के महत्व की उद्‌घोषणा है। शिक्षा को सिर्फ दलितों और नारियों केलिए ही नहीं सभी को आवश्यक सिद्ध करते है। शिक्षा दलित, आदिवासी और नारियों में अस्मिता का मंत्र फूँकती है। वे कौन थे, क्या है और क्या होना चाहिए की अंदर्दृष्टी प्राप्त करने केलिए शिक्षित होना आवश्यक है। साथ ही साथ सवर्णों के आर्थिक पिछडेपन को दूर करने केलिए भी शिक्षा ही उत्तम रास्ता दिखा सकती है।

रामचंद्र त्रिवेदी, सज्जन खटिक, सलवंत यादव और घसीटे चमार विदेशों से उच्च तकनीकि शिक्षा प्राप्त किया था।रामचंद्र त्रिवेदी, एम .बी .ए, सज्जन खटिक ने बी.टेक, घसीटे चमार ने बार-एच -ला़ॅ,सलवंत यादव ने वैटिनरी डॉक्टर की डिग्री ली थी।इन लोगों ने उच्चत कनीकि और कानूनी शिक्षा प्राप्त करके गांव में एक नया उद्‌योग शुरु किया।उन्हें विदेशों में काम मिल रही थी। लेकिन उन लोगों ने शिक्षा के माध्यम से समाज में व्याप्त जर्जर परंपराओं को मिटाना चाहते थे। दलित घसीटे चमार, सज्जन खटिक और पिछ़डे सलवंत यादव अपनी उन्नति से ज्यादा अपनी अस्मिता की पहचान देना चाहते थे। उन लोगों ने गाँववालों को दिखा दिया कि दलित और पिछडा भी किसी से कम नहीं है। अच्छी शिक्षा मिलने पर वे भी ऊँचे कुल के लोगों के समान काम कर सकते है, ऐश्वर्य के साथ रह सकते हैं।

भारत की संस्कृति और परंपराएँ सवर्णों के हितों केलिए बनाया है। लेकिन आज भी इन जीर्ण परंपराओं को पकडे रहता है तो, यह उसके ह्रास का कारण बन जाएगा। समय के अनुसार परिवर्तन को अपनाना चाहिए नहीं तो यह अपने पैरों पर

कुल्हाडी मारने के समान हो जाएगें। वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों का काम वेदों का अध्ययन करना, ब्राह्मणों को वेदों की शिक्षा देना और मंदिरों में पूजा करना है। अगर वे इसी को ही पकडे रहेंगे तो गरीबी इनके घर से कभी नहीं जाएगी। इसलिए शिक्षित होना सवर्णों केलिए भी आवश्यक है।

3.8.4. सामाजिक तत्वों की पुनर्व्याख्या

भारतीय सामाजिक व्ववस्था वर्णव्यवस्था पर आधारित है। इसलिए समाज में प्रचलित प्रतीकों के रचयिता वे है और व्याख्याता भी वे ही है। ईसा पूर्व सदी में बनाए इन प्रतीकों को इक्कीस्वीं सदी में भी उसी नज़रिए से देखने की रीति को छोडकर आधुनिक नजरिए से व्याख्या करनी चाहिए।

रामचंद्र त्रिवेदी के पिता गरीब ब्राह्मण थे। पिरगी फार्म ने उसकी किस्मत ही बदल दी।भूख से मर रहे असके परिवार अब आलीशान महल में टाट-बाट के साथ रहते हैं। इस तरह के व्यापार ब्राह्मणों केलिए निषिद्ध है। ब्राह्मण भूखा मरे लेकिन यह काम करने केलिए तैयार नहीं होते। वे अब भी मनु महाराज के कहे रास्ते पर ही चलते है। सच्चे ब्राह्मण केलिए समाज में एक कहावत प्रचलित है बगुला और हंस का। बगुला मछली खाता है और हंस मोती चुगता है। इसकी पुनव्ख्र्या करते हुए उपन्यासकार कहते हैं कि मोती हरदम नहीं मिलते हैं। इसलिए हंस भूखों मरता है। मछलियाँ हरदम तालाब में मिलती हैं इसलिए बगुला जिंदा रहता है। हंस अपने आपको ऊँचा समझता है। यदि हंस अपनी ऊंचाई का अभिमान छोड दें और मछली तालाब से पकड कर खाने लगें तो जिंदा रह सकते हैं।

भारतीय संस्कृति हमेशा दलितों को निकम्मे के रूप में चित्रित करती है। उपन्यासकार यह कहना चाहते है कि यह कीचड़ में फेंकी गयी हीरा है। इसे ढूँढ़ कर, सही तरह इस्तेमाल करने पर भारत की सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

क्यों की भारत की मूल शक्ति यही है। जब तक इस शक्ति की अवहेलना होती रहेगी, तब तक भारत आर्थिक दृष्टि से पिछडा ही रहेगा।

सुअर को मानव सबसे निकृष्ट जानवर मानते हैं। लेकिन आर्थिक रूप से सबसे कीमती जानवर सुअर ही है। देश की अर्थ व्यवस्था सुधारने और भूखमरी मिटाने में इस जानवर का बहुत योगदान है। इसके बालों से स्टान्डेर्ड टूथब्रश बनाते हैं। यह बहुत कीमती है। जिस देश में सुअर पालन प्रमुख है वहां की आर्थिक स्थिति दृढ होती है। सुअरिये का दूध तमाम प्राकार की औषधियाँ बनाने में काम आता है। जीवन रक्षक और काम शक्ति बढानेवाली दवाईयां सुअरिये के दूध से बनाई जाती हैं। इसके बाल बहुत कीमती है। इसके हर अंग उपयोगी है। इसलिए इसका व्यवसाय करनेवाला करोडों कमा सकते हैं।

3.8.5. सवर्ण मानसिकता में परिवर्तन

आज समाज में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। वैश्वीकरण के आधुनिक युग में सारी सीमाएं टूट रही है। लोग अपनी प्रगति केलिए कोई भी काम करने केलिए तैयार है। सवर्ण भी ऐसे सोचने लगा है कि हमें दकियानूसी विचारों से बाहर निकलना है और आज के युग में कोई भी काम करना अधर्म नहीं है।

रामचंद्र त्रिवेदी का जाति से ब्राह्मण होते हुए भी पिगरी फार्म खोलना इस बात का संकेत देता है कि सवर्ण मानसिकता में परिर्वतन आ रहा है। पढाई के बाद रामचंद्र त्रिवेदी ने पूजा का काम न करके दोस्तों के साथ मिलकर एक पिगरी फार्म शुरू किया। गाँव के सभी ब्राह्मणों ने रामचंद्र त्रिवेदी का विरोध किया था। वे सुवरों का पालन करना मेहतरों का काम है,तू मेहतर बन गया है और तू ने सदियों से चली आ रही ब्राह्मणों की श्रेष्ठता की परंपरा को चकनाचूर कर दिया आदि कहकर से हमेशा ताने देते रहे। लेकिन वह झूठी शान केलिए इस उद्योग को छोडने केलिए

तैयार नहीं हुए। ब्राहमण ताने देते रहे और वह काम करते रहे। इस उद्योग ने उसे घर,धन, नाम, इज्जत सब दिया। उसके घर की डगमगाती स्थिति को संभाला।

वर्तमान भारतीय समाजिक व्यवस्था में शाश्वत परिवर्तन लाने केलिए सवर्ण मानसिकता में परिवर्तन लाना जरूरी है। सवर्णों को उसके वैचारिक मंडल में परिवर्तन लाकर उसकी मानसिकता में परिवर्तन लाने पर जोर दिया है। गाँव का पूजारी दया शंकर को एडस हो जाता है। इनके पास जाने केलिए कोई तैयार नहीं होता।सवर्णों ने मिलकर उसे गाँव से बाहर निकालने केलिए योजनाएँ बनायी। उन लोगों ने पूजारी से कहा कि आगे गाँव के बाहर बनायी मडैये में रहना चाहिए। उसे गांव में प्रवेश करने से मना कर दिया। एडस की बीमारी से पूजारी को एहसास हुआ कि छुआछूत और भेद भाव का अपमान क्या होता है। ऐसे समय उनके इलाज का जिम्मा सलवंत यादव,घसीटे चमार, सज्जन खटिक और रामचंद्र त्रिवेदी ने लिया, जिनका विरोध पूजारी हमेशा करता रहता था। रोग के इलाज केलिए इन चार युवकों ने उसे अमेरिका तक ले गया।पैसा पानी की तरह बहाकर उसे रोग से मुक्त किया। गरीबी की विकराल हाथों से पूजारी के घर को बचाया। उनकी बेटियों को नौकरी दी। इसका प्रभाव पूजारी पर पडा और उसका मन परिवर्तित हो गया।अब उसे समझ में आने लगा है कि जिस अंधविश्वास की दुनिया में वह जी रहा है वह स्वार्थी है। दयाशंकर कहते हैं - इन पत्थर की मूर्तियों को जिनको हम देवता कहते रात दिन इनकी सेवा में लगे रहते हैं। इस विश्वास के साथ की यह हमारा कल्याण करेंगी। यह सभी कोरी चीजें है,इन्होंने कभी भी किस मानव का कल्याण नहीं किया है। हमारे संस्कारों को बेवजह इतना धार्मिक बनाकर हमें कर्महीन बना दिया है एवं फिजूल के धार्मिक कर्म कांड में लगा दिया है। “ [44]

अमेरिका से वापस आने के बाद दयाशंकर से ब्राह्मणी आचार विचार सब गायब हो गये।वह ऊपरी तौर पर मंदिर में जाकर पूजा पाठ संपादित करवाते थे। उसका पूरा मन पिगरी फार्म में समा रहता है। उन्हें ब्राह्मण जाति को कलंकित करने और उससे बहिष्कृत होने का डर नहीं था।लोगों के ताने का उन्हें फिर्क ही नहीं था। वह दिन रात सुवरों की सेवा करते रहते हैं। दलित आर्थिक स्थिति मज़बूत करके और मानवीय दृष्टिकोण अपना कर सवर्णों का मानसिक परिवर्तन किया जा सकता है। सवर्णों में आनेवाली परिवर्तन दलितों की अस्मिता को पहचानने की क्षमता उन्हें देगी।

3.8.6. धर्मांधता से मुक्ति

धर्म की आड में समाज में अनेक लोग अपने हितों की पूर्ती कर रहे है।अनेक साधु संत भी इसके पीछे काम कर रहे हैं। इससे देश की बहुत अधिक हानि हो रही है। धर्मांधता भारत को अन्य देशों के मुकाबले पीछे की ओर धकेल रहा है। यह देश की जनता पर ज्ञान की किरणें पडने नहीं देते।दलितों, पिछडों और सवर्ण इनके छल में पडकर अपने परिवार का भविष्य अंधकार में डाल रहे है। धर्मांधता सवर्णों में ज्यादा दिखाई देता है। वे धर्म के ठेकेदार बनकर बैठे है। इसलिए सबसे अधिक नुक्सान उनका ही हुआ है। वे धन और दौलत से कट रहा है। वे गरीबी में गिरते नज़र आ रहा है। उनकी दशा दयनीय होती जा रही है। उन्नति को रोकनेवाली दकियानूसी सोच से सवर्णों को रामचंद्र त्रिवेदी के समान बाहर निकलना चाहिए।

3.8.7. मिथकों का विरोध

रूढ धारणाएं ही मिथक है। भारतीय संस्कृति में मिथकों का भरमार है। इसमें एक है गौ का संबन्ध ब्राह्मण से मानना और सुअरों का दलित से।गौ और सुअर पशू है। दोनों को आर्थिक लाभ केलिए पाले जाते है। हिंदु संस्कृति में, हिंदु समाज में

गौ से जितनी धारणाएँ जुडी हैं वे सब मिथक है। हिंदु धर्मविधि के अनुसार मृत्य के बाद स्वर्गलोक जाते समय एक भयंकर वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। गरुड पुराण के अनुसार जो व्यक्त पुण्यदान में गाय को दान करता है वह यह वैतरणी नदी आसानी से पार कर सकता है।इसलिए जो व्यक्ति मरनेवाला है उसे गोदान अवश्य करना चाहिए।

सुअरदान उपन्यास में इस मिथक पर प्रहार किया गया है। दान तो दान होता है,चाहे वह प्यार, भाईचारा, साम्प्रदायिक सद्भाभावना देशप्रेम या मानव के प्रति लगाव सब दान ही है। वर्णाश्रम का महत्व और ब्राहमण्य का प्रचार प्रसार करनेवाले इस तरह के जर्जरित प्रथा को उखाडकर फेंकने की कोशिश उपन्यासकार ने किया है। स्वर्ग और नरक कल्पना की चीज़ें है,मरने के बाद आदमी इस मिट्टी में लीन हो जाता है। मिट्टी कभी भी गाय की पूँच पकडकर पार नही किया जा सकता।

उन्नासी साल के पूजारी दयाशंकर की मृत्यु के समय ब्राहमणों द्वारा एक बचिया को पूजारी के घर के सामने बांध दिया। मारकण्डेय अग्नीहोत्री बछिया को पूजारी दयाशंकर के पास लाकर उसे दान देने केलिए कहता है। पूजारी ने इसका विरोध करते हुए कहा कि " मैं गोदान नहीं करूँगा। मरने के बाद मृत व्यक्ति केलिए काल्पनिक भवसागर की बात करना मिथ्या है झूठ है। फरेब है।यदि मुझे दान करना पडा है तो मैं प्यार, भाईचारा, साम्प्रदायिक सद्भाभावना, देशप्रेम, जामवरों और मानवों के प्रति लगाव का दान करूँगा। पूजारी दया शंकर मानव प्रेम से प्रभावित होकर गोदान के जर्जर परंपरा का अंत करते हुए सुअरदान करता है। वह अपने पास आये एक सुअर के बच्चे पर हाथ रखते हुए कहते है कि "मैं इसे बहुत प्यार करता हूँ। यह मेरा दान है।" [45]

गोदान के बदले सुअर दान की कल्पना रूपनारायण सोनकर की अपनी कल्पना है। यह मौलिक कल्पना है।उन्होंने एक मिथक के बदले दूसरे मिथक की सृष्टि की। यदि गोदान मिथक है तो सुअरदान भी मिथक है।

गाय का संबन्ध ब्राहमणों से जोडने के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में गाय को विशेष स्थान दिया है। सब कहीं उसके गुणगान का बखान है। दलित प्रतीक सुअर को निकृष्ट मानकर सब कहीं उसका जुगुस्पावह चित्रण ही किया है। उसके गुणों के बारे में नहीं कहा है। ब्राहमणों ने गाय के साथ एक विश्वास जोडा है कि गाय का मूत्र अनेक रोगों में अमृत का काम आता है। रूप नारायण सोनकर यह सवाल यह उठता है कि गौ मूत्र ही अमृत क्यों है।भैंस बैल का मूत्र अमृत क्यों नहीं। वह इस मिथक को तोडते हुए कहते है कि सुअर का मूत्र यौन शक्ति बढाता है। अगर कोई इसे गलत साबित करना चाहता है तो प्रयोग करके देखें।

3.8.8. नयी जाति

भारतीय धार्मिक अंधता में पल रहे हैं। समाज में श्रेष्ठ माने जानेवले लोग दलितों पर अत्याचार कर रहे हैं। मौका मिलते ही से नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। लेखक के मन में पैठी अस्मिता बोध ने एक नयी धारण को जन्म दिया है, वह है गाय और सुअर के संगम से बनी ब्रीड सुगाय।

सुअर फार्म को नीचा दिखाने केलिए और ब्राहमण जाति के गौरव को बनाए रखने केलिए सत्यनारायण त्रिपाठी,मारकण्डेय अग्नीहोत्री,कामता प्रसाद बिष्ठ और सीता रामभट्ट ने सिंहासन खेडा में एक गोशाला स्थापित की। बेह्मणों ने फार्म को तीन सौ गाय को दान में दिया। लेकिन दान में चारा बुत दिनों तक नहीं मिला। गाय की दुर्दशा देख कर गांववालों ने पिगरी फार्म के मालिकों से गायों को बचाने की गुजारिश की। मालिकों ने गोशाला खरीद लिया। सज्जन खटिक ने अमेरिका के

वैज्ञानिकों के मदद ली और चारों पार्टनरों के कल्पना के अनुरूप गाय और सुअर के समागम द्‍वारा एक नयी ब्रीड का सुगाय का आविष्कार किया। उपन्यासकार प्रतीकात्मक रूप में यही कहते है कि अंतर्जातीय विवाह द्‍वारा उत्पन्न नयी जाति ही भारत की जर्जर परंपराओं को तोड डालेगी।

3.8.9. आर्थिक स्वावलंबन

हाशिएकृतों को हाशिएकृत बनाने और उसी स्थिति में बनाए रखने केलिए पुरष समाज या वर्चस्ववादी समाज ने सबसे पहले उसे सेवक बनाया, फिर आर्थिक रूप से परावलंबी बना दिया। सेवा उसका कर्तव्य और मोक्ष प्राप्ति का साधन बनाया। इसप्रकार काम केलिए उचित वेतन देने से वह बच गया। वे उनसे जानवरों के समान काम करवाता रहा और धन कमाता रहा। उसे जिंदा रहने मात्र का अन्न और पुराने कपडे बक्शीश के रूप में देता रहा। हाशिकृतवर्ग चाहे वह स्त्री हो या दलित उनकी सेवा करके अपने आप को आभार मानता रहा। इस आर्थिक परावलंबन से मुक्त होकर आर्थिक रूप में मजबूत होना अस्मिता केलिए आवश्यक है।

गाँव सिंहानखेडा के तीन दलित युवक सज्जन खटिक, सलवंत यादव और घसीटे चमार तकनीकि शिक्षा, के मास्टर है। ये तीन वर्णाश्रम द्‍वारा निर्धारित अपने काम करने केलिए तैयार नहीं थे।इन्होंने अपने सवर्ण दोस्त को भी लेकर अपना व्यवसाय शुरु किया। उस समय उनके गाँव और आसपास के गाँव में गरीबी तांडव कर रहा था। चारों ने लोन लेकर सिंहासन खेडा के पाँच हेक्टर जमीन खरीद लिया और वहां पिगरी फार्म खोला। अच्छी नस्ल के देशी - विदेशी सुअर और सुअरियों को रखे गए। वे यह फार्म यूँ ही नहीं खोला,व्यवस्थित रुप से, पूरी योजना से शुरू किया था। पिगरी फार्म के अंदर सुअरों को खाने केलिए सकरकन्दी कई हेक्टर खेतों में लगाई,पानी केलिए ट्‍यूब वैल की व्यवस्था की गयी। खेतों में तालाब बनाए गए। तीन

सौ सुअर और तीन सौ सुअरियों एक साल में तीन हज़ार हो गये। इनकी सपलाई देश विदेश में होने लगी। कुछ ही सालों में यह फार्म आसमान की ऊँचाईयों को छूने लगे। वे पिरगी फार्म के अंदर ही आलीशान वातानुकूलित कोठी बनाई जिसमें नौ कमरे थे। स्वालंबन का नया इतिहास ही उन लोगों ने रच डाला।

सुअरों की संख्या छह हजार से ऊपर हो गई। सज्जन खटिक कम्पूटर ऑपरेट करता था। सुअरों, सुअरियों और उनके बच्चों के संबन्ध में सारी जानकारियां कम्पूटर में दर्ज करता था। कौन कब पैदा हुआ, कितने वजन के हुए, लेन देन का पूरा विवरण रखता था। उनके पास घाटा मुनाफा एवं आयकर रिटर्न का पाई पाई रहता था। सलवंत यादव सुअरों को अच्छे से अच्छा भोजन उपलब्ध कराते थे। वह सुअरों के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखता था। सभी सुअरों को समय से इंजक्शन और दवाईयाँ देते थे। कोई सुअर आज तक उनके पिगरी फार्म में नहीं मरा था। घसीटे चमार ने अपने बार-एट-लॉ की डीग्री का प्रयोग व्यापार की कानूनी दाव पेंचों में सफलता पूर्वक करते थे। सुअरों की जो खेप देश के अंदर और बाहर भेजी जाती थी, तुरंत रुपये का भुगतान निर्धारित समय के अंदर होता था। माल और पैसे के हडप से हमेशा व्यापार डूब जाता है। लेकिन घसीटे चमार के रहते अब भी एक पैसा नहीं डूबा था। इसलिए पिगरी फर्म दिन रात चौगुनी उन्नति करता रहा। छः सालों के अंदर वे करोडों के आदमी बन गये।

3.8.10. मानवता

मानवता दलित साहित्य का मूल मंत्र है। दलित वैयक्तिक विद्वेष से ज्यादा मानवता पर विश्वास रखता है। सज्जन खटिक,सलवंत यादव, घसीटे चमार और रामचंद्र त्रिवेदी ने मानवता धर्म की स्थापना केलिए पिगरी फार्म की सथापना की।वहां दलित,पिछडे, अल्पसंख्यक, नारी और गरीब सवर्णों को नौकरी देकर उन्हें

अमन, चैन की ज़िन्दगी प्रदान किया। उनके पिगरी फार्म में जात - पांत,ऊच नीच और भेद-भाव केलिए कोई स्थान नहीं था।

पूजारी दयाशंकर पहले चारों को और उनके सुवर फार्म का घोर विरोध किया करता था। वह उन्हें बदनाम करने का कोई भी अवसर नहीं छोडता था। इसमें दूसरे लोग भी उसकी सहायता करते हैं। लेकिन जब वह एडस का शिकार हो जाता है तो सब उसका साथ छोड देते हैं। उच्च वर्ग के लोग उसे घर से निकालकर गांव से दूर रहने केलिए मजबूर करते हैं। तब दलित जाति का संकटा प्रसाद लोगों को समझाते हुए कहता है कि एडस छूने से नहीं फैलता। चारों पार्टनरों का पूजारी को अमेरिका ले जा कर इलाज करता है और उनकी बेटियों को पिगरी फार्म में नौकरी देता है।ये उनके विशाल मानव प्रम का दृष्टान्त है।वे किसी से दुश्मनी नहीं रखते,जरूरतमंदों केलिए काम करना वे अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं।

चारों पार्टनरों को बर्बाद करने केलिए कमर कसनेवाला दूसरा आदमी है गाँव प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी। इन्हें भी उन लोगों ने मानवता से परास्त किया। जलने से सत्यनारायण त्रिपाठी का चेहरा कुरूप हो गया था। इसका इलाज करने केलिए त्रिपाठी इन लोगों के पास आता है और सहायता माँगता है। उन लोगों ने त्रिपाठी द्वारा किया सभी पापों को भूलकर सहायता करता है। इसप्रकार वह भी चारों पार्टनरों प्रभावित हुआ। वह भी पिगरी फार्म में जी जान से काम करने लगा।

चिकवा प्रधान आचार्य को यही समझाता है कि बच्चों का भविष्य सुधारें। उन्हें जाति प्रथा का पाठ न पढाकर मानवता का पाठ पढाओ।गांव के डाक्टर को समझाया कि गरीबों तथा दलितों की मदद करो। सरकार द्वारा दी गयी दवाओं को गरीबों को दो।

3.8.11. नयी सोच

सामाजिक पुनसंघटन दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य है।इसके लिए तरह तरह के उपाय दलित साहित्य में दिखाई देते है।हाशियेकृतों की अस्मिता की लडाई की अंतिम परिणति भी यही है।इस लक्ष्य की प्राप्ति केलिए एक नया और सफल तरीका इस उपन्यास में आज़माया है। समाज द्वारा नीच माने गये लोग मिलकर संस्कृति द्वारा निकृष्ट माने गए एक जानवर द्वारा समाज में व्याप्त जर्जर परंपराओं को तोडकर एक नये समाज की स्थापना करने की सोच बिलकुल नयी है।

समाज के एक बडे हिस्से के कार्यकुशल लोगों को जाति के नाम पर और लिंग के नाम पर हाशिये की ओर धकेलने के कारण भारत अब तक अविकसित रहा है।दुनिया के मानपावर में दूसरा राष्ट्र होने पर भी भारत हमेशा पिछडा रहा है। भारत के अस्सी प्रतिशत मानपवर हाशिये पर खडे है। उसकी कार्यकुशलता के बारे में इतिहास,पुराण किसी में कोई बखान नहीं है। राजनीति उसका शोषण करती रही और उसे आर्थिक रूप से और परावलंबी बनाती रही। इस अधम,निकम्मा और नीच माने जानेवाले लोगों को आर्थिक सहारा देकर, स्वावलंबी बनाकर,उसके सामाजिक,शैक्षिक स्तर को ऊँचा करके उसे देश की बपौती बनानकर देश को दुनिया का न.वन बनाने का रास्ता इसमें दिखया है।

पिगरी फार्म में गाँव के सभी गरीब लोग काम कर रहे हैं।यह व्यवसाय परंपरागत जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था पर सोचने केलिए लोगों को मजबूर करता है।पुरानी व्यवस्था को अंधों की तरह माननेवालों को हटकर सोचने केलिए बाध्य करता है।यह बदलाव ऊपरी नहीं हैं। यह समाज एक एक कण में छिपे समाजिक विद्रूपताओं को नीचे से उखाडकर फेंकता है। एक एक व्यक्ति के बदलाव पर जोर दिया है। भौतिक क्रांति के द्वारा बौद्धिक क्रांति पर बल दिया है।

3.8.12. नारी अस्मिता

नारी अस्मिता के तीन प्रसंग उपन्यास में मिलते हैं।नारी जहाँ है वहाँ उसका शारीरिक शोषण भी है। नारी को अपनी इज्जत केलिए संघर्ष करना चाहिए। यह संघर्ष उसमें अस्मिता बोध जगा देगा। ईंट भट्ट् में काम करने वाले मज़ूरों के हाथ में कुछ भी नही होते। न खेती है न व्यवसाय,न मकान। वे रोज़ कमाकर रोज़ खानेवाले मज़दूर हैं। ठेकेदार इन गरीब मज़दूरों की लडकियों और स्त्रियो का यौन शोषण करते हैं। ईंट के भट्टों में धरमू पारसी और उसके पत्नी सन्नो जैसे मज़दूरों का शोषण जयंत सिंह जैसे ठेकेदार करते रहते हैं। मजदूरी कम देना, जल जैसी अवश्य वस्तुओं पर कडी पाबंधी रखना, खुंखार गुण्डों द्वारा उनको जबर्दस्ती रोक रखना आदि। सन्नो और उसके पति यहाँ से भागने की कोशिश करते हैं तो गुण्डे उन्हें पकड लेते हैं और मालिक सन्नो की इज्जत लूटने की कोशिश करता है। तब वह सिंहिणी का रूप धारण करती है "तू मुझे क्या ले जाएगा। तेरे में हिम्मत हैं तेरी मूछ न उखड लूँ तो मेरे नाम सन्नो नहीं है- तू हिजडा है। अगर तू हिजडा न होता तो औरत पर इस तरह अत्याचार न करता। छोड मेरा हाथ नासपीटे..दादा दयादीन तुम लोग आओ।इस हरामी को ठीक कर दो।आज यह मेरे साथ अत्याचार कर रहा है कल तुम्हारे लडकियों और स्त्रियों के साथ करेगा।"[53] ऐसी विषम परिस्थिति में भी वह अपना हिम्मत नहीं हारती।

भट्टे लोगों के सामने जसवंत सिंह उसका हाथ पकड लेता है उसे घसीट कर ले जाता है। वहां उपस्थित कोई भी व्यक्ति उसे बचाने की कोशिश नहीं करता। वह हिम्मत नहीं हारती। जसवंत सिंह को गाली देती है। साथ ही साथ लोगों को जसवंत पर वार करने केलिए उक्साती भी है। सन्नो ने जमीन पर घसीडते हुए एक हाथ से ईंट का आधा टुकडा लिया और जय सिंह के सर पर ज़ोर से मारा।यहाँ नारी के

सशक्त रूप उभर कर आती हैं। अपने इज्जत पर रखनेवाले सिर को तोडकर सिंहिणी के समान खडी होती है। नारी की तरफ से उठनेवाली उँगलियाँ ही नारी शोषण का एक मात्र उपाय है। अपने ऊपर रखनेवाले हर एक हाथ को रोकने की शक्ति नारी के तन और मन में होना चाहिए।कमीनों के हाथ को तोडने का हैसला उसे खुद बनाना चाहिए।

भारत में नारी का रूप लेकर जन्म लेना ही एक शाप है। दलित नारी होकर जीना कूबडा में फोडे के समान है। ग्राम प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी एक गरीब दलित लडकी सुनयना को अपने रखैल बनाकर रखता है। वह त्रिपाठी के कैद में रहती है।उसपर हमेशा पहरा रहता है। एक दिन अवसर मिलते ही सुनयना भाग जाती है। त्रिपाठी उसे पकडता है। असहाय होने पर भी वह सत्यनारायण त्रिपाठी से विद्रोह भरे स्वर में कहते हैं कि – " ठाकुरों, कुर्मियों, यादवों और तुम्हारी जाति ब्राह्मणों की बहुत लडकियाँ खूबसूरत हैं। तुम उनकी तरफ आँख उठाकर देखने की हिम्मत नहीं करते हो। क्योंकि वे लोग दबंग है। यदि तुम ऐसा करिहो तुमका अपनी जानसे हाथ धवाय का पडी।"[54] त्रिपाठी और उसके दोस्त उसे डंडों से मारते हैं। उसी समय उसकी छोटी बहन मैना हंसिया लेकर आती है। मैना की चंडी रूप देखकर वे डर जाते हैं और सुनयना को छोड देते हैं।

तीसरा प्रसंग डिप्टी कलक्टर रतनलाल की परित्यक्ता पत्नी अनसूया का है। अनसूया अपनी तथा बेटी की पेट भरने केलिए खेतों में काम करती है। वह ससुर रामदीन के साथ खेत पर धान के पैदे रोपने जाती है।मातादीन चतुरसिंह की बुरी नीयत देखकर अनसूया को सचेत करता है।तब अनसूया कहती है,चाच मैं अपने साथ गंडासा रखती हूं।ठाकुर चतुरसिंह उसपर हमला करता है। चतुरसिंह उसके बाल पकडकर ट्यूब वैल की कोठरी की ओर घसीटता है।मदद करने केलिए आये मातादीन

को ठाकुर ने चाकू से मारता है। इस बीच अनसूया ठाकुर पर गंडासा से वार करती है।मरते मरते ठाकुर अनसूया को चाकू से मारता है।अनसूया मरती है लेकिन एक दुराचारी और अत्याचारी ठाकुर को मार कर और दलित नारी की अस्मिता के भाव को इन शब्दों में व्यक्त कर कि -"काली,चण्डी, दुर्गा का मैं रूप हूं। सबकाली,चण्डी,दुर्गा सब दलित महिलाएं देवियाँ नहीं बल्कि कर्मयोगी महिलाएं थीं जो भी कामी या दुराचारी व्यक्ति उनके पास गया था वह तरा नहीं मरा था।"[55]

नारी का सशक्त रूप इस उपन्यास में मिलता है। चाहे वह अनसूया हो सुनयना हो या उसकी बहन मैना। प्रो.ओमराज ने सोनकर को हमेशा दलित उपन्यासकार की हैसियत से दलित नारी की अस्मिता को गरिमा प्रदान करनेवाला माना है।

3.8.13. जातिवाद का विरोध

जाति की ज़हर बच्चों पर स्कूल से भी डाली जाती है। कानूनी प्रावधान होने पर भी दलित और सवर्ण बच्चों को स्कूलों में अलग अलग पंक्तियों में बिठाकर खिलाते है।दलित महिला को भोजन बनाने नहीं देता।इस प्रकार का व्यवहार स्कूल में भी कायम है तो बच्चे जो भेद भाव घरों से सीखकर आते हैं वे सुधरने के बजाय स्थिर हो जाएँगे। स्कूल में बच्चों को जाति के अनुसार अलग अलग पंक्तियों में बिठा कर खाना देते थे।संकटा प्रसाद गांव प्रधान बने के बाद सभी बच्चों को एक ही पंक्ति में बिठाया। स्कूल में खाना बनानेवाली दलित औरत को हटाने का सवर्णों अनुरोध भी उन्होंने नहीं माना-"दलित हो या गैर दलित,सभी बच्चे एक पंक्ति में बैठकर खाना खाएँगे। ये सारी बातें समाप्त होना चाहिए।वरना शेड्यूल्ड कास्ट-शेड्यूल्ड ट्राइबस के अंतर्गत केस दर्ज होने पर लोगों की जमानत भी नहीं होगी।बच्चों को

पढाइये। सभी मानव एक हैं, न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। न कोई उच्च जाति का है न कोई नीच जाति का।सभी एक ही परमपिता की संतानें हैं।"[56]

3.8.14. गाँवोन्मुखता

सुअरदान में सोनकर की विचारधारा अंबेडकर की विचारधारा से आगे चलती है। अंबेडकर का कहना था कि दलितों का उद्वार गाँव को छोडकर शहर में रहने बसने में है। ज्यादातर दलित साहित्यकार भी इस पर विश्वास रखते हैं। लेकिन इसके बदले रूपनारायण सोनकर ने शिक्षित दलित घसीटे चमार, सलवंत यादव और संकटा प्रसाद चिकवा शहर में जाकर अपनी अस्मिता केलिए शहर में न जाकर गांव में ही रहते हैं। सवंत,घसीटे और सज्जन गांव में ही एक व्यवसाय शुरु करके गाँव के ऊँचे माननेवालों को यह दिखाते हैं कि वह कौन है।जाति में नीचा होनेपर भी वे किसी सवर्ण से कम नहीं है। संकटा प्रसाद शहर से आकर गाँव में रहता है और अपनी कोशिश से सवर्णों की लूट फरेब को सभी के सामने बेनकाब करता है। इसका विरोध करके सवर्णों को सबक सिखाता है। सवर्णों के परास्त करके गांव प्रधान भी बनता है। जो लोग उन्हें दलित कहकर बेकार मानते थे। उनके सामने वे अपनी अस्मिता साबित करते हैं।

दलितों को गांव से पलायन नहीं करना चाहिए। गांव में रहकर ही अपनी तथा दूसरे दलितों की अस्मिता के लिए काम करना चाहिए। क्योंकि ज्यादातर दलित गांव में ही रहते हैं। इसकेलिए बहुत अधिक साहस की जरूरत है। उपन्यासकार दलितों को यह साहस लेने का आदेश देते है।इसमें दलितों ने गांव को अपने अनुकूल बना लिया। नब्बे के दशक में पूँजीवाद का, वैश्वीकरण का जो युग आया था, उसे दलित बुद्धिजीवियों के एक वर्ग ने दलित मुक्ति केलिए अपनाया।

गाँवों को बचाते हुए देश को संपन्न बनाने का सपना सोनकर जी देखते हैं।गाँव प्रधान संकटा प्रसाद कँ मुँह से वह कहलवाता है - "यदि गाँव संपन्न दिखेगा तो पूरा देश संपन्न होगा।इस देश की संपन्न बुराइयाँ हमें हटाना है।यह कंप्यूटर और इंफर्मेशन टेकनोलजा का जमाना है।इस गाँव मं इस वैज्ञानिक क्रान्ति लाना है।गाँववालों को आधुनिक भारत का हिस्सा बनाना है।"[57]

3.8.15. संगठन

दलित, गैर दलित पिछडे,सवर्ण किसी भी जाति की चिंता किए बिना सभी को एक साथ एक जुट होकर काम करना चाहिए। संगठन में असंभव को भी संभव करने की शक्ति है। गुजरात में माधव सोलंगी जिस समय मुख्य मंत्री थे। उस समय उन्होंने 'क्षहड' को आगे बढने की बात की। 'क्ष' अर्थात् क्षत्रिय, 'ह' अर्थात हरिजन व अन्य पिछडी जातियां तथा 'ड' अर्थात मुस्लिम। इससे प्रेरणा लेकर सुअरदान में लेखक ने चार जाति के संगठन की बात की है।

इस उपन्यास में संगठन का नया रूप मिलता है। यह अंबेडकर के संगठन तत्व को आगे की ओर ले जाते है। उपन्यास यही कहते है कि दलितों में संगठन चाहिए, साथ ही साथ दलित और गैर दलित में भी संगठन होना चाहिए।तकनीकि शिक्षा प्राप्त चार युवकों ने गाँव के चौमुखी विकास केलिए संगठित हुए। इसमें रामचंद्र सवर्ण है बाकी तीनों दलित है। चारों ने अलग अलग डिग्रियाँ प्राप्त की है। इन्होंने एक जुट होकर एक नया कारोबार शुरू किया। इस में आनेवाली समस्याओं को वे जल्द ही समाधान किया। इस व्यवसाय के द्वारा उन्होंने शिक्षित अशिक्षित बेरोज़गारों को नौकरी दी। गाँव में एक ऐसा वातावरण पैदा किया जहाँ भाईचारा, प्यार और समानता भरा है।

चारों के संगठित परिश्रम से सिंहासनखेडा नामक गाँव अंतर्राष्ट्रीय गांव बन जाता है जिसकी समृद्धि देखकर अत्याधुनिक शहर भी मात खा जाएँ। यहाँ देश विदेश के लोगों को रोजगार देते थे। पगरी फार्म के द्‍वारा इन लोगों ने गाँव की आर्थिक विषमताओं को दूर किया। साथ ही साथ गांव को वर्णव्यवस्था के करालहस्तों से मुक्त भी किया।

3.8.16. अंतर्जातीय विवाह

पूजारी दया शंकर की तीन बेटियों की शादी दलित युवाओं से हुई है। सज्जन खटिक के साथ तराना, घसीटे चमार के साथ शिमला की और सलवंत यादव के साथ हिंमला का। इन तीनों दलितों ने अपने गुण और योग्यता से समाज में नाम कमाया।लेकिन इन्हें मानने केलिए पूजारी दयाशंकर तेयार नहीं थे। उनके नजरों में वे सुअर फार्म चलाने वाले दलित ही थे। लेकिन विपत्ति के समय,जब अपनों ने भी उसका साथ छोडा था तब इन लोगों ने ही उसका साथ दिया और उसकी डूबती जान को बचाया। उस दिन से उसे मालूम हुआ कि मानव को जाति से नही इन्सानियत से आंकना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपनी बेटियों की शादी इन युवाओं से करवाया।वे सज्जन,घसीटे और सलवंत को दलित नहीं सच्चे मनुष्य मानते हैं।इसलिए एक पिता होने के नाते वह अपनी बेटियों की शादी इन तीनों युवाओंसे करना अपना भाग्य मानता है। इसलिए पूरे ब्राह्मण जाति के विरोध का तिरस्कार करते हुए दयाशंकर ने कहा -" मेरी तीन बटियां बालिग हैं। इन्हों ने अपनी पसंद के लडके शादि केलिए चुने हैं। मैं इनका बाप हूँ मैं इन सभी शादियों से सहमत हूं।"[58]

3.8.17. सवर्ण - अवर्ण संयोग

दलित शहरों की अपेक्षा गाँवों में पीडित, शोषित आर्थिक रूप में विपन्न है। दलितों को अस्मिता केलिए भारतीय जाति व्यवस्था को मिटाकर यहाँ एक

संवेदनापूर्ण, मानवतायुक्त समाज बनाना है। दलितों की कोशिशों से काम तो चलेगा, अगर इस कोशिश में सवर्णों का साथ भी मिल जायें तो बुलंदी की सीढियां दौडकर चढ़ सकेंगे ।निर्धनता जाति की खाई को गहरा बना देता है। जाति बनाए रखने में गरीबी का स्थान बहुत बडा है। दलितों से कमर तोडकर काम करवाते है लेकिन उसे उसके अनुसार वेतन नहीं देता। उससे बेगारी भी करवाई जाती है। यह उसे सवर्णों के अधीन रहने केलिए मज़बूर करता है। क्योकि उसके पास न घर है न जमीन। जो काम उसे दलित बनाए रखता है उसे तोड नहीं पाते। इसे तोडने केलिए दलित और सवर्ण युवक मिलकर एक नयी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करता है। यह दलित की अस्मिता के नये क्षितिज का निर्माण करता है। इससे निकले प्रकाश से पुरानी जर्जर परंपराओं की दीवार अपने आप गिर जाती है।

दलित सलवंत यादव, घसीटे चमार और सज्जन खटिक ने सवर्ण रामचंद्र त्रिवेदी से मिलकर एक सुअर फार्म शुरु किया। इस तरह का संयोग समाज में एक होकर जीने की चाह को बढावा देते हैं।चह दलित ब्राहमण संयोग लोगों को जाति से परे होकर सोचने की प्रेरणा देता है। उन्होंने यह उद्योग अशिक्षित,शिक्षित और बेरोजगार व्यक्तियों को नौकरी देने के उद्देश्य सेशुरु किया था। इन चारों ने मिलकर इस व्यवसाय केलिए एक मन होकर काम किया। ये कभी भी आपस में लडते झगडते नहीं थे। ये जाति को लग रखकर मानवता की स्थापना केलिए काम करते थे। जाति के बारे में वे सोचते तक नहीं है।

सवर्णों द्वारा बनाए गये समाजिक नियमों को संघर्ष द्वारा दलित मिटा सकते हैं। लेकिन समाज से इसके अस्तित्व को पोंछ डालने केलिए इस पर सवर्णों का मोहर लगाना ज़रूरी है।भारत के पिछडेपन का कारण गरीबी है। इस गरीबी से मुक्ति पाने का सुझाव पिगरी फार्म के द्वारा देता है।गरीबी किर्फ सिंहासन खेडा के

ही नहीं संपूर्ण भारत की समस्या जानकर इसे अपनी शिक्षा और मेहनत से दूर करने का प्रयास करता है। भेदभाव को तिलांजली देकर इंसान की भुजाओं की शक्ति को वे भारत के विकास केलिए माँगते हैं।

3.8.18. आत्मविश्वास

आत्मविश्वास एक ऐसी चीज़ है जो अनहोनी को भी होनी बनाती है। हाशियेकृतों में आत्मविशावास की कमी है वह दूसरों को चिढाने पर जल्दी चिढ़ जाते हैं। सलवंत यादव, सज्जन खटिक, खसीटे चमार तीनों अपने जातिगत पेशे को छोड़कर अपनी शिक्षा के आत्मविश्वास पर नया कारोबर किया था।गाँव के सभी सवर्ण ने इसका विरोध किया। लेकिन वे इससे परेशान नहीं होता। वे इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। वे दिल और दिमाग से अपने काम में लगे रहते हैं और अपने लक्ष्य प्राप्त करने की कोशिश करते रहते हैं। वे जितने अमीर होते गये उतना विरोध भी घटता रहा।उनके आत्मविश्वास और लगन के सामने सभी विरोधी परास्त हो गए।उन्होंने अपनी व्यक्तित्व से दलितों को यही सीख दी कि कुत्तों के भौंकना सुनकर डरना नहीं चाहिए।प्रतिबंधों को एकजुट होकर सामना करना चाहिए।

आत्मविश्वास मानव की आंतरिक शक्ति है।हाशियेकृतों की अस्मिता का मूल इस आत्मविशावस पर निर्भर है।विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने केलिए आत्मविश्वास अपनाना बहुत ही आवश्यक है।आत्मविश्वास आदमी में अदम्य शक्ति ला देता है।संकटा प्रसाद चिकवा एम.ए तक पढा है।वह अपनी अच्छी नौकरी छोडकर गांव वापस आता है।लेकिन यहां पूरा गांव सवर्णों के आतंक से आतंकित था।वे आत्मविश्वास के साथ आगे बढता है और दलितों और नारी को शोषण से मुक्त कराता है।

3.9 निष्कर्ष

दलित उपन्यास दलित पीडा और शोषण के बयान से ज़्यादा मुक्ति का दास्तान है।जिसकी लाठी उसकी भैंसवाले समाज में वर्चस्ववादियों द्वारा बनायी गयी महानता से मुक्त होने का प्रयास अस्मिता का पहला कदम है।सदियों से मुट्ठी भर के विचारकों द्वारा श्रेष्ठता का प्रमाण पत्र मिलने वाले लोगों के गुणगान सुनकर अपने आप को तुच्छ माननेवाले लोगों में अस्मिता का बोध जगाना दलित उपन्यास का लक्ष्य है।इसलिए इन उपन्यासों में दलितों की पीडा का दास्तान नहीं है। इसमें हाशियेकृतों के अस्तित्व पर प्रकाश डाला है और उसकी अस्मिता की तलाश की है।

सभी उपन्यासों में एक बात पर जोर दिया है कि हाशियेकृतों को अपनी अस्मिता कलिए संघर्ष करना चाहिए लेकिन संघर्ष शिक्षा के बलबूते पर होना चाहिए।सदियों से हाशिये की ओर धकेल दिये गये लोगों के दिल और दिमाग अंधेरी गुफाओं के समान हैं।उन गुफाओं में अज्ञान और अंधविश्वास की खाईयाँ हैं। शिक्षा व्यक्ति के ज्ञान चक्षुओं को खोल देती है।शिक्षा से ही इन खाईयों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।शिक्षा मानव को सभ्य बनाती है।ज्ञान की अनंत दिशाओं को खोल देता है।इसलिए मानव के बौद्धिक विकास होता है।बातों को सीमित दायरे से नहीं विभिन्न पहलुओं से देखने और परखने की क्षमता देती है। अस्मिता की तलाश केलिए उन्हें व्यापक और गहरे ज्ञान की आवश्यकता है। क्योंकि हाशियेकृतों को एक सुव्यवस्थित, सुगठित,सुप्रचारित और सुव्यवस्थापित जीवन रीति और सामाजिक व्यवस्था से लडना है।यह आसान काम नहीं है।आर्यों के दर्शन में छिपी शोषण तंत्र को समझने केलिए हाशियेकृतों को शिक्षित होना चाहिए।नहीं तो मानव धार्मिक गुहांधकार में फँसते रहेंगे।

दलित उपन्यास के सभी नायक अपने दलितपन से मुक्ति का प्रयास व्यक्ति शिक्षा के द्वारा ही करते हैं।इसके बाद वे समान दुख भोगनेवाले दूसरे लोगों को समझाते हैं,असलियत की जानकारी देते हैं और उन्हें संगठित करते हैं।उनमें चेतना की जागृति का संदेश भरते हैं।अंत में एकजुट होकर अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों का विरोध करते हैं और वर्चस्ववादी नियमों को तोडकर एक नये समाज की स्थापना की कल्पना भी इसमें है।इसके लिए अंतर्जातीय विवाह और बौद्ध धर्म से लगाव भी उपन्यास में है। जाति प्रथा को तोडने केलिए अंबेडकर ने सभी दलितों को बौद्धधर्म में शामिल कर उन्हें समुदाय के रूप में बदलने का सपना देखा था।

कुल मिलाकर देखने पर दलित उपन्यास अंबेडकर के दलित उद्धार का संदेश शिक्षित हो,संगठित हो और संघर्ष करो के कार्यान्वयन पर बल देते हैं।

संदर्भ सूची

1.डॉ.कालीचरण स्नेही	हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता	पृ 81
2. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 41
3. वही -		पृ 38
4. वही -		पृ 19
5. वही -		पृ 69
6 वही -		पृ 85
7. प्रेम कपाडिया	मिट्टी की सौगंध	पृ 36
8. वही -		पृ 27
9. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 10
10. वही -		पृ 95
11. वही -		पृ 102
12. वही -		पृ 55
13. वही -		पृ 46
14. वही -		पृ 44
15. वही -		पृ120
16.कावेरी	मिस रमिया	पृ 65
17. वही -		पृ 32
18. राज किशोर	हरिजन से दलित	पृ161
19. कावेरी	मिस रमिया	पृ22
20. वही -		पृ21
21. अजय नावरिया	उधर के लोग	पृ 53
22. वही -		पृ 55
23.उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ186
24. वही -		पृ 74
25. वही -		पृ 237

26. वही - पृ 76

27. वही - पृ 76

28. वही - पृ 195

29. वही - पृ 223

30. वही - पृ 47

31. वही - पृ 171

32. वही - पृ190

33.एस.एल दोषी और पी.सी जैन भारतीय समाज -संरचना और परिवर्तन पृ410

34.मोहनदास नैमिशराय आज बाज़ार बंद है पृ 90

35. वही - पृ 91

36. वही - पृ122

37. वही - पृ 105

38. वही - पृ 65

39. वही - पृ 128

40. वही - पृ 141

41. वही - पृ 140

42. वही - पृ 68

43.रूपनारायण सोनकर सुअरदान पृ84

44. वही - पृ 160

45. वही - पृ 26

46. वही - पृ 31

47. वही - पृ 115

48. वही- पृ 49

49. वही - पृ 45

50. वही - पृ 92

चौथा अध्याय

हाशियेकृतों की अस्मिता की तलाश हिंदी दलित उपन्यासों में

(सन् 2010 के बाद)

इक्कीसवीं सदी के सामाजिक ,सांस्कृतिक परिवर्तन ने दलित उपन्यासों पर गहरा असर छोडा है।इक्कीसवीं सदी के पहली दशक के दलित उपन्यासों ने अस्मिता केलिए जो राहें दिखायी हैं वे इसके बाद विस्तृत बन गयीं।बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में उद्भूत हिंदी दलित उपन्यास अपनी अप्रौढता को छोडकर प्रौढता की ओर अग्रसर होने लगा।भारतीय समाज को नये परिवेश दिलाने केलिए इच्छुक दलित उपन्यासकार हाशियेकृतों को अपने में जो शक्ति है उसे पूर्ण रूप में लगाने केलिए कहते हैं।शिक्षित होकर और संगठित होकर संघर्ष करने जो संदेश पहली दशक के उपन्यासों का प्रमुख स्वर है।शिक्षा को मिला प्रचार के कारण हाशियेकृत वर्गों के शिक्षितों की संख्या में अभूतपूर्व बढावा आया।शिक्षा प्राथमिक और माध्यमिक स्तर से भी उठकर स्नातक और स्नातकोत्तर तक पहूँच गयी।नौकरी के क्षेत्र में भी यह अंतर दिखाई देने लगा।इसका गहरा असर दलित उपन्यासों पर भी पडा है।

4.1. डंक (2011)

डंक उपन्यास में हाशियेकृत वर्गों की दलित अस्मिता पर ज़ोर दिया है।दलित अस्मिता की कोशिशें गाँवों से शुरू करनी चाहिए।

4.1.1. दासता का विरोध

दलितों को दास मानने की प्रथा भारतीय संस्कृति की विशेषता है। दलित किसी भी पद पर पहूँच जाय सवर्ण उसे उस पद का सम्मान देने केलिए तैयार नहीं होते। उसी प्रकार दलित सवर्णों की सेवा करना ही जीवन का लक्ष्य समझते है। ये दोनों मानसिकताएँ दलित अस्मिता केलिए घातक है। स्वस्थ समाज केलिए इसका इलाज करना बहुत दरूरी है। इसकेलिए दोनों में जागृति लाना बहुत आवश्यक है। सवर्णों के लिए, दलित जिस पद पर भी बैठे,दलित ही है। राजनीति में आरक्षण मिलने के कारण अब गाँव का प्रधान होने का अवसर दलितों को भी मिल रहा है।

लेकिन होता यह है कि सवर्ण अपने किसी दलित नौकर को चुनाव में खडे करते है। चुनाव जीतने के बाद प्रधान तो दलित बनती हैं, लेकिन राज करते है ठाकुर या चौधरी।

सीता पुर गाँव का प्रधान सोते लाल दलित है। वह पहले ठाकुर अमन सिंह के यहाँ नौकर थे।ठाकुर अमन सिंह ने उसे चुनाव में खडा किया था। इसलिए शासन का डोर ठाकुरजी के हाथों में है। सोतेलाल को वह अब भी अपना नौकर ही मानता है। वह अपनी बेटी की शादी में उसे बुलाया।उन्हें एक ग्राम प्रधान की हैसियत से नहीं, एक नौकर की हैसियत से बुलाया।नौकर भी कई स्तर होते है। ऐसे भी नौकर है जो ठाकुर का बायाँ हाथ है। ऐसे नौकर कार्यक्रम के आयोजन, अतिथियों के सत्कार सभी के प्रबंधक के रूप ठाकुर के साथ रहते हैं। लेकिन सोते ऐसे दर्जे का नौकर नहीं है। सोते को बहुत निचले स्तर का नौकर ही माना। अतिथियों केलिए बने शामियाने में उसे स्थान नहीं दिया। उसे बारातियों के जूठन बर्तन धोने का काम ही दिया। उसे अन्य दलितों के समान ज़मीन पर पत्तल रखकर ही खाना दिया।

एक गाँवप्रधान के साथ ऐसा व्यवहार देखकर विराट को गुस्सा आया। उन्होंने इसका विरोध किया तो ठाकुर ने खुलकर कहा कि उनके केलिए सोतेलाल गुलाम है, जिन पर उनका पूरा अधिकार है।सोते ग्राम प्रधान होने पर भी उसकी जाति के आधार ही इज्जत देने का हठ करनेवाले ठाकुर से विराट कहता है " सरकार और मेरी नज़रों में यह गाँव का राजा है जिनको आपने नौकर बना दिया है।प्रदेश का मुख्य मंत्री, देश का प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति सर्वोच्य होते है ये लोग वी .वी.आई .पी की श्रेणी में आते है।ग्राम प्रधान भी वी वी आई पी है।आप सोते लाल के अपमान नहीं कर रहे है,बल्कि इस पद का अपमान कर रहे है।"[1] सवर्णों के सिर पर से जातीयता के भूत को सबसे पहले निकालना है। वे भारत के सांसदीय कायदे

कानून मानने के लिए तैयार नहीं हैं। बडे बडे शहरों में भी दलितों को सम्मान देने केलिए कोई तैयार नहीं होते,तो गाँवों की हालत कहने की आवश्यकता नहीं है।

4.1.2. जागृति

दलित अपने अधिकार के बारे में नहीं जानते। वह अब भी मानसिक रूप से सवर्णों का गुलाम है। सोतेलाल कर्मठ,समाज सुधारक और गाँव का चौतरफा विकास करनेवाले ग्राम प्रधान है। लेकिन सोतेलाल के मन और मस्तिष्क पर उच्च जाति रूपी विषैला डंक चुभा है। इसलिए गाँव प्रधान बनने के बाद भी वह खुद को ठाकुर का सेवक ही मानता है।उसमें अपनी एहसियत का अंदाज़ा नहीं है। दलितों को अपनी अस्मिता केलिए सबसे पहले अपने मन और मस्तिष्क में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहिए। दलितपन की जडें उसके मनसे शुरू होती है, उसका अंत भी वहाँ ही होना है।

विराट ने भरी सभा में प्रधान के सम्मान केलिए आवाज़ उठाया था। विराट के शब्दों ने सोते में अस्मिता बोध जगाया। अतिथियों के सामने अपमानित प्रधान के मन में आत्मसम्मान की भावना ओतप्रोत हुई। तब तक इसे अपने हिस्से का भाग्य समझकर खुश रहनेवाले प्रधान ने कहा " ठाकुर अमन सिंह ने मुझे यदि एक दूसरे के मदद करने के उद्देश्य से बर्तन धुलवाये होते तो मुझे कोई ग्लानि न होती। उसने मुझसे यह कार्य अपना नौकर समझकर करवाया है। इससे मेरे दिल को चोट लगी है। मुझे दलित होने के नाते सभी अतिथियों के सामने लजित करवाया।"[2] इसप्रकार विराट सोते में अस्मिता का एहसास कराता है।जाति दलितों को दलित बनाये रखने का मूल आधार है।जाति के आधार पर दलितों पर लेदे गये सेवा का काम असल में उसकी अस्मिताबोध को कुचल डालता है।

4.1.3. काम का विरोध

भारत में काम ही जाति है। इसलिए काम को जो इज्जद मिलती है वही इज्जत जाति को भी मिलती है। इसलिए जाति तोडना है तो सबसे पहले काम तोडना है। प्रत्येक को यह बाँध तोडना चाहिए। दूसरे देश में सफाई करने वालों की कोई जाति नहीं है। वहाँ सफाई का काम अन्य नौकरियों के समान एक नौकरी है। इज्जदार और अच्छा वेतन मिलनेवाली नौकरी। लेकिन वर्ण-व्यवस्था में यह लोगों को गुलाम बनाए रखने का षड्यंत्र है। जब तक भारत में यह प्रथा जारी रहेगी तब तक छूत और ऊँच नीच बने रहेंगे। दलितों को इस प्रथा को रोकने केलिए अपनी ओर से कोशिश करनी चाहिए।

आकाश लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए पास करके अपने गाँव आया।उसकी माँ संचनिया दूसरों के घर में भिष्टा उठाने का काम करती है।आकाश ने माँ को इस काम करने से रोका।आकाश की माँ तीन दिन मैला उठाने नहीं गयी तो ब्रहमण, और ठाकुर उसके घर के सामने लाठी लेकर खडे हो गये।भय के कारण संचनी बीमार हो गयी। सवर्णों ने आकाश और पिता नत्था को उसे अस्पताल ले जाने से रोका।अंबेडकर के दर्शन से प्रभावित आकाश ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि,अब हम ने यह काम छोड दिया है। "गाँधीजी स्वयं अपने घर का पखाना साफ करते थे।आप स्वयं अपने घर का पखाना क्यों नहीं साफ करते।"[3]

1948 दिसंबर 10 को संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा के आदेश के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार तैय करने, बेरोज़गारी से सुरक्षा और और गुलामी मुक्ति पाने का अधिकार है। दलितों को संपत्ति अर्जित करने का अधिकार नहीं है। दलितों की संपत्ति मालिकों की संपत्ति है। वे सिर्फ खेतों में काम करनेवाला मजदूर हैं।

4.1.4. नारी अस्मिता

लडकी की शादी के बारें में हमेशा माँ बाप में चिन्ता रहती हैं। आज कल समाज में ऐसा फॉशन शुरू हुआ है लडका एन .आर .ऐ तो माता पिता सोचते है कि हमारी लडकी सुखी रहेगी। ऐसे वर पाने केलिए लडकियों के माता पिता में होड मची हुई है। कोई माता पिता यह नहीं सोचते कि उसकी बेटी के साथ वहाँ अमानवीय व्यवहार होगा। हम जितने आधुनिक और सभ्य होने का जामा पहनते जा रहे हैं उतने अधिक सेक्स केलिए औरतों के प्रति क्रूर होते जा रहे हैं। कोई समाज,जिस के सिर पर सदियों से पुरुष बैठा है उसके खिलाफ कोई ठोस कदम नहीं उठाते।एक प्रकार की मौन अनुमति इसे हमेशा मिलती रही है, रहेगी भी।

नारी के हक केलिए अनेक कानून बने हैं। पर कहाँ नारी को अपना हक मिलता नहीं है।नारी कहने केलिए आज नारी को स्वतंत्रता और समान अधिकार मिल गया है। फिर भी समाज में उसकी स्थिति आज भी दोयम दर्जे की ही है। नारी के बारे मे आधुनिक दुनिया कुछ भी कहे पुरुष की नज़र में वह महज शरीर है।उनकी शारीरिक इच्छाओं को तृप्त करने की साध। नारी की अहमियत उनकी नज़र में बस उतनी है। इस लिए उसके शरीर को पुरुष अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करते हैं। इसके लिए अमीर -गरीब का कोई भेद भाव नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुसार इसका रूप बदलते हैं। आधुनिक सभ्य समाज में कई अप्रवासी भारतीय परिवार है जो झूठी शान शौकत केलिए अपनी प्रेमिका व पत्नी को दूसरे का हम बिस्तर बनाते हैं। जसविंदर एक साहसी युवती है जो हिम्मत के साथ इसका विरोध करती है।

जसविन्दर खुराना को अमेरिका में सास की सहायता से जेठ सात दिन बलात्कार करता है। विदेशी संस्कृति के आड में वह जसविन्दर के साथ यह

ज्यादात्ती करता है। नारी शोषण की बातें जहाँ से भी मिलती है। अपने घर में ही ऐसी हादसा होने पर नारी टूट जाती है। लेकिन जसविन्दर हारने केलिए तैयार नहीं है।वह अपने साथ हुए इस अमानवीय व्यवहार का खुलकर विरोध करती है।

4.1.5. शिक्षा

अस्मिता की लडाई में महत्वपूर्ण कदम शिक्षा प्राप्त करने का है। हाशियेकृत वर्ग को अपनी गुलामी को तोडकर आत्मसम्मान के साथ खडा रहने का हौसला शिक्षा ही दे सकती है। ज्ञान शक्ति है। ज्ञान ही ऐसा एक रास्ता है जिससे पतित ऊपर उठ सकते हैं। शिक्षा ही एकमात्र हथियार है जिससे दलित अपनी अस्मिता की लडाई लड सकता है। दलित या पूर्व निवासी अपने गौरवमय अतीत में शिक्षा से संपन्न थे। आर्य उन्हें पकड कर गुलाम बना दिया। उन्हें सिक्षा से वंचित रखा।

शिक्षित होने की इच्छा मात्र रखने से उन्हें क्रूर दंड विधान से गुजरना पडा था। इस तरह वे खुद शिक्षा से दूर रहने लगे। शिक्षा से दूर रखने के कारण जहाँ भी जाये उन्हें गुजारे के लिए खानदानी काम ही करना पडा। इसके अनुसार सब कहीं उनकी प्रतिष्ठा निछले स्तर पर ही बना रहा। असल में यह दलितों को हमेशा दलित बनाए रखने की साजिश है। इस साजिश को जानने पहचानने केलिए दलितों का शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षित होकर अच्छे वेतन की नौकरी मिलने पर ही उनकी जिंदगी बदल जाएगी।

आकाश बी.ए पास होने के बाद माँ को ब्राहमणों के यहाँ मैला उठाने से रोकता है। आकाश अपनी माँ के हाथ से बाल्टी और झाडू छीन लेता है। आकाश माँ से कहता है -" मैं ट्यूशन पढाऊँगा, कंप्यूटर चलाना जानता हूँ मैं घर का खर्च उठाऊँगा। पिताजी मजदूरी करेंगे। हम लोग सुअर और गाय का पालन कर गुजर बजर करेंगे। लेकिन यह कार्य नहीं करेंगे।"[4] आत्मसम्मान की यह भावना उन्हें शिक्षा

से प्राप्त सूझ से मिली है।जीवन आगे बढाने केलिए मैला उठाना ही हमारे भाग्य में लिखा है जैसे समझनेवाले दलितों को आकाश बहुत अधिक रास्ता दिखाते हैं। परिस्थितियों को समझकर परखकर अपने आपको ऊपर उठाने की क्षमता शिक्षा ही दे सकती है। शिक्षा मानव को मानव बनाता है, नहीं तो वह जानवर कहलाने के योग्य है। मालिकों की गुलामी करनेवाला जनवर।

4.1.6. संघर्ष

सदियों से चल रहे तिरस्कार में आज भी कोई परिवर्तन नहीं आया है। इसका उदाहरण भारत के विभिन्न इलाकों से आज भी मिल रहा है। स्वतंत्रता प्राप्त होकर 69 साल बीतने के बाद भारत के दलितों की स्थिति में, उसके प्रति लोगों के व्यवहार में कोई खास अंतर नहीं आया है। बाबासाहेब अंबेडकर ने महाड से तालाब से पानी पीकर यह साबित किया कि दलित भी मानव है और उनके छूने से पानी अपवित्र नहीं होगा। यह एक क्रान्तिकारी घटना थी। आज भी ऐसी क्रान्तिकारी घटनाओं की आवश्यकता है। क्यों कि आज भी अनेक ऐसे गाँव है जहाँ दलितों की हालत बहुत बुरी है।

छुआछूत भारतीय समाज का कोढ है। इसके आधार पर पानी के इस्तेमाल तक को बाँटते है। भारत भर में सदियों से यह परंपरा चल रही है कि गैर दलितों को पानी भरने का घाट अलग है, दलितों की अलग है। दलितों की घाट में पानी न होने पर भी उन्हें सवर्णों के कुएँ से पानी भरने का अधिकार नहीं है। जो मजबूरी वश भी इसे तोडने की कोशिश करते तो उसे मौत का घाट उतार दिया जाता है। संगठित विद्रोह से ही दलितों पर हो रही इस अमानवीयता को रोका जा सकता है। देरादून घूमते समय विराट और संध्या ने देखा कि गाँव के तालाब से दलितों को पानी भरने का हक नहीं है। सवर्णों और दलितों को पानी भरने केलिए अलग अलग झरने हैं।

जिस तालाब और कुएँ से ये पानी पीते है वह पानी मटमैला है। उन्हें स्वच्छ पानी लेने के लिए उससे भी दूर जाना पडता है। पास का झरना सवर्ण अपना मानते हैं। इस झरने से दलितों को पानी भरने नहीं देता।

विराट और संध्या इसका विरोध करने केलिए सवर्णों के झरने के पास पानी पीने गये। सवर्ण महिलाएं उनसे जाति पूछती है। विराट दलित जाति का है। इसलिए वे उसे पानी देने केलिए तैयार नहीं होती। विराट उसी झरने से पानी पीने का हठ करता है। इसे देखकर दलित औरत भी वहाँ आती हैं। विराट ने उनसे वहीं से पानी लेने केलिए कहा। विराट दलित औरतों से कहा 'एक क्षण की आज़ादी सदियों की दासता को तोड देगी।'

दलित औरत हौसले के साथ आगे बढ़ी। दलित और सवर्णो औरतों में झगडा हुआ। विराट और संध्य अपने निर्णय पर ही अटल रहे। सवर्णों की किसी भी धमकी के सामने वे हारने के लिए तैयार नहीं हुए। विराट ने देरादून के एस. पी संजय रावत को बुलाकर पुलिस की सहायता माँगी। त्थूनी के कोतवाल पूरी फार्स के साथ वहाँ आ गये और सवर्णों को समझाया कि प्राकृतिक चीज़ों पर सभी का समान अधिकार है। कानून की सहायता लेकर उसने गाँववालों को उसी तलाब से पानी लेने की अनुमति दिलाया।

दलितों को अपने ऊपर हो रहे शोषण और अत्याचार की जानकारी है, इसे तोडने की इच्छा भी है। लेकिन सवर्णों का भय एक दहशत के रूप में उनके अन्तर समाया हुआ है। इसलिए वह तोडना चाहकर भी तोड नहीं पाता। उसे एक प्रतिभाशाली नेता की जरूरत है। अपनी खोई हुई अस्मिता को हासिल करने केलिए दलितों को संगठित होकर काम करना है।

4.1.7. शोषण का विरोध

भारत में अधिकतर राज्यों में दलितों की स्थिति बंधुआ मज़दूर की रही है। जानवर और उनमें कोई भेद नहीं है। वे कोल्हू के बैल की तरह दिन रात मेहनत करते रहते हैं। अनेक संघ व बैंक इनकी मदद करना चाहते हैं। उच्चवर्ग के दबदबे के कारण नहीं कर पाते। बंधक बना मानव न अलग घर बसा सकता है न खुलकर साँस ले सकता है। एक जीवित व्यक्ति जानवर बनकर कर्ज की डोर से साहुकार रूपी कोल्हू से जिन्दगी बर बाँधे रहते है। सरकार दलितों की मदद करनी चाहती है, लेकिन आभिजात वर्ग के लोग इसमें बाधाएँ डालते हैं। वे नहीं चाहते है कि दलितों की आर्थिक स्थिति सुधर जाय।दलितों की आर्थिक स्थिति सुधर जायेंगे तो कम पैसे में नौकर उन्हें कहाँ से मिलेंगे।

त्थूनी कस्बे के एक दलित शिल्पकार दलपत ने एक सवर्ण साहूकार से 5000 रू अपनी लडकी की शादी में कर्ज लिया। उसके बदले अपने बटे जुगुनू को उसके पास बंधक रखना पडा। दलपत ने सरकार गरीब लोगों को भेड बकरी खरीदने केलिए देने वाली लोन केलिए आवेदन पत्र दिया।वह इस पैसे से अपने बेटे को गुलामी से बचाना चाहता था।लेकिन साहूकार ने मैनेजर के पास जाकर लोन न देने का अनुरोध किया।क्योंकि अपने घर में जीवन भर काम करनेवाले दलित नौकर को वह यूं ही छोड देना नहीं चाहता था।विराट बैंक से लोन दिलवाकर पीडितों की बिगडी हालत सुधारता है,उसे बंधुआ मज़दूरी से मुक्ति दिलाता है।

4.1.8. नारी अस्मिता

शिक्षा के क्षेत्र में भी नारी पर शोषण होता रहा है। उसे शिक्षा से वंचित रखने की बात तो बहुत पहले ही सामने आये है। शिक्षा के क्षेत्र में उसका शारीरिक शोषण मन को झकझोरनेवाली बात है। भारत के विश्वद्यालय से अब एक घटना बाहर

आयी है कि एक प्रोफसर ने शारीरिक शोषण के बदले में पी. एच.डी की उपाधी दी है।संध्या ऐसे प्रोफसर को सबक सिखाती है। प्रो. दीनदयाल अग्रवाल अपनी शोधछात्राओं का, बीबी की गैर मौजूदगी में घर बुलाकर शारीरिक शोषण करता था। संध्या चुपके से उसके प्रसंग को रेकोडिंग करती है। इस पर प्रो .उसके पैर पडने लगता है किन्तु संध्या इस मानने केलिए तैयार नहीं हुई। वह आज तक, जी. टी. वी,स्र प्लस,इंडिया टी .वी,ई .टी. वी दूरदर्शन और सहारा टी. वी के स्टुडियों में गयी,और सभी को रेकोडिंग की एक एक सीडी दी। सभी न्यूज़ चैनलों ने इस खबर को प्राथमिकता से प्रसारित किया गया। प्रो. अग्रवाल को निलंबित कर दिया गया। नारी को अपने ऊपर होनेवाले शोषण को इस प्रकार विरोध करना चाहिए। तब उसकी इज़्जत पर हाथ रखनेवाला पुरुष एक बार तो जरूर सोचेगा। नारी पर उन्मुक्त रूप से हाथ रखने का अधिकार पुरुष को समाज ने दिया है। उसे कानून के सहारे तोडना चाहिए।

4.2. मुक्ति पर्व (2011)

ऊपरी तौर पर कहने पर आर्य संस्कृति एक महान संस्कृति है। लेकिन इसमें मानवीयता का विराट रूप कुछ लोगों तक सीमित है। सभी मानवों को समान मानने की विशाल दृष्टि उनके ग्रंथों में है। आर्यों ने हिन्द देश के मूल निवासियों की संस्कृति को पूरी तरह बदल डाला।उनके आत्मसम्मान को ही तहस नहस करके उसे अपना गुलाम बना दिया। फिर भारतीय समाज में ऐसी परंपरा चली कि दलितों के हक में गालियाँ ही रसीदी गयी। उनकी संस्कृति ही विकृत हो गयी। आर्य संस्कृति में उनके लिए दया नहीं है केवल जुल्म ही आरक्षित है।

4.2.1. जागृति

हिन्दू धर्म आर्य धर्म है वहाँ दलितों का कोई स्थान नहीं है। बंसी इस उपन्यास का सशक्त पात्र है। वह कोई सिद्ध पुरुष तो नहीं था। वह बस्ती के अन्य

लोगों में से एक था।लेकिन उसे अपनी जाति के ज़ख्में का ज्ञान था, उससे मुक्त होने की इच्छा थी साथ ही साथ अपनी अस्मिता की जानकारी भी। बंसी कमेर जाति का था। नवाब अली वर्दी खांन की हवेली में नौकर था। नवाब सैकडों रुपये मनोरंजन केलिए लुटाते थे लेकिन वहीं एक एक रुपये केलिए कमेरों को मारते पीटते थे।अंग्रेजों के आगे वह भीगी बिल्ली बन जाते थे। रंडियों के घर जाना उनके खादानी बड़प्पन को दिखाते थे। उन्हें वहाँ से घर तक लाना कमेरों का काम है। दस रूपली माह की नौकरी के साथ यह बेगारी भी करना पडता था।

कमेरों के घरों में रेडियो और अखबार नहीं थे। अखबार नवाबों के घर में भी नहीं आते थे। रेडियो नवाबों के घर में था। देश में यह आज़ादी का समय था।नवाब के यहाँ हाकिमों का आना जाना था। उनकी बातों से बहुत सारी खबरें नवाब के घर से ही उसे मिल गया था। ज्ञान ऐसी चीज़ है जो अज्ञान रूपी अंधकार को तोडकर मानव के जीवन में प्रकाश लाता है।

दलित जब भी आगे आने की कोशिश करता है सवर्ण पूरी ताकत के साथ उसे पीछे की ओर खींचता है। पाँचवी पास करके बस्ती से दूर पर स्थित जूनियर हाईस्कूल में सुमित को प्रवेश कराने आये बंसी को स्कूल का मास्टर ने उसे काम धंधे पर लगाने का सलाह दिया। लेकिन सुमीत का मार्कशीट देखकर वह दंग रह गया पाँच सौ में साढे चार सौ नंबर उसे मिला था।

स्कूल की स्थापना और शिक्षा के प्रचार प्रसार से बस्ती के लोगों में अस्मिता और स्वाभिमान का बोध बढने लगा। बंसी ने सबसे पहले गुलामी छोड़ी फिर बाद में अन्य लोगों ने, जैसे जैसे गुलामी का एहसास होता रहा वैसे वैसे नवाबों और रईसों के यहाँ से अपने अपने काम छोड दिये। चेतना का सूरज जितना उगता रहा उतनी ही गुलामी का अंधकार भी दूर होता गया। नारियों ने भी ज़मीन्दारों के यहाँ के काम

छोड दिये। वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगी। बस्ती में अंबेडकर के नाम पर एक पुस्तकालय शुरू किया। दलितों को गरीबी में फेंकनेवाली चीज़ है शराब। गाँववाले शराबखाने के अंदर जाकर शराब की बोतलें तोड डाली। शराब खाने को बंद करके वहाँ स्कूल खोल दिया गया। दलितों को आर्थिक रूप से पराधीन करनेवाले चीज़ों में शराब का स्थान बहुत बडा है।

4.2.2. तिरस्कारों का तिरस्कार

बंसी और सुनीत अच्छी तरह जानते थे कि समाज की मानसिकता में जल्दी बदलाव नहीं आएगा।शिक्षा को वह अपनी मुक्ति का एकमात्र रास्ता मानते हैं। बंसी जानता था कि सवर्ण कभी नहीं चाहते है कि दलितों के बच्चे पढें, लिखें। क्योंकि अगर वे पढ लिख जाए तो उन्हें गुलामों की फौज कहाँ से मिलेगी। उनकी सेवा टहल कौन करेगा। इसलिए शिक्षा के हर कदम में हृदय चीरनेवाला दुःख मिलने पर भी वह अपने रास्ते से हटते नहीं है। इसकेलिए उसने तिरस्कार का रास्ता ही अपनाया।

दलित छात्रों को दूसरों के सामने हीन दिखाने की कोशिश करनेवाला सवर्ण अध्यापक भारतीय समाज में बहुत मिलते हैं। सुमित जूनियर हाईस्कूल में छठी कक्षा में दाखिला लेने केलिए गया। स्कूल का नाम पूछने पर सुमीत ने कहा निकेतन प्राईमरी स्कूल।यह नाम सुनते ही दफतर के आदमी ने कहा चमारों के स्कूल से आए हो यही ना। दलितों से जुडी सभी चीजों को तिरस्कार से देखने की एक प्रथा समाज में प्रचलित है। बंसी और सुमित इसमें छुपी तिरस्कार को जानकर भी उसका नजरअंदाज किया। क्योंकि शिक्षा पाना ही उनका लक्ष्य था। स्कूल के एक मास्टर साहब ने सुमित को दाखिला देते हुए कहा कि स्कूल में समय पर आना है, खास वर्दी पहनना है और यह स्कूल है अनाथालय नहीं। अनाथालय तक कहते कहते उसका स्वर अजीब तरह विकृत हो गया। बाप बेटा दोनों को ऐसा लगा कि कोई उन्हें

पत्थर उठाकर मार दिया हो। बंसी ने चलने से पहले न चाहकर भी हाथ जोडते हुए कहा कि हम चलते हैं।

पहले दिन पहले पीरियड में अपना अपना परिचय बताने का कार्यक्रम रखा था।सभी विद्यार्थी अपना नाम तथा स्कूल आदि का नाम बता रहे थे। सुनीत का नम्बर आया तो उसने पहले अपना नाम बताया फिर स्कूल का नाम। तब किसी लडके ने उठकर पूछा यह स्कूल कहाँ पर है हम ने पहली बार सुना है। तभी कक्षा अध्यापक बोल उठे। यह चमारोंवाला स्कूल नाम से प्रसिद्ध है। सभी की निगाहें उसकी ओर गयी। कक्षा के जो लोग अभी तक उसे देखा भी नहीं था टकटकी लगाकर देखने लगे। वे उनकी ओर देखकर फुसफुसाकर हँसने लगी। अपने आप को दूसरों के सामने इतना ज़लील होते हुए देखकर उसे रोना आ गया। इसके ओर भी लोगों ने ध्यान नहीं दिया कि बारह बरस के गीली मिट्टी जैसे बच्चे के साथ ऐसा व्यवहार कर रहा है। दलित जाति के लोगों को खिल्ली उडाना वे अपना अधिकार मानते हैं। ऊँची कुल के रोब जमानेवाले इस तरह के निकृष्ट मानसिक रोग का शिकार है।

पूरी कक्षा में लडके और अध्यापक हँस रहे थे। उन्होंने अपने असीम दुख को अपने बाप के शब्दों में दबा दिया।बंसी ने उसे समझाया था कि " बेटे कितनी भी परेशानी आये,कभी आँसू मत बहाना। यह दुनिया किसी गरीब के आँसु देखकर रोती नहीं हँसती है।"[5] बंसी ने अपने बेटे को यही सिखाया कि जब तक लक्ष्य तक न पहूँचे तब तक तिरस्कार का तिरस्कार करना चाहिए। नहीं तो मुक्ति का खुला रास्ता कभी भी बंद हो सकता है।

4.2.3. गुलामी का विरोध

आज़ादी से पहले दलित दोहरी गुलामी के शिकार थे। देश के मालिक अंग्रेज थे और उनके मालिक नवाब, या ज़मीन्दार थे। उनकी हवेली और खेतों में उसे दस

बारह घंटे कमरतोड मेहनत करनी पडती थी। वे गुलाम न थे, पर गुलामों की तरह उन्हें रखा गया था। उनके सुखों की परवाह मालिक नहीं रखते थे। दलितों की सेवा में जरा सी कमी आए तो मालिक नाराज़ हो जाते थे, हाथों और लातों से मारते थे।दस रूपल्ली माह की नौकरी के साथ बेगारी भी करना पडता था।

बंसी नवाबअली वर्दी खां की हवेली में नौकर था। वह नवाब के घर में गुलामों की तरह काम करता रहता था। आज़ादी की पहली सुबह उसे एक बेटा पैदा हुआ। उस दिन अली वर्दी खां के घर में अजीबोगरीब गहमागहमी थी। अपने चिर परिचितों से आजादी आजादी सुनकर वे तंग आए थे। तभी उन्हें बंसी नजर आया। जाते हुए बंसी को रोक कर हुक्का भरने के कहा।बंसी बेगम केलिए सौंक और इलायची खरीदने केलिए बाजार जा रहा था। इसलिए उसने कहा अभी आते हैं। नवाब साहब को यह अच्छा नहीं लगा। वह गुस्से में भभक उठा। बंसी की सफाई सुनने केलिए वह तैयार नहीं था। तब तक बंसी को भी गुस्सा आया। उसने गुस्से में भडकते हुए कहा कि " जनाबे अली, हम न गुलाम थे, न गुलाम है,न गुलाम रहेंगे।"[6] ऐसा कहकर वह नवाब की नौकरी और गुलामी को छोडकर बाहर निकला। गाँव में सबसे पहले बंसी ने गुलामी छोडी फिर बाद में एक एक करके अन्य लोगों ने। जैसे जैसे गुलामी का एहसास हुआ वैसे वैसे वे नवाब और राईसों केयहां अपना काम धंधा छोड दिया।

4.2.4. रीति रिवाज़ों का विरोध

दलितों को अच्छा नाम रखने का अधिकार नहीं है। उन्हें कालू, चेतू, भाना, बुद्धू, रगडू, झगडू, दगडू, भगडू, नाटू, मंगलू, सिरिया, घुरिया, कुडिया, रमिया आदि नाम ही रखने का अधिकार है। दलितों को नामकरण करने का अधिकार नहीं है। उनका नामकरण ब्राहमण ही करते हैं।पंडित जो नाम देते थे दलित उन्हें खुशी खुशी स्वीकार करते थे। सवर्ण समुदाय को दलितों के प्रति जो घृणा और तिरस्कार है यह

उसके नामकरण में भी दिखाई देता है। सवर्णों के नाम भारतीय संस्कृति की आभिजात्य परंपरा से जुडे होते हैं। दलितों के नाम दीन हीन और अपमान जनक स्थिति का द्योतक है। दलितों का सवर्णों की तरह के नाम रखने का अधिकार नहीं है। ऐसे नाम रखने पर उन्हें सवर्ण लोगों की मार खाना पडता था। 'चमार की बेटी नाम लक्षमिनिया ' यह कहावत दलितों की नामकरण संबधी एक प्रचलित कहावत है। इसका अर्थ यह है कि चमार की बेटी का नाम लक्ष्मी कैसे हो सकता है उसका नाम तो सीलिया, झुनिया, दुखिया आदि होना चानहिए। दलित समाज को अपमान जनक स्थिति में रखनेवाली मानसिकता विरोध बंसी ने किया। बंसी ऐसा नाम बेटे को देने केलिए तैयार नहीं हुआ।

बंसी ने अपने बेटे का नाम रखने केलिए पंडित को बुलाया। पंडित ने परंपरा के अनुसार दलितों को देने वाले नामों में एक नाम लेकर बच्चे का नाम रखा- बुद्धू। बंसी क्रुद्धित हुआ और कहा कि "आज के बाद इस बस्ती में किसी पंडित की जरूरत नहीं पडेगी।"[7] पंडित हक्का बक्का सा रह गया। बंसी ने अपने बेटे का नाम सुनीत रखा।यह नाम उसके मन को स्पर्श किया था,क्योंकि यह नाम समूची बौद्ध संस्कृति का द्योतक था।

4.2.5. शिक्षा

आर्यों ने वर्ण व्यवस्था बनाकर यहाँ के मूल निवासियों को शूद्र नाम देकर गुलाम का दर्जा दिया। और इसे बनाये रखने केलिए उन्हें शिक्षा से दूर रखा। शारीरिक रूप से ही नही मानसिक स्तर पर भी उनकी गुलामी फैल गयी तो भारत की सत्तर प्रतिशत जनता गरीबी के नाले में फेंक दी गई। सवर्ण, दलितों पर अपना कब्ज़ा बनाए रखना चाहता था। इसलिए उन्होंने दलितों को हमेशा शिक्षा से दूर रखा। आज

देश आज़ाद है फिर भी नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार यहाँ नहीं है। कानून और संविधान को मानने केलिए यहाँ के सवर्ण शिक्षक वर्ग तैयार नहीं है।

बंसी कामचलाऊ पढना सीख लिया था।वह आँख मीचकर कुछ नहीं मानता था।शिक्षा के महत्व को वह समझता था।बंसी अपने बेटे को पढा लिखा कर अध्यापक बनाना चाहता है। ज्ञान के दीप से ही दलितों के जीवन का अंधकार मिटेगा। वह सुमित को अध्यापक इसलिए बनाना चाहता है कि दलितों के बीच से आनेवाला अध्यापक ही दलित बच्चों की कमज़ोरियों को पहचानकर शिक्षा दे पाएगें। सुमित ने अपनी प्राथमिक शिक्षा गाँव के विद्यालय से प्राप्त की।पाँचवीं की बोर्ड परीक्षा प्राप्त करने के बाद आगे की पढाई के लिए जूनियर हाईस्कूल गया।सुनीत के अच्छे अंक द्वारा समाज में अपनी अस्मिता स्थापित करने की कोशिश करता रहा।

भारतीय संस्कृति की रीढ़ मनुस्मृति के अनुसार नारी को अपने जीवन के हर पग में पुरुषों के अधीन रहना चाहिए। पढ़-लिखकर स्वावलंबी नहीं बननी चाहिए। बाकि वर्ग के लोग चाहे इसका पालन न करे बल्कि दलित जरूर कर रहे हैं। हर भारतीयों के मन में कहीं न कहीं यह भावना छुपी हुई है कि नारी को क्यों पढ़ाया जा रहा है,या उसे पढाने की जरूरत ही नहीं है। अपने बेटे को स्कूल दाखिला करने केलिए पंडित के पैर तक पडने केलिए तैयार सुनीत का चाचा अपनी बेटी को पढाने के लिए कुछ नहीं होता।सुनीत उसे समझाते हुए कहते हैं कि - " चाचा जी लडकी हो या लडका आज दोनों बराबर होते हैं।" [8]

4.2.6. संघर्ष

सुनीत जब स्कूल जाने लगा तब से उसके भीतर अपने ऊपर हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने का साहस उभरने लगा। समाज के यथार्थ और किताबों के पन्नों पर छपे चित्रों में विरोधाभास था। उसने सीधे मास्टर साहब से जाकर पूछा कि

आप रोज़ यही पढ़ाते हैं न हम सब एक है, भारत में कोई ऊँच नीच नहीं। यह झूठ है। कल प्याऊ वाले ने मुझे तथा मेरे पिता को नल की पानी पिलाया। सुनीत के स्वर में आक्रोश फूट रहा था। बाकी बच्चों ने भी उसका साथ दिया।

मास्टर ने उनसे कहा कि जहाँ भी गलत उसका विरोध करना चाहिए। मास्टर जी का उत्तर सुनकर सभी खुश हुए। मास्टर जी उसका साथ दिया। सभी लोग मिलकर प्याऊ पर गए। सुनीत नलकी खींचकर नीचे डाल दिया। पंडित हतप्रभ हो गया। उसने पंडित जी से पानी पिलाने केलिए कहा। लेकिन सुनीत चमार होने के कारण वह पानी पिलाने केलिए तैयार नहीं हुआ। छोटा बच्चा होने पर भी सुनीत में अस्मिता की भावना कूट कूटकर भरा हुआ था।उसने पंडित जी से कहा -"हाँ हाँ पंडित जी,हम ढेढ चमार हैं,पर अब देश आज़ाद है।इतना समझ लो कि तुम्हें ऐसा करने पर जेल जाना भी पड़ सकता है।"[9] लोग इकट्ठे हो गए।सामाजिक विषमता से जूझने का आह्वान इकट्ठे हुए लोगों से भी आने लगा तो पंडित को हार मानना ही पडा।बच्चों ने इस शर्त पर पानी पिया कि पंडित जी सभी के सामने कान पकड कर माफी माँगे और आगे सभी को एक ही बर्तन से पानी पिलाएँगे।

4.2.7. अंबेडकर के प्रेति श्रद्धा

एक आदमी रहे रहे बडा नहीं बन सकता।उसके लिए एक सशक्त प्रेरणा की जरूरत है।सुनीत केलिए उसका बाप ही प्रेरणा स्त्रोत है। बंसी ने डॉ. अंबेडकर की कहानियाँ सुनीत को लाकर दी। यह किताब उसकी सोच का रूपायन किया।इसने उसे यह सोचने केलिए मज़बूर किया कि बाबा सहेब इतनी गरीबी में पढ़ सकते है तो मैं क्यों नहीं।

दलित अस्मिता की तलाश केलिए शिक्षा के साथ साथ अंबेडकर चिंतन का परिचय भी आवश्यक है। केवल शिक्षा से दलितों को अपनी अस्मिता का परिचय नहीं

मिलेगा। क्योंकि भारतीय शिक्षा प्रणाली सनातन संस्कृति पर आधारित है।आर्य संस्कृति के पोषक तत्व का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इसके मूल में समाहित है। आर्य विरोधी तत्व या दलित हितकर इसमें नहीं है। यहाँ तक कि दलितों के योगदान भी साहित्य और इतिहास से गायब है। इसलिए उसका अस्मिता बोध इससे जाग नहीं उठेगा। अपनी सही पहचान केलिए उसे आगे कुछ अपनी ओर से जानना है। यह जानकारी अंबेडकर चिंतन से ही उन्हें मिल सकती है।

सुनित ने अंबेडकर को अपना रोल मॉडल बनाया और उनसे संबधित सभी पुस्तक लेकर पढने लगा।सुमित के घर में बिजली नहीं थी। मिट्टी की तेल से जलने वाली डिबरी थी। जब घर में अंधेरा होता था वह बिजली के खंभे के उजाले में पढता। जब थक जाते वह ज़मीन पर बैठ जाता। वह दिन रात मेहनत करता रहता। उनके सामने एक ही लक्ष्य था। मान सम्मान प्राप्त करने में दलितों पर अब तक जो प्रतिबंध लगाये है, उनसे उभर कर वे आगे आयें। इस कडी मेहनत से वह छठी कक्षा में प्रथम आया।

4.2.8. आरक्षण का अस्वीकार

आरक्षण दलितों का विशेषाधिकार है। इसकी सहायता से दलितों ने भारतीय समाज में अपनी अस्मिता स्थापित की है। आरक्षण ने गाँव के बाहर नारकीय जीवन बिताने केलिए विवश लोगों को मुक्ति का आसमान प्रदान किया।फिर भी वर्तमान समय में आरक्षण ने दलितों को अपमान जनक स्थिति में लाकर खडा कर दिया है। कम अंक प्राप्त करने पर भी नौकरी और उच्च शैक्षिक संस्थानों में जगह मिलने के कारण योग्य निपुण व्यक्ति को भी तुच्छ दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए दलितों को कालिजों और स्कूलों में सीट हो या सरकारी नौकरी, आरक्षण से नहीं योग्यताओं के बल पर हासिल करना चाहिए।

सुनीत पढ़ाकू लडका है। इसलिए उसने जातिगत स्कॉलरशिप को छोड़कर मेरिट स्कॉलरशिप केलिए फार्म भरना चाहा। बंसी ने भी यही कहा कि योग्यता के आधार पर स्कॉलरशिप का फार्म भरो तो अच्छा है। लेकिन कक्षा अध्यापक इसकी अनुमति नहीं थी। वह फार्म पर हस्ताक्षर करने केलिए तैयार नहीं हुए। क्योंकि उनका मानना है कि सरकार दलितों केलिए अलग स्कॉलरशिप देने की योजना बनाई है तो मेरिट स्कॉलरशिप का फार्म क्यों भर रहे हैं। सुनीत फार्म बदलने केलिए तैयार नहीं हुआ। सुमित्रा की सलाह के अनुसार उसने हेडमास्ट से हस्ताक्षर लेकर फार्म भेज दिया।दलितों को अपनी अस्मिता की तलाश आरक्षण के बल पर नहीं मेरिट या योग्यता के बल पर करना चाहिए। यह उसे अपनी क्षमता का एहसास दिलाएँगे।

4.2.9. सवर्णों का योगदान

दलितों की अस्मिता की तलाश केलिए सवर्णों ने भी अपना योगदान दिया है। बंसी की बस्ती में स्कूल खोलने का महत्वपूर्ण काम सवर्ण रामलाल ने किया।रामलाल पिछले चुनाव इस बस्ती से जीता था। लगभग एक साल की भाग दौड़ के बाद वह स्कूल खुलवाने में समर्थ हो गया।बस्ती में ही कलालखाने की इमारत खाली पडी थी।जहाँ पहले लोग शराब पीते थे। बस्ती के लोगों की सहायता से वह जगह साफ किया गया। उस विद्यालय ने उस गाँव का ही चेहरा बदल दिया। सवर्ण मानसिकत वाले सवर्णों से वह बस यही कहता था - "जो लोग समय को नहीं पहचानते वे खतम हो जाते हैं। वे ही नहीं उनके मूल्य, उनकी परंपराएं और संस्कृति भी।"[10]

सुमित को सवर्णों से चाहे वह अध्यापक हो या सहपाठी,अनेक अवमानना सहनी पडी। लेकिन उसको हौसला और हर मुसीबत में उसके साथ देनेवाली दोस्त सुमित्रा सवर्ण ही है।

4.3. ज़ख्म हमारे (2011)

आर्यों ने अपना पैर भारत में धीरे धीरे जमाया।इसकेलिए उसने अनेक मार्ग स्वीकार किया है। फूट कर राज करने की राजनीति सबसे पहले आर्यों ने ही भारत में आज़माया। अंग्रेजों ने यह राजनीति उनसे सीखी है। इस नीति का बुरा असर अब भी भारत भुगत रहा है। अंग्रेजों ने भारत को हिंदू और मुसलमानों में बाँटकर भारत को ही टुकडा टुकडा कर दिया। सनातन हिंदुओं ने दलितों के साथ मुसमानों को भी अपना दुश्मन माना। ज़ख्म हमारे में मुसलमानों को भी हाशियेकृत वर्गों में माना है। दलित और मुसलमान की अस्मिता की खोज इसमें दिखाया है।

4.3.1. दलित - मुसलमान एकता

गुजरात गाँधीजी का जन्म स्थान और उनके कार्य क्षेत्र का मूल स्थान है। लेकिन आज गुजरात में सामाजिक सद्भावना का बिलकुल अभाव है या बहुत ही कम है।हर व्यक्ति एक अजनबी से मिलने पर नाम पूछने के बाद तुरंत ही उसकी जाति पूछ लेता है यह सिर्फ गुजरात की ही रीति नहीं है पूरे भारत में ऐसी हाल है। इस उपन्यास का गुजरात भारत की कलुषित मानसिकता का प्रतीक है।यहाँ दलित और मुसलमान दो.नं के आदमी है। सवर्ण दलितों को गुलाम मानते हैं और मुसलमान को विदेशी।

मुसलमानों को भारतीय इतिहास में गहरे रंगों में चित्रित किया है। लेकिन असल में यह भारत के अपने लोग है। भारत केलिए मर मिटनेवाले मुसलमानों को कट्टर हिंदू कटु रंगों में रंगाकर अंधेरे में धकेलने की कोशिश कर रहे है। वे एकाधिकार का नया रास्ता ढूँढ रहे हैं।

भारत में रहनेवाले मुसलमान, विदेशी नहीं भारतीय है। मुसलमान की पहचान चाहने वाले भँटवारे के समय भारत छोडकर चले गये हैं। सादिया मुसलमान होने के कारण रात को हिंदू लडकों से आतंकित हो जाती है। पडोस में आनेवाले परिवार के सदस्य भी उसके घर जाने में हिचकते हैं। सनातन हिंदू धर्मी भारत को अपना राष्ट्र मानते हैं और यहाँ के हर अल्प संख्यक लोगों को यहाँ से भगाकर इसे एक हिंदू राष्ट्र बनाना चाहते हैं।चाहे वह मुसलमान हो, ईसाई हो,जैन हो या बौद्ध।

भारत विश्व भर में सहिषणुता के लिए प्रसिद्ध है।लेकिन यहाँ हमेशा असहिष्णुता की अंगारे से धुआँ उडता रहा है।यहाँ का आर्य वर्ग ही इसका जिम्मेदार है।दलित और दूसरे धर्मवालों को मानने केलिए वे तैयार नहीं है।इसलिए आज़ादी के सत्तर साल बाद भी दलितों और मुसलमानों पर अत्याचार हो रहा है।सवर्ण केंद्रीय सत्ता में जान बूझकर उन्हें शामिल नहीं किया जाता।दलितों को वे अपने बाहुबल दिखाने केलिए साथ रखते हैं।मुसलमान असल में भारत के धर्म परिवर्तित मूल निवासी है।वे अरब या किसी इस्लामी देश से आये हुए नहीं है।असल में भारत के मुसलमान बाहर से आए आर्यों के उत्तराधिकारियों से उत्पीडित धर्म परिवर्तित मूल निवासी ही है। सवर्ण समाज की आतंक और अहंकार को समाप्त करना आवश्यक है।शोषित वर्गों की एकता से अस्मिता की तलाश जल्द ही लक्ष्य तक पहूँच जाएगी। अंबेडकर ने दलित -मुसलमान की एकता केलिए बहुत अधिक कोशिश की।

गुजरात की गली गली में सवर्णों का दबदबा रहता था। वे दलित और मुसमलानों पर बारी बारी से वार करते थे। इसे समाप्त करने केलिए राजू ने दलित और मुसलमानों में एकता लाने के लिए एक संगठन बनाकर ज्यादात्तर दलित और मुसलमान युवकों को इसकी ओर आकर्षित किया। असलम उसके सबसे अच्छा दोस्त है। वह हर काम में राजू के साथ रहता है।

4.3.2. अंबेडकर के प्रति श्रद्धा

दलित साहित्य में सवर्णों द्वारा हाशिए की ओर धकेले भारत के दलित मानव सेवी लोगों के योगदानों पर भी प्रकाश डाला है। इसमें प्रमुख है डॉ .बाबा साहेब अंबेडकर। उन्होंने सवर्ण अधिकार के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध खडा कर दिया था। भारतीय इतिहास में अंबेडकर की पहचान सिर्फ संविधान के निर्माता के रूप में है। उसके व्यक्तित्व के बहुमुखी पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया है। समय समय पर लिखे गये भारतीय इतिहास और सवर्ण नेताओं ने आर्य कुल में जन्मी समाज सुधारकों के नाम के प्रचार प्रसार पर ही रुची रखी हैं। अंबेडकर इतिहासकारों केलिए सिर्फ संविधान के शिल्पी है।

दलितों के समान नारी और अल्पसंख्यक भी हिंदू सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के नीचे घुट घुट के जी रहे थे। इन लोगों की अस्मिता केलिए भी वे परिश्रम करते रहे। इसलिए हर एक भारतीय को अंबेडकर के जीवन और प्रयत्न के बारे में जरूर अभिज्ञ होना चाहिए। राजू दलित मुस्लीम महासंग के युवाओं को अपनी अस्मिता के बारे में अवगत कराते हुए कहते है कि -" यही तो त्रासदी है। हिंदुओं की तरह मुस्लीम बुद्धिजीवियों ने भी अंबेडकर को नहीं पढा। यहां तक की वे जिन्ना तक को पूरी तरह से नहीं पढ़ पाए, क्योंकि हिंदु नेताओं ने उन्हें खलनायक जो बना दिया था। बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर ने न सिर्फ संविधान बनाया बल्कि मोहम्मद अली जिन्ना और डॉ. अंबेडकर की अनगिनत मुलाकातें भी हुई थीं।"[11]

4.3.3 नारी अस्मिता

इस्लाम धर्म में नारी केलिए कठोर नियमों का विधान है। नारी स्वतंत्रता केलिए कोई स्थान नहीं है। नारी को अपना मन बुर्कों के नीचे दबाकर जीना पडता है। उसे धर्म के सारी नियमों को बिना पूछे पालन करना पडता है। सादिया सैयद

अकरम की बेटी है। उसने अपनी बेटी को पूरी आज़ादी देकर पाला है। इसलिए वह हर बात में अपना एक दृष्टिकोण रखती है। नारी केलिए बुर्का पहनने की बात को वह नहीं मानती। वह सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों को तर्क की कसौटी पर कसकर ही अपनाती है। सादिया को बुर्का पहनाने केलिए हठ करनेवाली बुआ से वह पूछती है कि यह महिलाओं की पहचान केलिए मुसलमान समाज में बुर्के का ईजाद हुआ।...'यह सवाल सुनकर बुआ दंग रह जाती है।क्योंकि इसके संबन्ध में उसने ऐसे कभी नहीं सोची थी।

सादिया मुसलमान होकर भी हिंदू के समान रहती थी। वह दलित हिंदू महासंग में सक्रिय भागीदार बनती है। वह अपनी कक्षा की एक मात्र मुसलमान थी। देश में सांप्रदायिक दंगे शुरू होती है तो हिंदू छात्र उसे सताते है। वह संघ के कुछ लोगों को साथ लेकर कालिज प्रिंसिपल के पास जाती है। लेकिन प्रसिंपल हिंदुवादियों के समान बोलने लगा तो वह कालिज ही छोड देती है। जहाँ अपना सम्मान नहीं है, वहाँ रहने केलिए वह तैयार नहीं होती।

सादिया बहुत साहसी और हिम्मतवाली नारी है। दंगें में हिंदू आतंकवादियों ने मुसलमान घरों पर चुनचुनकर हमला करने लगा। दंगाईयों ने सादिया के घर पर हमला किया। उसके पिता को गोली से मार दिया। सादिया ज़ख्मी हो गयी। वे घर के दरवाजे तोड़ने लगे तो वह साहस बटोरकर घर से बच निकली। दंगाईयों ने उसे पकडकर उसके शरीर नोचने केलिए उसका घर चप्पा चप्पा छान मारते रहे। इस समय वह छत से पडोसी के घर छत पर पहूँच गयी।

हर जाति, धर्मवाले नारी को इज्ज़त का प्रतीक मानते है। इसलिए हर लड़ाई में नारी के शरीर को दुश्मन को परास्त करने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। उसके शरीर पर करने वाले हर एक हमले को उस वंश, धर्म, या जाति के

सम्मान पर कर रही चोट के समान मानता है। इसलिए हर दंगे और युद्ध में नारी के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। दंगाईयों ने मुसलमान नारियों की बलात्कार किया, उसके योनी में त्रिशूल गाढ़ दिया। आठ महीने की बच्चे को कोक निकालकर टुकड़ा टुकड़ा कर दिया।इस तरह की सैकड़ों नारियां राहत शिविर में थी। एक एक महिला अपने भाई, पति,बेटी, बेटा,मां को कत्ल करते देखा था। इस तरह की नारियाँ और बच्चे ही दंगे की बचत होती है। राहत शिविर में दंगाईयों के क्रूर बलात्कार की शिकार हुए नारियों के बीच जीने की प्रेरणा बनकर वह जीने लगी।

4.3.4. मानवता

मानव चाहे वह किसी भी धर्म का हो अविच्छिन्न रूप में वह मानव ही है। भूकंप में सबकुछ नष्ट राजू केलिए असलम ही एक मात्र सहारा बना।असलम ने सडक के पास गिरे राजू को देखकर कभी यह नहीं सोचा कि यह हिंदू है या मुसलमान। वह इंसान मानकर उसे सहारा दिया और अपना घर ले आया।जब तक उसके घांव नहीं भरा तब तक अपने घर में सहारा दिया। भूकंप में सब कुछ नष्ट राजू को उसका घर अपना घर बन गया। असलम की माँ उसे अपने मरे हुए बेटे के स्थान पर देखती है।राजू भी उस घर को अपना घर ही मानता है। राजू दलित और मुसलमान की अस्मिता केलिए दिन रात काम करता है। जाति और मज़हब ही सब नहीं है, मानवता ही मानव को मानव बनाता है।

4.3.5. सवर्ण राजनीति पर प्रहार

फूट करके राज करने की व्यवस्था ही भारत की मूल राज नीतिक व्यवस्था है। सवर्ण दलितों और मुसलमानों को अपना दुश्मन मानते हैं।सवर्ण नहीं चाहते कि दलित और मुसलमान एक हो। हिंदू दर्शन के अनुसार ये निम्न श्रेणी के हैं।वे उनसे घृणा करते हैं।लेकिन सवर्णों में यह डर रहता था कि अगर ये दोनों दुश्मन एक हो

जाएँगे तो बडी शक्ति बन जाएगी। इसलिए वे हमेशा अलग रखने की कोशिश करते रहते थे। सवर्ण राजनीति पर प्रकाश डालते हुए राजू कहता है कि "सवर्ण नहीं चाहते दलित और मुसलमान एक दूसरे के सुख दुख में शरीक हो।......उन्हें हमें अलग अलग कुचलने में सुविधा होती है।मुश्किल जब होती है तब दलित और मुसलमान एक साथ आ जाते हैं।"[12] सवर्ण मानसिकता की सही जानकारी केलिए अंबेडकर को पढने की सलाह भी देता रहा।

4.3.6. बौद्ध धर्म की स्वीकृति

दलित हिंदू धर्म का अंग होते हुए भी हिंदू नहीं है। वर्णव्यवस्था के अनुसार पहले तीन वर्ण ही हिंदू है। उनके समाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवहार में समानता है। मेल -मिलाप में भी कोई प्रतिबंध नहीं है। लेकिन अंतिम वर्ण के साथ जानवरों से भी बदत्तर व्यवहार किया जाता है।

बौध धर्म ब्राह्मणधर्म की क्रूरता,हिंसा और अमानवीयता के विरुद्ध शूद्र धर्म की दुख और पीडाओं को दूर करने केलिए आया।इस धर्म का मूल भारत की मूल संस्कृति है। इसलिए राजू बौद्ध धर्म को अपना धर्म मानता है। धर्म के बारे में पूछने वालों से वह बस यही कहता है कि मैं दलित हूँ। वह दलितों का धर्म बौद्ध धर्म मानता है। यह अहिंसा, भाईचारा और प्यार का धर्म है। वह दलितों को हिंदू धर्म का भ्रम तोड़कर दलित धर्म अपनाने का आह्वान करता है। क्योंकि उनके दलितपन का आधार ही हिंदू धर्म है। जब हिंदू धर्म में नहीं रहेंगे तो जाति का भेद -भाव भी नहीं रहेगा। हिंदू धर्म को छोडकर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का आह्वान देते हुए राजू कहते है - " आप सबकी नियति यही है। हिंदू बाड़े से गुलाम बनकर रहना। याद रखो गुलामों का कोई मान सम्मान नहीं होता। बाबा साहेब अंबेडकर ने बहुत पहेले ही हिंदू धर्म

छोड़कर बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था और तुम हो कि अभी तक उत्पीड़कों के धर्म से चिपटे हो।"[13]

4.3.7. शोषण का विरोध

सभी काम केलिए अपनी इज्जत है,क्योंकि काम जीवनोपार्जन का साधन है।भारत में पसीना बहाकर काम करनेवालों को तिरस्कृत नज़रों से देखता है और कोई काम न करके दलितों की कमाई से ऐश आराम से जीनेवालों को बडी इज्जत भी देता है। यहाँ काम के अनुसार इज्जत मिलती है और काम जाति से जुडा है। इसलिए सवर्ण हमेशा यह कोशिश करता रहते है कि दलितों को शिक्षा के उनुसार नहीं जाति के अनुसार ही काम मिलें।

रुक्मा आठवीं पास थी। लेकिन लाख कोशिश करने के बाद भी उसे नगर निगम में झाड़ू लगाने का काम ही मिला। रुक्मणी नाम घटकर रुक्मा हो गया।अपनी अस्मिता को चुनौती देनेवाले भंगीपन से मुक्त होने केलिए उसने पढ़ाई की लेकिन दलितों की अस्मिता सवर्णों की फूटी आँख नहीं सुहाती। इसलिए दसवीं पास होने के भी रुक्मणी को दफ्तर में कोई काम देने केलिए नगर निगम के अधिकारी तैयार नहीं होते। फिर भी रुकमा हारने केलिए तैयार नहीं थी।वह अस्मिता की तलाश ज़ारी रखती रही। रुक्म के शब्दों में- " नाम ही क्यों सब कुछ घट गया था।सिर पर मैला ढ़ोनेवाली का भी कहीं रुतबा होता है। रुतबा होता ब्रह्मा के मुँह से पैदा होनेवाली संतानों का। सदियों से अभिशप्त जीवन जीने केलिए मज़बूर थी। फिर भी अंधेरे में कोशिश ज़ारी थी। कभी तो इज्ज़त की नौकरी मिलेगी।" [14]

अंबेडकर के विचारों को राजू ने मुक्ति के मूल मंत्र के रूप में स्वीकारा था। दलितों को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले हिंदुओं की नज़रों से उन्होंने पहचान ली थी कि दलित हिंदू नहीं है, हिंदू अपने सेवकों के रूप में दलितों के अपने पास रखा है,

लेकिन थोडी दूरी पर। वह आर्यों की दोहरी नीति को नफरत करता है। दलित मुसलमान संघ के द्वारा वह हिंदू धर्म से मुक्ति पाने की कोशिश करता है। उसे समझाने केलिए थाने पर बुलाने वाले इंस्पेक्टर से वह कहता है कि " हिंदुओं को झेलते झेलते लंबा समय हो गया है। अब निर्णय करने की हमारी बारी है। "[15]

4.3.8. षड्यंत्र का विरोध

सवर्ण दलितों को सत्ता, समाज और साहित्य में कोई स्थान देना नहीं चाहते। लेकिन उसे अलग होने भी नहीं देता। उसे हमेशा अपनी मुट्ठी में कसे रखते हैं। यह एक राजनैतिक षडयंत्र है। क्योंकि वह सत्ता की निर्णयात्मक शक्ति है। जब आर्य यहाँ आये वे केवल पंद्रह प्रतिशत थे,बाकी पचासी प्रतिशत मूल वासी थे। सिर्फ पंद्रह प्रतिशत लोग बाद में कभी भी पचासी प्रतिशत द्वारा पराजित किया जा सकता है। इसलिए उन लोगों ने ऐसा षडयंत्र रचा कि दलितों को गुलाम के रूप में साथ रखकर एक नया राजतंत्र की सृष्टि की। वर्णव्यवस्था इस राजतंत्र की परिणति है। कालांतर में मूलवासी शूद्र के रूप में हिंदू धर्म का भाग बन गया। लेकिन सेवक के रूप में।

सवर्ण कभी भी दलितों को अपना एक अंग मानने केलिए तैयार नहीं हुए है। उसे छूने भी नही देते है।गलती से छूने पर भी सवर्ण उसे जानवरों की तरह मारते है। लेकिन मुसलमानों को मारना है तो वे दलितों से कहते है कि गर्व से कहो कि हम हिंदू हैं। जब हिंदुओं का मकसद पूरा हो जाता है तब उन्हें याद दिलाया जाता है कि तुम दलित हो। इस प्रकार मुँह में राम और बगल में चुरी लेकर सनातन आर्यधर्मी आज भी दलितों को साथ लेकर चलते हैं।

आज तक दलित अपने को हिंदू धर्म के अंग मानकर जीते आये हैं। लेकिन अब वह सत्य से अवगत हो रहा है। दलित राजू परमार सवर्णों की इस नीति का विरोध करते है। राजू अपने आप को हिंदू मानने केलिए तैयार नहीं है। वे सबसे

अपना परिचय दलित ही देता है। मुसलमानों के साथ दोस्ती रखने के कारण राजू को सवर्ण लोग दुशमन समझते हैं। उनके साथ मिले हुए पुलिस अफसर ने राजू से उसके धर्म के बारे में पूछा तो उसने आप को दलित कहा।तब पुलिस ने उसे समझाते हुए कहा दलित हिंदू है, और हिंदू व्यवस्था है। राजू ने इसका विरोध करते हुए कहा कि यह आप लोगों का षड्यंत्र है, इसे मानने केलिए मैं तैयार नहीं हूँ।

राजू गाँव और शहर के जीवन से दलितों की हालत को करीब से देखा और परखा है। दलितों को गरीबी में झोंकनेवाली जाति व्यवस्था से वह नफरत करता है। वह जानता था कि वह हिंदू होकर भी हिंदू नहीं है, बस दलित है। इसलिए जो भी उनसे जाति पूछते वह यह ही कहता है कि मैं हिंदू नहीं हूँ। दलित हूँ जिसकी कोई जाति नहीं है। अंबेडकर भी दलितों को वर्ण व्यवस्था से अलग माना है। कंचा इलैया ने ऐसे परंपरागत साक्ष्यों पर लिखी गयी रचना के द्‌वारा यह साबित किया है कि दलित सवर्ण हिंदू समाज का अंग नहीं है। वे हिंदुओं द्‌वारा पराजित जातियाँ हैं। जो सदियाँ गुज़रने के बाद भी हर तरह के उतपीड़न झेल कर भी अपनी परंपराओं को जिंदा रखे हुए हैं।

4.3.9. संगठन

बहुत सारे मुसलमान यह जानते है कि उसकी जडें भारत में ही है। स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों केलिए पाकिस्तान बना दिया गया। फिर भी बहुत सारे भारतीय जो मजबूरी के कारण मुसलमान बने थे यहीं रहे। लेकिन यहाँ के उग्र हिन्दु उन्हें मारने की ताक में रहते हैं। वे यही कहते हैं कि वर्षों पहले सोमनाथ मंदिर पर मुसलमानों ने हमला किया इसका बदला हमने लिया है। राजू दलित मुसलमान संघ की ओर से दोनों को एक बनाने का प्रयास करने लगे। क्योंकि सांप्रदायिक दंगों में हमेशा दलित और मुसलमान ही मारे जाते हैं। राजू दलित मुस्लीम महासंघ के लोगों

से यही कहते है कि मुसलमान भाईयों को दलितों का दोस्त बनना चाहिए,क्योंकि वे भी उत्पीडित वर्गों में एक है।

राजू परमार और असलम दलित मुस्मीम महासंघ के कार्यकर्ता हैं।वे दलितों और मुसलमानों की एकता केलिए काम करते रहे। राजू परमाल, सुशील, असलम, सुरेश यादव आदि इसके अन्य कार्यकर्ता हैं। राजू इंकलाब पत्र में भारतीय समाज में एकता लानेवाली, उसके मन - मुठ़ाव को दूर करनेवाले लेख लिखने लगा। राजू अखबार केलिए काम करने के साथ साथ लोगों को संघ के सदस्य भी बनाते थे। कुछ ही दिनों में इंकलाब की सदस्यों की संख्या दुगुनी हो गयी।संघ के लोग हर दूसरे दिन उससे आकर मिलते थे।

बचपन से मिल रहे तिरस्कार के कारण दलित अपने आप को हमेशा पीछे की ओर खींचते आये है। इस संघ से जुडने के बाद उनमें अस्मिता बोध जागने लगा। राजू को इंकलाब में सधैर्य अपने विचारों को रखने का साहस उसे मिला। वह दलित हिंदू महासंघ और और अपने लेखन के द्वारा सोई हुई दलित जाति में अस्मिता का प्राण फूँकने का प्रयास करता रहा।

4.3.10. संघर्ष

स्वतंत्र अस्तित्ववाला एक मानव समाज अपनी वैभवपूर्ण जिंदगी को खोकर हिंदू समाज के हाशिये पर पडकर बिलबिलाते कीडे मकौडों की जिंदगी जी रहा है। दलित समाजिक विषमता पर आधारित जाति व्यवस्था का शिकार रहा है। हज़ारों जातियों में बँटे हिंदू समाज में सदैव हाशिये पर जीने केलिए अभिशप्त। इन्हें बाहर निकलने का अधिकार नहीं है, क्योंकि इनको देखने भर से लोग अपवित्र हो जाते हैं। अन्य धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ माननेवाली हिंदू संस्कृति इनका उत्थान अब तक नहीं कर पाया है।हिंदू धर्म के अंदर सेवा देने का भाव नहीं है, सेवा लेने का भाव ही

है।इस अमानवीय और अनैतिक धर्म से राजू घृणा करता है। वह दलितों को संघर्ष के द्वारा मुक्ति दिलाना चाहता है।

राजू हिंदुओं के विरुद्ध काम करते रहे लोगों को जागृत करने के अलावा उसे अपनी जिंदगी में और कोई लक्ष्य नहीं सूझता था।उनकी लेखनी से समाज के बडे बडे लोग आकर्षित होने लगे। राजू ने बाबरी मस्जिद ढहाई के दिन मदरसे में बैठक किया। तब पुलिस और हिंदू ब्रिगेड के कुछ युवा वहाँ आया और उसे धमकाया। उससे मुसलमानों को छोडकर हिंदू बने रहने केलिए कहा। लेकिन वह अपने आपको हिंदू धर्म में ढूँढ़ने केलिए तैयार नहीं हुआ। पुलिस ने होस्टल खाली करना के आदेश देते हुए पत्र भेजा। असलम उसे अपने घर ले जाना चाहा लेकिन वह नहीं गया।क्योंकि वह अपने देस्तों को कोई परेशानी देना नहीं चाहता था। सी . बी .आई उस पर नजर रखने लगा था। राजू हिंदुओं द्वारा पूरी तरह घेर लिया गया।इसपर भी वह अपना रास्ता बदलने केलिए तैयार नहीं हुआ। इस पर चिंतित सादिया से राजू कहता है -" यह मेरी अकेली की तो परेशानी नहीं है। मैं तो सिंधु घाटी की उस गौरवशाली परंपरा से हूँ, जिनका इतिहास आर्यों ने खतम कर दिया था।"[16] उसने आदेश के अनुसार चौबीस घंडों में रूम खाली किया। वह मुसलमान दोस्तों को परेशानी देना नहीं चाहता था। राजू अपने दलित पैंथर दोस्तों की सहायता से अपने लिए दूर जयभीम बस्ती में रहने लगा। वहाँ रहकर वह अपने सपने के लिए काम करने लगा।

4.3.11. धर्मांतरण

1923 में बी.डी सवरकर ने अपनी पुस्तक 'हिंदू कौन है' में लिखा है...वह व्यक्ति जो सिन्धु नदी से समुद्र तक फैले भौगोलिक क्षेत्र भारत वर्ष को अपनी पितृभूमि और पुण्य भूमि मानें वह हिंदू।यह परिभाषा कट्टर हिंदुवादियों की आधार शिला बन गई।तब से लेकर वह भारत को भारत से हिंदुस्तान बनाने की कोशिश में लगे रहे।

असल में यह भारत केलिए नयी समस्याओं का बीज बोया। इसकी विकाराल परिस्थितियों में भारत अब भी जी रहा है। विवेकानंद ने उच्च वर्ग के लोगों से आह्वान किया था कि तुम्हारे मन की कुत्सित भावनाओं ने ही इस देश को कभी ऊपर उठने नहीं दिया।

भारत की समस्याओं का मूल कारण एक हद तक सनातनी आर्य दर्शन है। उनकी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नीति है।यहाँ जितने भी मुसलमान और ईसाई है ज्यादात्तर, यों कहें तो 75 प्रतिशत से अधिक लोग आर्यों की सामाजिक व्यवस्था की अमानवीयता से डर कर या उससे तंग आकर धर्मांतरण किये हैं। सोफिया के पिता उसके पैदा होने के एक वर्ष पहले धर्म परिवर्तन किया था।राजू ने इसमें अपना स्वर मिलाते हुए कहा कि "तुम्हारे पिताजी ने सम्मान की तलाश में नया धर्म स्वीकार किया। उन्होंने अच्छा किया। जीवन में रोटी से ज्यादा सम्मान की जरूरत इसकी है।"[16]

4.4. नीला आकाश (2014)

दलित इस सहानुभूति को नकारते हुए अपनी अस्मिता की तलाश खुद करने और विजय प्राप्त करने का दृश्य इस उपन्यास में उकेरा है।नीला आकाश दलित उद्धान के नये क्षितिज का अन्वेषण है।इसमें हाशियेकृतों के सपनों को सकार कराने केलिए नये नये रास्तों की तलाश की गई है।

4.4.1. जागृति

जागृति दलितों के उद्धार केलिए आवश्यक है। सवर्ण हिंदू दलितों से सहानुभूति रखते हैं।उनकी बातों और भाषणों में सहानुभूति है। सिर्फ सहानुभूति। अंदर ही अंदर वे वही है जो पहले थे। वे दलितों को उनकी गंदी गलियों और भद्दे कामों से छुटकारा

दिलाना नहीं चाहते। वे उससे यही कहते है कि तुम हिंदू हो इसलिए तुम्हें ईश्वर ने जो कार्य सौंपा है उसे मरते दम तक करते रहना चाहिए। भक्ति का अफीम पिलाकर उसे चुप करा दिया जाता है।कभी भी उसे यह सोचने भी नहीं दिया कि यह नियम ईश्वर ने नहीं मनुष्य ने बनाया है।दलितों को गुलाम बनाए रखने केलिए गढित एक एक नियम को लेकर अब विचार विश्लेषण करने लगा है। भीकूजी की पत्नी चन्दरी कहती है कि " मैं सब जानती हूँ इनकी चार सौ बीसीवाली बेईमानी। जाति भेद ऊँच नीच के सारे नियम कानून इन्हीं पंडितों ने बनाये है और कहते हैं,भग्वान ने बनाए हैं। भग्वान क्या कि सी के साथ बेईमानी करेगा, तब फिर कौन उसे पूजेगा। भग्वान यदी कहीं है तो वह कभी किसी को धोखा नहीं दे सकता।"[17]

पारिवारिक झगडे दलितों को पीछे की ओर धकेलते हैं। सवर्णों के घर में भी झगडे होते है। लेकिन यह बाहरवाले नहीं सुनते। वे अपने झगडे को घर के दायरें में सीमित रखते हैं। घर की बात वह बाहर जाने नहीं देते। लेकिन दलितों की झगडे कभी कभी घर के सामने खेली गयी नौटंकी के समान हो जाते हैं। इसमें गाली गलौच का बौछार है। वह भी ऐसी गंदी कि सुननेवालों कान बंध कर देंगे। इसे दूसरे सुनने में उन्हें कोई शर्मिंदगी भी नहीं है। वे इसे ही मर्दानगी समझते हैं, इसे ही वह जिन्दगी मानते हैं। शिक्षा से व्यवहार में जो सभ्यता आया है वह उनमें नहीं है। इसलिए ही रोज अपनी गर्भवती पत्नी को मारनेवाले सीताराम को उसकी माँ इसे उसकी मर्दानगी कहती है। अपनी क्षमता के अनुसार इसमें नमक मिर्च लगाने की कोशिश करती रहती है। नारी को भरी समाज में गाली देकर मारना कुछ लोग मरदानगी कहेंगे लेकिन सभ्य समाज इसे बर्बरता ही कहेंगे। दलितों को अपने मान सम्मान बढाने केलिए सबसे पहले नारी सम्मान सीखना चाहिए।नारी की रक्षा करके उसे इज्जत देनेवाला समाज अपने देश में ही नहीं विश्व में भी नाम कमाएगा।

भारतीय समाज में लडकी को बोझ समझा जाता है। इसलिए हर माँ बाप इस बोझ को जल्द से जल्द अपने सर से उतारने की कोशिश करते हैं। इसलिए पाँचवी तक पहूँचते ही लडकी की शादी के बारे में सोचने लगते हैं। साथ ही साथ लड़कों को कम उम्र में शादी करने के कारण देर होने पर वर न मिलने का डर भी है। कुँआरी लडकी के माँ-बाप पर समाज का दबाव भी रहता है। इसलिए लडकियों को भी छोटी उम्र में ही शादी करवा दिया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि लडकियों की शादी कम उम्र में ही किसी अयोग्य वर से कर दी जाती है। उसकी पढ़ाई तथा राजनीति, व्यवसाय आदि विभिन्न क्षेत्रों में काम करके के अपने आप को स्थापित करने का अवसर भी नष्ट हो जाता है। लडकियों की शादी सही उम्र में सही जीवन साथी के साथ होनी चाहिए। चंदरी कलिया से कहती है-"बच्चों को उनकी प्रगति और विकास केलिए पूरा समय मिलना चाहिए। रोजी रोटी केलिए तो सब जीते हैं, हमारे बच्चे देश और समाज केलिए अच्छा काम करें, यह बडे गर्व और गौरव की बात है। हमारे बेटी सही रास्ते पर चल रही है। उसके योग्य वर मिलने पर ही, उसकी शादी करेंगे।"[18]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा को सार्वजनिक बना दिया गया। इसलिए सवर्णों को न चाहकर भी दलित बच्चों को विद्यालयों में स्थान देना पडा। लेकिन वह हर दम यह कोशिश करता रहा कि दलित मज़बूर होकर पढाई छोडकर चला जाय। कक्षा और स्कूल में झाडू लगाना और बैठने की पट्टी बिछाना दलित बच्चों के काम थे। स्कूल के पानी के घडा छूने का अधिकार नहीं था। प्यास लगने पर भी कोई सवर्ण बच्चे या चपरासी के आने का इंतजार करना पडता। चपरासी दूर से पानी देता था। दलित बच्चों को शिक्षा पाने के लिए कठिन परिश्रम और सहन की जरूरत है। दलित बच्चों को कक्षा में पिछली सीट पर ही बिठाता था। हर क्षण में उसे यह एहसास

दिलाता रहता था कि तुम दलित है। पीछे बैठने से श्याम पट न दिखाई देने की शिकायत करनेवाली राधा को अध्यापक डांटते है।

भीकूजी अपनी बेटियों को पढ़ाने स्कूल भेजता है लेकिन सवर्ण अध्यापक उन्हें पढने नहीं देता था।वे कक्षा में डरी सहमी, सिकुडी, सिमटी पीछे कोने में बैठे रहते हैं। न मास्टर उसके पास जाता है न उसका लेखा देखता है, न कुछ लिखना सीखता है। बिना किसी गलती के उन्हें डरा धमकाकर भयभीत बनाकर रखा जाता था। काम पर गये भीकू और चंदरी इसके बारे में जानते ही नहीं है। स्कूल और घर में ठीक पढाई न होने के कारण पहली कक्षा पार करने केलिए उन्हें दो साल लग गये। उन्हें हमेशा मास्टर से डाँट फटकार भी सुननी पडती थी। तिरस्कार और अपमान से डरकर पहले सीता और राधा, फिर लक्ष्मी और पार्वती भी स्कूल जाना छोड दिया।सवर्ण अध्यापक भी यही चाहते हैं कि दलित बच्चे न पढें।

दलित हिंदू संस्कृति का अंग नहीं है।उसका अपना अलग अस्तित्व है। लेकिन दलित हिंदू धर्म का अंग मानने में गर्व महसूस करते हैं। सुनी हुई धर्म की बातों और पौराणिक कथाओं को ही ज्ञान का भंडार माननेवाले कैलाश को समझाते हुए भीकूजी कहता है -"बेटा अपने अण्णाभाऊ साठे और डॉ भीमराव अंबेडकर का साहित्य पढो,अपने दलित पिछडे समाज की स्थिति समझकर, उसके लिए काम करो।"[19]

4.4.2. शिक्षा

दलित दरिद्रता और बेरोजगारी से जूझते हुए अभाव और अपमान का जीवन बिता रहे हैं।भीकूजी अनपढ़ है।उनका काम और व्यवसाय भी ऐसा है कि जिसकेलिए शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं है।भीकुजी का खानदान कई पीढियों से बाजा बजाने का और सूपा डलिया बनाने का काम करके जी रहा था। यह काम पीढ़ी दर पीढ़ी

करने के कारण उनकी जाति केलिए कभी शिक्षा की जरूरत ही नहीं पडी। अशिक्षित होने के कारण इसके अलावा कोई दूसरा काम मिलने का अवसर भी नहीं मिला।

भीकू अनपढ़ है, फिर भी अपने आस पास की खबर अवश्य रखता था।भीकू को मालूम था कि अब जमाना बदल रहा है। 1947 में भारत स्वतंत्र हो गया है। सब बराबर है। देश के संविधान के अनुसार हमें भी शिक्षा पाने का अधिकार है। यदि हम अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजेंगे तो वे भी हमेशा के लिए गुलाम बन कर ही रह जाएगा। उन्हें अपनी मर्जी के अनुसार रोजगार मिलना है तो उसे शिक्षा देना बहुत जरूरी है। इस जानकारी उसके परिवार को मुक्ति का रास्ता दिखाता है। जाति के इस भूल- भुलय्या से निकलने केलिए वह शिक्षा को ही एक मात्र रास्ता माना। वह अपने चार बेटियों और बेटे को स्कूल भेजता है।

सेवानगर के लोगों केलिए शिक्षा पाना अक्षर ज्ञान प्राप्त करना मात्र है।शिक्षा का लक्ष्य चिट्ठी पढ़ना और हिसाब करना। उनके अनुसार दलितों को आगे पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। अक्सर बुजुर्ग लोग कहा करते थे कि पढ़कर वकील बनना तो बडे लोगों का काम है। हमें तो अपना रोज़गार धंधा ही संभालना है। ऐसे वातावरण में जीने वाले बच्चों के मन पढ़ाई के प्रति कैसे लगाव हो सकता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि वह जल्द ही स्कूल जाने की झंझड़ से मुक्त हो जाते है। यह मानसिकता दलितों को पीछे की ओर घसीट रही है। आकाश एम.कोम पास करके सी.ए भी पास किया था। वह अपनों में अस्मिता बोध जगाने केलिए और उसे पीढ़ी दर पीढ़ी फैलाने केलिए आकाश बुजुर्ग लोगों को जागरण का संदेश देता है। क्योंकि शिक्षित बुज़ुर्ग एक परिवर्तन का पहला लक्षण है।

4.4.3. जातीयता का विरोध

सवर्ण मानसिकता में अब भी बदलाव नहीं आया है। अब भी वे लोग दलितों को डरा धमकाकर, मार-पीटकर अपना सारा काम करवाते हैं वह अब भी यह जिद्द कर रहे है कि दलित अपनी खानदानी काम करे। अपनी अस्मिता केलिए प्रत्येक दलित को इस का विरोध करना चाहिए। जब तक विरोध नहीं करेगा तब तक यह नहीं खतम होगा। नीलिमा के मामा को ठाकुर सुमेर सिंह शाम को अपने घर आये मेहमान की अगवानी में बाजा बजाने केलिए बुलाया। दुलीचंद ने इनकार किया तो ठाकुर ने क्रुद्धित होकर कहा कि साले हरामी निकाल दूँ तेरी मेहमानी उठता है या लगा दूँ दो जूते। मैं तेरा घर तुझे भुलाने आया हूँ, और तू मुझे इस तरह जवाब दे रहा है। तेरी इतनी हिम्मत कहकर वह दुलीचंद को मारना शुरू किया था।पहले दुलीचंद सहम गया और मार खाता रहा। लेकिन जल्द ही उसकी अस्मिता बोध जाग उठा, उसने तनकर खडे होकर कहा कि- मैं नहीं आऊँगा तेरे साथ तुझे जो करना है कर लो।"[20] यह विद्रोही भाव प्रत्येक दलित के मन में है।इसे जागृत करने की आवश्यकता है।इक्का दुक्का विरोध से कोई फायदा नही हैं।ऐसे शोषण,उत्पीड़न के रोक धाम केलिए संगठित होकर,शिक्षित होकर काम करना चाहिए।जिस नौकरी करने से हमारा मान सम्मान नष्ट होता है ऐसा नौकरी छोड देनी चाहिए।

नीलिमा की दादी चंदरी स्कूल में झाड़ू लगाने का काम करती थी। एक दिन हेडमास्टर ने उसे टाईलट के सीवर लैन साफ करने केलिए कहा। उसने हेडमास्टर को समझाने की कोशिश की। लेकिन उन्होंने चंदरी से यही कहा कि यह काम करो या नौकरी छोड़ दो। चंदरी ने यही निर्णय लिया कि -ऐसी नौकरी हमें नहीं चाहिए, जो हमारे आत्म सम्मान को चोट पहूँचाता है, वह कष्ठ उठाने और भूखे रहने केलिए तैयार थी लेकिन ऐसे काम करने केलिए तैयार नहीं थी।

ब्राहमण दलितों को अपनी दादागिरी दिखाकर डरा धमकाकर रखते है। जो इसे देखकर डरता वह उनके पैरों पर आजीवन मरता है। घर में शेर के समान दिखाई देनेवाला आकाश का मामा सवर्णों के सामने डरे सहमे रहते हैं। आकाश को भी उन्होंने डराने की कोशिश की। लेकिन आकाश उनके सामने निर्भीक बना रहा।

4.4.4. लक्ष्य केलिए कठिन परिश्रम

लक्ष्य का निर्णय बच्चों में बचपन से ही होना चाहिए। अक्सर दलित बच्चे यूँ ही पढ़ते हैं।पुराने जमाने में दलित बच्चे एक वक्त की रोटी केलिए स्कूल जाते थे। अब जमाना बदल गया है। अब उसे अपनी अस्मिता की लडाई केलिए पढ़ना चाहिए। नीलिमा ने बचपन में ही यह निशचय कर लिया था कि वह खूब पढूँगी और बडी होकर टीचर बनूँगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने केलिए वह टीचर की मार और फटकार सुकर भी पढती रही। स्कूल में और घर में लगातार अध्ययन करती रही। उसने प्राईमरी के बाद मिडिल पास किया,हाईस्कूल और मेट्रिक भी पास किया। शादी की बात आयी तो नीलिमा ने परिवारवालों से खुलकर कहा कि मैं पढ़ना चाहती हूँ। नारी को अपने भविष्य का निर्माण खुद करना चाहिए। इसमें प्रतिबंध डालनेवाली परिस्थितियों में दृढ़ रहना चाहिए। उसके परिवारवाले उसकी शादी बाद में ही कराना चाहते थे।फिर भी नीलिमा अपना फैसला सुनाती है। नारी को अपनी जिंदगी के बारे में अपना एक निर्णय होना चाहिए। उसकेलिए कठिन परिश्रम करना चाहिए।

4.4.5. हिंदुत्व बोध से मुक्ति

हिंदू धर्म का हिस्सा मानने में दलित भी गर्व महसूस करते हैं। धर्म के क्षेत्र में दलित आज भी हाशियेकृत है। सवर्ण दलितों को हिंदू धर्म का अंग मानकर उसे साथ रखने की बात तो करते है। लेकिन बात आने पर सवर्ण अपना असली रूप दिखाता है। कालीचरण का बेटा हनुमान दल से जुड़ा हुआ है। हनुमान दल से जुड़कर उच्चवर्ण

के लेगों केलिए काम करना वह सम्मान की बात समझता था। लेकिन जाति से नीचे होने के कारण सवर्ण उसे दूर रखते थे। वह धार्मिक उत्सवों में भाग नहीं ले सकता,क्योंकि वह अछूत है।मगर धार्मिक कार्यक्रम की तैयारी में काम करने केलिए उसे बुलाता था।उनके भोजन की खाद्य सामग्री वह छू भी नहीं सकता था।एक दिन अनजाने में खाद्य सामग्री छूने पर सवर्ण पदाधिकारियें ने उसे बहुत अपमानित किया।इसके बाद कालीचरण ने हनुमान दल को छोड़कर दलित और पिछडे लोगों के कार्य में जुड़ गये।

4.4.6. परिवार नियोजन

दलित गरीबी में रहते हैं। उसकी आमदनी कम है, फिर भी उसका परिवार बहुत बडा है।बच्चों की संख्या में कोई कमी नहीं है।जो एक बच्चो को भी दो वक्त की रोटी नहीं जुड़ा पाता वह पाँच-पाँच की परवरिश कर रहे हैं। सभी दलित घरों में दिखाई देता है।पैसे के अभाव के कारण वह उन्हें खाना नहीं दे पाते,कपड़े नही दे पाते,अच्छी शिक्षा नहीं दे पाते,और अच्छी जिन्दगी भी नहीं दे पाते।भीकू के पाँच बच्चे हैं।पति पत्नी दोंनों कमर तोडकर काम करके बच्चों को पाला था।लेकिन आर्थिक तंगी के कारण वे अपने बच्चों का ठीक तरह से पर्वरिश नहीं कर पाये।गरीबी के कारण वे अपनी बेटियों को अच्छा वर भी ढूँढ़ नहीं पाये।भीकू के चार बेटियाँ है। उसके मन मे यह कचोट हमेशा रहता है कि उसकी बेटियों को सही घर परिवार नहीं मिल सका।अधिकतर दलित मां बाप इस व्यथा में व्यथित होकर अपना जीवन गुजारते हैं।

गुलामी की बेडियों को तोडने केलिए सबसे पहले परंपरागत धंधों की जंजीरों से मुक्त होना चाहिए। इसके लिए दलितों के सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा और अच्छी नौकरी मिलनी चाहिए। इसकेलिए हर दलितों को अपनी क्षमता के

अनुसार ही बच्चा पैदा करना चाहिए।अधिक बच्चे हमेशा मजबूरी पैदा करते हैं। गरीब माँ-बाप को पहले इसके बारे में अवश्य सोचना चाहिए कि इतने बच्चों को पालने की हैसियत उनमें है या नहीं। उत्तर अगर नहीं, है तो यह ऊँची जाति केलिए सेवकवर्ग पैदा करने के अलावा कुछ नहीं होगा।

रामकिशन पहली बच्ची के बाद दूसरा बच्चा न होने का निर्णय लेता है। रामकिशन और पत्नी ऊर्मिला एक मत होकर खुशी से फामिली प्लानिंग कर लिया। इस निर्णय से दुखी माँ को समझाते हुए रामकिशन कहता है कि "ज्यादा बच्चों से भी क्या होगा।जैसा एक चंद्र माँ,जैसा एक सूरज,वैसी ही हमारी बेटी नीलिमा है हम उसे ही खूब पढाएँगे,लिखाएँगे बडी अफसर बनाएँगे वही हमारा नाम रोशन करेगी।"[21]

दलितों में परिवार नियोजन की आवश्यकता बहुत है।अपनी हैसियत के अनुसार ही बच्चे होना चाहिए नहीं तो गरीबी के कारण वह किसी का भी ठीक से परवरिश नहीं कर पाएगा।परिवार नियोजन की जानकारी और उसके उचित साधनों के अभाव में दलित बस्ती में बच्चों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।पुरुषों की अपेक्षा स्त्री में पुत्र की कामना बहुत अधिक है।यह भी बच्चों की संख्या की वृद्धी में कारण बन जाते है।ठीक पर्वरिश और शिक्षा के अभाव में दलितों को कभी अच्छी नौकरी या जिंदगी नहीं मिल पाती।वे हमेशा कीचड़ में ही पडे रहते है।इसलिए नालिमा 'छोटा परिवार ही सुखी परिवार है' का संदेश सभी नारियों में फैलाता है।इसकी सुविधाओं की जानकारी वह महिलाओं को देती है।क्योंकि इसकी जानकारी पुरुषों से ज्यादा महिलाओं को ही देना चाहिए ।

4.4.7. संगठन

एकता व्यक्ति को समाज में स्थापित करने केलिए सहायता देती है। हाशियेकृतों के जीवन रुका हुआ है। वे रोज मेहनत करते हैं कुछ कमाते हैं, खाते हैं

पीते हैं, झगडा करते हैं। जब तक इस रीति में परिवर्तन नहीं आएगा उसकी प्रस्थिति में कोई अंतर नहीं आएगा। उन्हें एक होकर इसके लिए काम करना है। संगठन उसकी समस्याओं का समाधान करने केलिए सहायता देता है।आकाश ने दलित समाज को जोड़ने केलिए और दलित बच्चों को स्वावलंबी बनाने केलिए संगठन का रास्ता अपनाया।

बी.काम प्रथम वर्ष पढ़ते समय जाति भेद से पीड़ित आकाश का मन अपनी जाति की स्थिति में कुछ परिवर्तन लाने केलिए छटपटाने लगा।उसने देखा कि अपनी जाति के बडी शक्तिशाली आदमी भी सर्वणों के सामने डरते सहमते रहते है। मन ही मन अपने आप को ब्राहमणों के गुलाम समझते है।इन लोगों में अस्मिता बोध लाने केलिए आकाश ने लोगों को संगठित करने का निश्चय किया।

आकाश के माता पिता अपनी जाति केलिए मर मिटने केलिए हमेशा तैयार रहते हैं।यदि कोई वाल्मीकि जाति और महर्षी वाल्मीकि के बारे में कुछ कहते हैं। वे तो उससे लडते थे। आकाश इस तरह दलितों के बीच की आपसी लडाई बिलकुल पसंद नहीं करता था।वह अच्छी तरह जानता था कि यह केवल उसके माँ -बाप की ही बात नहीं है,सब दलित इस आलगाव के शिकार है।वह दलितों के बीच आपसी मित्रता लाने केलिए कोशिश करता रहता है।क्योंकि वह जानता था कि यह अलगाव ही दलित शोषण का सबसे बडा कारण है।इसलिए वह एकता का काम अपने घर से ही शुरू करता है।वह अपनी माँ को आपसी झगड़े के विरुद्ध,आपस में एकता और संगठन के महत्व की बातें समझाता है।पिता को वाल्मीकि के नाम पर मर मिटने के बजाय अपने समाज की जागृति और प्रगति केलिए काम करने की बात बताता है।वह अपने सभी मामा और अन्य सभी वाल्मीकियों को भी समाजिक एकता की बात समझाता है।शादियों में पैसा बहुत अधिक खर्च करने के बदले रुपया अपने

बच्चों की पढ़ाई में खर्च करने केलिए फिक्स डिपोजिट करें।आकाश के इस काम में धीरे धीरे उसके मामा कालीचरण और चंदू चौहान भी मदद करने लगे।उसकी माँ दुलारी और मामी बुधिया अपनी जाति की महिलाओं को ये बातें समझाने लगी।

उसने कामाठी और नागपुर के वाल्मीकि जाति के लोगों के घर घर जाकर उनसे मित्रता साबित किया।फिर उनके परिवार के पढ़नेवाले बच्चों की लिस्ट बनायी।सभी विद्यार्थियों को जोड़कर छात्र संगठन नाम की संस्था बनाई।प्रत्येक रविवार को छात्र संघठन का मीटिंग लेकर उनकी समस्याओं को सुनता और चर्चा करके हल करने का उपाय सुझाता।

दलित वाल्मीकि जातियों में शिक्षा का प्रसार और आर्थिक स्वावलंबन हो इसकेलिए में भीकुजी और रामकिशन सोचने लगे।दलितों के आपसी भेदभाव से आकाश भी दुखी था।उसने लोकनाथ मेश्राम, छोटेलाल चमार,भीकूजी और भीमनगर के अंबेडकरवादी नेताओं के साथ मिलकर अपने लोगों को जागृत करने केलिए दलितों को एकत्रित करने का फैसला किया।क्योंकि संगठन ही लोगों में यह भाव ला सकता है कि सब है, तो ही हम है।वे दलितों को एकत्रित करने केलिए अंबेडकर जयंती को सही समय माना।आकाश, रामकिशन और भीकूजी ने मिल 14 अप्रैल को डॉ.भीमराव अंबेडकर जयमती मनाने का निश्चय किया।भीकूजी मार्ग निर्देशन देते रहे और सारा कार्यव्यापार रामकिशन,आकाश और नीलिमा ने संभाल लिया।

चार्टट अकाउडंट बनने के बाद भी आकाश पूर्ण रूप से दलित पिछडे समाज को जगाने में अपना सहयोग देता रहा। व्यक्तिगत लाभ न देखते हुए आकाश अनेक सरकारी गैर सरकारी संस्थओं से जुडता रहा। एस .सी,एस .टी,ओ. बी. सी .और भटकी विमुक्त जातियों के हित में घोषित और अघोषित योजनाओं की जानकारी प्राप्त करके,वह इन लोगों को लाभान्वित करने केलिए उनका मर्गनिर्देशन करता था।

महाराष्ट्र की महात्मा ज्योतिब फुले समाज कल्याण संस्था और भीमराव अंबेडकर कल्याण संस्था की सरकारी योजनाओं का लाभ अति पिछडी जाति के लोगों को मिलाने में आकाश ने बहुत अधिक भाग-दौड़ किया। अल्प शिक्षित युवक और युवतियों में से किसी को वर्कशॉप का ट्रेनिंग दिया। वे परंपरागत काम छोडकर अच्छे व्यवसाय और व्यापार से जुड गये। सब दलित समाज जागृति मित्र मंडल संस्था से जुड़कर उसी के मार्गनिर्देशन में काम करने लगे।

दलित जाति के लोगों की सबसे बडी समस्या यह कि वे अपने बच्चों को शिक्षा में सहायता नहीं दे पा रहे है। इसलिए बच्चें ठीक तरह से पढ़ नहीं पाता। इसलिए फेल होने की खतरे का सामना उसे हमेशा करना पडता है। ड्यूशन देने केलिए गरीब माँ- बाप के पास पैसा भी नहीं है। इसलिए अक्सर फेल होने के कारण शिक्षा बीच में ही छोड़ना भी पडता है। आकाश कालिज में भर्ती करने बाद दोनों छोटे भाई और बहन की पढ़ाई की जिम्मेदारी स्वयं उठाई। बस्ती के बच्चों को इकट्ठा करके पढ़ाई में मदद करने लगा।

दलितों में संगठन लाने केलिए आकाश ने मातंग जागरण सभा का निर्माण किया।इसका मूल मंत्र शिक्षा प्राप्त करना था।बाद में यह सभा दलित जागरण सभा बन गया।इस सभा द्वारा वह दलित गरीब बच्चों की शिक्षा में मदद देता था।क्योंकि दलित बच्चों को शिक्षा में किसी से भी कोई मदद नही मिलता था। माँ बाप अनपढ़ होने के कारण उनसे भी सहायता नहीं मिलती।इसलिए उन्हें पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पडती है।

आकाश,भीकूजी और रामकिशन ने लोगों को संगठितकरने केलिए अंबेडकर जयंती मनाने का आयोजन किया।सेवानगर के दलितों को एकता के सूत्र में बाँधने केलिए 14 अप्रैल को डॉ भीमराव अंबेडकर जयन्ति मनाया गया।इसमें सम्मिलित

अधिकतर गाँववालों में कुछ अंबेडकर और उनके योगदान के बारे में जानते।वे सब अपनी जाति के लोगों को ही बड़े मानते हैं और किसी को नहीं।

4.4.8. नारी अस्मिता

शिक्षा ने नीलिमा के मन में अपनी जाति के उद्धार का एक नया सपना जगा दिया। वह इसकेलिए काम करने लगी।वह आकाश, अपनी पिता रामकिशन और दादा भीकूजी के साथ मिलकर दलित उद्धार केलिए काम करने लगी।इसके दौरान उसने पुरुषों को समझाया कि " महिलाएँ समाज का आधा हिस्सा है।वे पुरुषों के पीछे नहीं रहेंगी,बल्कि हर कदम पर पुरुषों के साथ चलकर,हर सामाजिक कार्य में पुरुषों के बराबर भाग लेगीं। यह उनका अधिकार भी है और कर्तव्य भी।"[22] नारी शक्ति की बात पुरुषों से करने के साथ ही साथ वह नारी को यह बात समझाने भी लगी। क्योंकि नारी का आधा हिस्सा इस सच्चाई से अनभिज्ञ है।नीलिमा सेवानगर के घर - घर में जाकर स्त्रियों और बच्चों को दलित संगठन केलिए आयोजित कार्यक्रम में भाग लेने का संदेश देती रही। सामाजिक कार्यक्रम पुरुषों केलिए ही नहीं स्त्रियों केलिए भी है। इसलिए सभी नारियों को समाज सुधार के हर कदम में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। नीलिमा बस्ती की महिलाओं को संगठित करके उसे स्वावलंबन का पाठ देने लगी थी।इसके असर महिलाओं पर धीरे धीरे आने लगा। अंबेडकर जयंती के कार्यक्रम में बूढे,जवान महिलाएँ आ गयी। तब तक कोई भी महिला पुरुषों के कार्यक्रम में भाग नहीं लेती थी।

भारत में नारी को घूँघट में रहने की व्यवस्था है। गाँवों अब भी यह प्रथा चल रहा है। नारी को यह पर्दा छिपाकर रखता है। यह उसकी अस्मिता पर रखा गया प्रतिबंध है।यह परोक्ष रूप में उसे गुलामीयत का बोध देता रहता है। अंबेडकर जयंती के कार्यक्रम में भाग लेने केलिए आयी बुधिया चौहान साडी के पल्लू से थोडा घूँघट

निकालकर सिर और मुँह ढ़ककर आयी थी। कार्यक्रम में सबके सामने इस तरह मुँह ढ़का कर बैठने में उसे पहली बार शर्म महसूस हुई। उसने धीरे धीरे अपना घूँघट पीछे खींच लिया। तब उसे कार्यक्रम में आये सभी लोग दीखने लगे। भाषण ठीक से सुनने तथा समझने में सुविधा मिली। पहली बार मालूम हुआ कि घूँघट में रहने से औरतें सभी बात ठीक तरह से सुन नहीं पाती। बुधिया को घूँघट हटाते देखकर सभी को खुशी हुई।

दारूबन्दी और नशाबंदी के मोर्चों को भी नारियों ने सांभाला। यदि कोई पुरुष शराब पीकर घर में घुसे तो उसे पुलिस थाने में गिरफतार करवाने की धमकी देतीं। कोई पति अपनी पत्नी को मारने केलिए हाथ उठाए तो पत्नी निडर होकर कहती खबरदार जो मेरे ऊपर हाथ उठाया। अब मैं ऐसी कमजोर नहीं, जो तुम्हारी मार खाकर रह जाऊँ। तुम एक मारो तो मैं दो लगाऊँगी। पति शर्म य़ा संकोच सो पीछे हट जाता हैं। नारी को अपनी ताकत की पहचान होना बहुत जरूरी है। तभी नारी जाति की प्रगति संभव है।

नीलिमा ने महिला जागृति का काम,पहले अपने घर और पडोस से शुरू किया। उसने अपनी माँ को 'दलित समाज जागृति मित्र मंडल' से जोड़ दिया उसने गंगाराम की पुत्र वधू रमा बाई को समझा समझाकर इतना समझदार बना दिया कि वह निड़र और साहसी बन गयी।वह अपने पति के दुर्व्यवहार के प्रति कठोर कदम उठाने लगी। अब वह अपनी पती से डरती नहीं। जिस दिन वह शराब पीकर आता है तब रमाबाई अपना विरोध प्रकट करती।

4.4.9. अस्पृश्यता का विरोध

दलित जातियों के लोग आपस में छुआछूत रखते हैं। ब्राहमण ने दलितों को छोटा बताकर अपनी जाति को बड़ा स्थापित किया है। उनकी देखा देखी हर दलित

जाति में भी दूसरी जाति से अपने आपको बड़ा बताने की एक लत सी बन गयी। छुआछूत और शुद्धि की बात दलित भी रखते है, जैसे सवर्ण रखते है। यह दलितों में अलगाव की भावना पैदा करता है। इसलिए दलित एक होते हुए भी अलग अलग हो गये है। दलित अस्मिता की तलाश में सबसे पहला कदम इस जाति की जकड़ से दलितों को मुक्त कराना है।

गंगाराम की पत्नी कलिया जात-पात मानती है। वह अपनी जाति को वाल्मीकि से ऊँची जाति मानती हुई बड़पन का भाव रखती है। एक दिन शाम को कलिया बाजार से सामान खरीद कर आ रही थी तब कैलाश चौहान की बेटा भागते हुए कलिया से टकरा गया। छूत लग गई कहकर कलिया वाल्मीकियों को कोसने लगी। नीलिमा उसे समझाती हुई कही कि "कली दादी बामन और वाल्मीकि भी एक दिन एक बराबर जरूर हो जाएँगे। इसके लिए हम सभी दलित जातियों को,एक साथ मिलकर रहना चाहिए। हमारे बीच काहे के जात पात।जो काम हम करते हैं वैसे ही काम वे करते है।जो हमारे सुख दुख है वह ही उनके सुख दुख हैं।हम तो वैसी ही कीचड की दलदल में फंसे है।आपस में मिलकर दलदल से बाहर निकल ने का रास्ता सोचना चाहिए। "[23]

4.4.10. आत्मविश्वास

भीकूजी,बेटे रामकिसन को पढाकर नौकरी पेशा आदमी बनाना चाहता था। लेकिन वह आठवीं तक ही पढ पाया। स्कूल में दूसरे बच्चों और अध्यापकों से उसे तिरस्कार ही मिला था। स्कूल में साथ पढ़नेवाले बच्चे उनके साथ नहीं खेलते थे। अध्यापकों से पीटाई, झिड़की और अपमान उसे नियमित रूप में मिलता ही रहा। रामकिशन सवर्णों की इस नीति को भली भाँति जानता था। इसलिए वह सेवानगर के लड़कों को यही समझाता था कि " दोस्तों, जो लोग हमारा अपमान करते हैं, हमारे

साथ अनयाय करते हैं, उन्हें जवाब देने केलिए, अपने रास्ते पर चलते रहो। एक दिन वे खुद हार जाएँगे।"[24] आठवीं की पढ़ाई कठिन थी। विशेष योग्यता प्राप्त छात्रों को ही नवीं कक्षा में भेजा जाता है। पढ़ाई में कमजोर बच्चों को फेल करके आठवीं कक्षा में ही रोक देते हैं। अंक गणित, रेखा गणित,बीज गणित अंग्रेजी सभी विषय कठिन थे। रामकिशन के माँ बाप, रिश्तेदार, गाँववाले कोई पढ़े लिखे नहीं थे। इन कठिन विषयों की पढ़ाई के लिए उनकी सहायता करनेवाला कोई नहीं था, न मास्टर, न सहपाठी, न गाँव वाले। रामकिशन विजय प्राप्त करने केलिए दिन रात एक करके पढ़ता है।

4.4.11. काम को जाति से मुक्त करना

दलित सामाजिक दृष्टी से एक वर्ग होते हुए भी अनेक जातियों में विभक्त है। यह विभाजन काम के आधार पर किया गया है। दलित जातिगत कामों को अपनी निजी संपत्ति मानते हैं और उसमें घमंड़ भी करते हैं। इसमें दूसरी जाति के लोगों का आगमन वे बर्दाशत नहीं कर सकते। यह एक तरह की मानसिक गुलामी है। दलित अस्मिता की रक्षा केलिए सबसे पहले उन्हें अपनी मानसिक गुलामी से मुक्त होना चाहिए। अंबेडकर की विचार धारा से उद्बुद्ध दलित अपनी नियति को बदल रहे हैं। शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ रहे थे। लेकिन आज भी ऐसे बहुत सारे दलित है जो जाति व्यवस्था जोर से पकडे हुए है। जाति बंधन को तोड़ने केलिए सबसे पहले काम को जाति से मुक्त करके सार्वजनिक बनाना चाहिए।

कालीचरण वाल्मीकि जाति का है।वह सफाई को सिर्फ वाल्मीकि जाति का काम मानता है। इसलिए मांग जाति के लोगों द्वारा यह काम करना उसे अच्छा नहीं लगता। उसके अनुसार दूसरी जाति के लोगों के कारण आज वाल्मीकि जाति के बहुत सारे लोग बेरोज़गार हो गये हैं। कालीचरण अक्सर भीकूजी से इसकी शिकायत करता था।क्योंकि वह मांग जाति की है और उसका बेटा रामकिशन भी सफाई का

काम कर रहा है। उनका दावा है कि इस काम पर सिर्फ वाल्मीकि जाति का ही हक है। इस प्रकार की सोच जाति भावना को दृढ बनाती है। इससे पढ़ -लिख कर कुछ बनने की कामना पीढी दर पीढ़ी उनमें नहीं आएगी। उसकी मुक्ति के रास्ता हमेशा केलिए बंध हो जाएगें। कालीचरण को समझाते हुए आकाश कहता है - " अंबेडकर ने हम सबकेलिए प्रगति का कितना बडा रास्ता दिखा दिया है। हम लोग भी उस रास्ते पर चलेंग। महार जाति के लोगों ने अपने जीवन में प्रगति और परिवर्तन, इस नये मार्ग पर चलकर पाया है। आप भी परिवर्तन के इस नये मार्ग पर चलो। रोजगार में परिवर्तन करो।"[25]

काम को जाति से मुक्त करने पर जाति की सख्तपन कम हो जाएँगे। रामकिशन मांग जाति का है। उसका पुशतैनी धंधा बाजा बजाना और सूपा डलिया बनाना है।लेकिन रामकिशन बैंक में सफाई का काम करता है। अब वह कभी कभी वह यह भी भूल जाता है कि उनकी जाति अलग है। एक ही रोजगार से जुड़ने के कारण वाल्मीकियों से भाईचारे का रिश्ता मानने लगा है। दलितों में एकता लाने केलिए सभी काम सभी केलिए होना चाहिए।

आकाश की प्रेरणा और सहयोग से गंगाराम के बेटे सीताराम और कालीचरण के बेटे कैलाश ने ओटो चलाने की ट्रेनिंग ली और ओटो चलाने लगे। वे इसप्रकार परंपरागत काम को छोड़कर नये सिरे से अपने जीवन चलाने लगे। आकाश भी यही चाहता था कि दलित अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अच्छे व्यवसाय और व्यापार से जुडे।

4.4.12. अंबेडकर के प्रति श्रद्धा

अस्मिता की तलाश करनेवाले दलित अंबेडकर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखते हैं। दलितों को अस्मिता की तलाश केलिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष की राह बाबा

साहब अंबेडकर ने ही दिखाया। समता और सम्मान का अधिकार बाबा साहब ने ही दिलाया है।

अंबेडकर ने अपने जीवन का अधिकांश भाग भारत के ऐतिहासिक,सांस्कृतिक और पौराणिक अध्ययन केलिए व्यतीत किया। वेदों और पुराणों के अध्ययन करने बाद उन्हें मालूम हुआ कि भारत की आम जनता जिन्हें दलित कहते हैं, उनका नारकीय जीवन एक खतरनाक षड्यंत्र का नतीजा है।इसका विरोध भाषणों और सामाजिक आंदोलनों के ज़रिए उन्होंने किया। लेकिन सवर्ण राजनीति और नेताओं की दोखली नीति से ऊब कर उनकी सारी उम्मीदें नष्ट हो गयी। उन्हें गाँधीजी पर विश्वास था, पूना पैक्ट पर विश्वास था, भारत की स्वतंत्रता और संविधान पर विश्वास था। इसलिए ही उन्होंने नेहरू के मंत्रि मंडल में कानून सलाहकार पद स्वीकार किया। वह चाहते थे कि इस पद पर बैठकर वे अपने लोगों को हिंदू धर्म में सम्माननीय पद दे पाएगा।भारत के मूल निवासी होने के कारण वह इसका हकदार भी है।लेकिन सवर्ण राजनीति में दलितों को झूठी आश्वसन के अलावा कुछ नहीं मिलेगा,तो उसने सलाहकार समिति से इशतीफा दिया।स्वतंत्र रूप से दलित मोचन केलिए काम करते रहे।अंत में उन्हें मालूम हुआ कि सवर्ण दलितों को मानने केलिए कभी तैयार नहीं होगा।आकाश लोगों को समझाते हुए कहते है कि “ आपको कुछ पता नहीं है,उन्होंने क्या क्या संर्घष किये हैं।मुंबई में इन्दु मिल की जगह लेने केलिए संघर्ष किया और चैत्य भूमि के पास बाबा साहब का राष्ट्रीय बनाने की घोषण की।मराठावाड़ा विद्यापीठ को डॉ.अंबेडकर का नाम देने का आँदोलन किया।उनके कितने लोग मारे गये।कितने लोगों ने आत्मदाह किया।आप नहीं जानते।”[26]

रामकिशन आठवीं तक ही पढ़े है। वह अंबेडकरवादी दर्शन के बारे में जानता है । उसने अंबेडकरवादी अनेक नेताओं और कार्यकर्ताओं के भाषण सुने हैं। महाराष्ट्र

में रहनेवाली महार जाति के जागरूक लोग अंबेडकर के भाषणों और उनके कार्यों के बारे में चर्चा करते थे। भीकूजी अनपढ़ है। फिर भी वह अंबेडकर के बारे में जानता हैं। अंबेडकरवादीयों को संपर्क में आने के कारण वे उनकी विचार धारा को गहराई से समझने लगे।इसके फलस्वरूप वे ये समझने लगे कि सबसे पहले सभी दलित जातियों में जागृति लाना जरूरी है ।दलित अस्तित्व और अस्मिता जगाने केलिए अंबेडकर की विचार धारा ही उन्हें सही लगी। इसलिए रामकिशन,भीकूजी और आकाश ने मित्रमंडल के लोगों के साथ मिलकर गाँव में अंबेडकर जयंती मनाया। जातिवादी लोग अंबेडकर को मानने केलिए तैयार नहीं हुए। उन्हें समझाते हुए आकाश ने कहा - " आप सच्चाई को सुनो, समझो और अपनी खुली आँखों से देखो। हम सभी को अपने शुभचिंतक महापुरुषों की जयंती मनाना चाहिए,उनके विचार और संदेश अपने जीवन में लाना चाहिए।उनके संदेश से,अपनी जाति और समाज को जगाना चाहिए।"[27]

4.4.13. बौद्ध धर्म के प्रति लगाव

अनार्य धर्म के मूल में बौद्ध धर्म है। आर्य या सनातन धर्म का प्रचार या प्रोत्साहन दलित उपन्यासों में नहीं मिलता। असल में दलितों केलिए अपना धर्म और विश्वास है। इसे तोड़कर आर्यों ने भारत में सनातन धर्म की स्थापना की और अनार्य को दलित या दास बनाया। इस धर्म में दलितों का कोई स्थान नहीं है। ब्राह्मणवाद के विरोध में भारत भूमि में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। बौद्ध धर्म अनार्यों का धर्म है। दलितों केलिए अलग धर्म की कल्पना आर्य कर ही नहीं सकते। इसलिए आर्यों ने रक्त की नदियाँ बहाकर इसे तहस नहस कर दिया।

हिंदू धर्म आर्यों का धर्म है। वहाँ दलित दलित ही बना रहेगा। सहानुभूति तो उसे मिलेगी पर इज्जत नही मिलेगी। सौकड़ों सालों से पहले बनाये गये,रूढ़ हो गये इनके तत्व दलितों को आत्मसात करने केलिए कभी तैयार नहीं होंगे। तो अंबेडकर ने

धर्मपरिवर्तन का कठोर निर्णय लिया।नये धर्म के लिए उसने बौध धर्म को ही अपनाया। जिसे भारत के मूल निवासियों के दुखों को दूर भगाने केलिए भगवान बुद्ध बनाया था। जो भारत का अपना धर्म है।

अंबेडकर ने दलितों को अपनी अस्मिता केलिए बौद्ध धर्म अपनाने की सलाह दी। डॉ . अंबेडकर ने अक्तूबर 13,1935 को अछूतों की महासभा में धर्मांतरण की घोषण पहली बार की। हिंदू धर्म की दिखावटी मखमली आवरण के नीचे गंदगी ही गंदगी है। अंबेडकर ने कहा " हमने हिंदू समाज में समानता हासिल करने केलिए हर तरह की कोशिशें की और सत्याग्रह किये, परंतु सब बेकार निकला। हिंदू समाज में समानता केलिए कोई स्थान नहीं है। हिंदू धर्म का त्याग करने से ही हमारी स्थिति में सुधार हो सकेगा। धर्मांतरोण के सिवा हमारे उद्दार का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"[28] दलितों अब दूसरे धर्म में अपमान और अवहेलना सहकर उसमें रहने की आवश्यकता नहीं है। अपने धर्म अपना कर स्वाभिमान से जीना चाहिए। तुलसी दास ने कहा था कि जहां आपका सम्मान न हो वहां एक पल भी रहना नहीं चाहिए। रामकिशन के शब्द में -" बुद्ध की अहिंसा का मार्ग,मानवतावाद का मार्ग, विश्वबंधुत्व का मार्ग ही परम धर्म है।"[29]

आकाश और नीलिमा की शादी केलिए प्रचलित हिंदू रिवाजों को नहीं अपनाया। इसे हटाकर नीलिमा और आकाश ने बौद्ध धर्म की विधि को अपनाया। उनकी शर्त थी कि विवाह होगा तो बौद्ध पद्धति से ही होगा। जब हम अंबेडकर विचारधारा को मानकर, सामाजिक आंदोलन से जुडे हैं, तब डॉ .अंबेडकर के धर्म अनुष्ठान से ही विवाह करेंगे।वे अपनी शादी द्वारा दलितों केलिए हिंदुओं की रीति छोड़कर अपना रास्ता दिखाया। मातंग लडकी के घर वाल्मीकि जाति के लडके की बारात आना ही और उसके लिए सामाजिक रीति से मंजूरी देना ही बडी बात थी।

उसके साथ डॉ .अंबेडकर की तस्वीर के सामने बौद्ध रीति से विवाह करना असहय लगा। दोनों जाति के बुजुर्ग इसका विरोध करने लगा तो आकाश उसे समझाते हुए कहा कि डॉ . भीमराव अंबेडकर सब के हैं। उन्होंने समतावादी बौद्ध धर्म को अपनाने का संदेश सबको दिया है।

4.4.14. अंतर्जातीय विवाह

दलित नाम सुनने पर एक लगने पर भी दलित जाति के अदंर बहुत सारी जातियाँ है।वे अपने आपको दूसरों से बडे मानने या अलग रखने का बरसक प्रयत्न करते रहते हैं। इस अलगाव को बनाए रखने केलिए वे शादी अपनी ही जाति से करने का हठ करते रहते हैं।सुशीला टाकभौरे ने इस नियम को तोडते हुए वाल्मीकि जाति के लोगों को मातंग के घर के रिश्ता लेकर जाते हुए दिखाया है।

नीलिमा मातंग जाति की है और आकाश वाल्मीकि जाति का। इन दोनों का विवाह प्रेम विवाह नहीं है, बल्कि परिवारवालों द्वारा तय किया गया विवाह है। आकाश के मन में नीलिमा के प्रति बचपन से ही प्यार है। मगर संकोची स्वभाव के कारण यह बात वह किसी से नहीं कहा। वे दोनों उच्चशिक्षा के साथ सामाजिक कार्यों से जुडकर काम करते थे। धीरे धीरे नीलिमा के मन में उसके प्रति आकर्षण और प्रेम की भावना विकसित हुई। लेकिन दोनों ने आपस में इसको कभी अभिव्यक्त नहीं किया।

भीकूजी के परिवारवाले नीलिमा केलिए अपनी जाति के लडके से ज्यादा नीलिमा केलिए योग्य शिक्षित लडका चाहते थे। इसलिए वे आकाश जैसे पढे लिखे लडके का रिश्ता खुशी खुशी से स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में कहें तो वे उस रिश्ते केलिए इंतजार कर रहे थे। क्योंकि उस गाँव में ही नहीं आसपास के गाँव में भी आकाश के समान पढ़े लिखे और होशियार लड़का नहीं था।

आकाश के परिवारवाले ने भी नीलिमा को जाति की दृष्टि से नहीं योग्यता की दृष्टी से ही देखा था। वे भी अपने बेटे केलिए पढ़े लिखे और चुस्त लडकी चाहते थे। इसलिए जाति की कट्टरता रखनेवाले कालीचरण के परिवारवाले उसे तोडकर भीकूजी के घर रिश्ता लेकर गया। आकाश और नीलिमा की शादी से दो दलित जातियाँ एकता के सूत्र में बँध गयी।

4.4.15. नये रिवाज़ और नया समाज

अब के समाज जिस रास्ते से चल रहा है वह सब केलिए हितकर नहीं है। सब केलिए मानवता के आधार पर एक समाज की कल्पना इस उपन्यास में किया गया है। इसकेलिए अंबेडकर दर्शन और बौद्धधर्म को साथ लेकर चलने का सलाह देते हैं। इसे कोरे कथन से नहीं बल्कि क्रियात्मक रूप में उपन्यास में दिखाया है। आकाश और नीलिमा दलितों की प्रगति केलिए काम करते रहते है,उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन बिताने का मार्ग दिखाते रहते हैं। जब वे दोनों मिलकर एक नयी जिंदगी शुरू करता है तो,एक नया संदेश का नमूना देकर ही शुरू करता है। दलित हिंदू न होकर भी दलितों की सभी रिवाज़ हिंदुओं के हैं। इसे जरा हटाकर आकाश और नीलिमा नये रिवाज़ का नमूना अपनों के सामने पेश करते हैं। यह नयी रिवाज़ नये समाज की परिकल्पना है। आकाश और नीलिमा शादी हिंदू रीवाजों के अनुसार करने केलिए तैयार नहीं होते। उन्होंने बौद्ध धर्म के अनुसार शादी की। मंडप से हिंदू देवी देवताओं के तस्वीर के बदले तथागत गौतम बुद्ध और अंबेडकर की तस्वीर रखी।

वे अपने विवाह समारोह से एक नयी सामाजिक परंपरा शुरु करना चाहते हैं। वह इस परंपरा को सब केलिए मानते है, हमारी एकता प्रगति और सम्मान केलिए लाभकारी है। आकाश विवाह मंडप में खडे होकर कहा कि " अब जमाना बदल रहा है। पुराना सब कुछ बदलना होगा,तभी नयी रीति और परंपराएँ शुरु होगीं। पुरानी

परंपराओं से चिपके रहकर,हम नयी बातों की अच्छाई और लाभ को समझ नहीं पाते हैं। विवाह के बाद नये जीवन की शुरुआत होती है।यह शुरुआत गौतम बुद्ध के बहुजन हिताय - बहुजन सुखाय के संदेश से होना चाहिए, डॉ . अंबेडकर के त्याग, संघर्ष और समाज कल्याण के कार्यों से,प्रेरणा लेने के संकल्प से शुरु होना चाहिए। तभी हमारी पीढ़ियाँ प्रगति और परिवर्तन के मार्ग पर आगे बढ़ सकेगी।"[30]

आकाश और नीलिमा का मिलन एक नये समाज की स्थापना का सपना है। शोषण और अत्याचार से मुक्त होकर स्वाभिमान से जीने की कल्पना है।दलितों केलिए नये आकाश की, नये क्षितिज की खोज कर रहे हैं।

4.5. तुम्हें बदलना ही होगा (2016)

तुम्हें बदलना ही होगा में दलित की अस्मिता संघर्ष को महिमा और धीरज कुमार के माध्यम से प्रस्तुता किया है। दोनों पढ़े लिखे और दलित समाज के कार्यकर्ता हैं।

4.5.1 जागृति

धीरज बनारस की दलित बस्तियाँ छिट्टूपुर, नरिया कालनी, चितईपुर घूम - घूमकर लोगों को मिलकर बातें करते थे। उसने देखा कि उस समय बनारस की डोम,सुदर्शन,वाल्मीकि समाज में जागृति का अभाव था।माँ -बाप बच्चों को स्कूल न भेजकर रोज़गार में लगा देते थे। वे आर्थिक दृष्टी से बहुत दीन हीन है। दो वक्त की रोटी कमाना भी उसकेलिए मुश्किल था। गंदी बस्तियों में सभी असुविधाओं के बीच वे किसी तरह जी रहे थे। वे अपनी शोषित,पीडित स्थिति की बातों को समझ ही नहीं पाते थे।फिर भी धीरज यथा संभव प्रयत्न करते थे।

सवर्ण मानसिकता एक ऐसी सत्ता है,जो वह अपना विरोध सह नहीं पाती। दूसरे दिन ही धीरज को होस्टल में गुंडागर्दी, मारपीट और अव्यवस्था फैलाने के जुर्म में होस्टल से निकालने का पत्र मिला। इसमें तिवारी का हाथ जानते हुए भी वह छुप रहा। क्योंकि किसी से बदला लेने केलिए वह अपना भविष्य और वर्तमान बर्बाद करना नहीं चाहता था। बसंत तिवारी एक नहीं हज़ारों है।दलितों को पहले सक्षम बनना है, तभी विरोधियों को सही रास्ते पर लाया जा सकेगा। समाज की स्थिति सुधारने केलिए अपनी स्थिति सुधारना जरूरी है।

आधुनिक समाज में नारी घर की चार दीवारी से बाहर आकर बहुत कुछ कर रही है। लेकिन वह सिर्फ सरसरी है। नारी समाज में एक बडा परिवर्तन लाना है तो सरसरी कामों से कोई फायदा नहीं है। सतही काम करना चाहिए। आज बहुत सारी महिलाओं पर बलात्कार होता है। उसका शारीरिक शोषण किया जा रहा है। स्त्रियाँ इस अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड रही हैं। लेकिन बहुत सारी नारियाँ है जिन्हें अब भी न्याय नहीं मिला है। ऐसी स्थिति में बहुत सारी महिलाएँ आत्महत्या कर लेती हैं। महिमा ऐसी नारियों केलिए कुछ करने की प्रेरणा देती है। सावित्री बाई फुले के महान कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उसने कहा कि बलात्कार और उत्पीड़न से बचे नारियों केलिए स्त्री अभयकेंद्र और बाल सुरक्षा केंद्र खोलना चाहिए। ताकि ऐसी नारियों केलिए जीने के सहारा मिल जाए। एक साथ मिलकर स्त्री शोषण का विरोध करने से ही स्त्रियों को न्याय दिला सकते हैं।

4.5.2. दलित नाम पर गर्व महसूस करना

दलित ही दलित कहने से हिचकता है। दलित ही दलित कहने से अपमान महसूस करता है तो दूसरों को क्या कहे। शहर में अच्छी नौकरी करके जीने वाले दलित अपने अस्तित्व को चुपाकर जीते हैं। इसका कारण समाज की मानसिकता है।

पढ -लिखकर अच्छी नौकरी प्राप्त करने के बाद भी दलित, दलित ही पहचाने जाते हैं।सवर्ण मानसिकता में परिवर्तन तो आया है।लेकिन एक बडा परिवर्तन अब भी नहीं आया है।उनके दिल में कुछ होते हैं और बाहर कुछ। महिमा,चाचा सुरजन के परिवार के साथ दिल्ली में एक फ्लाट में रहती है।वहाँ आठ परिवार।उसमें सुरजन ही दलित है।

सुरजन दूसरों के सामने अपनी जाति नहीं चुपाते।फिर भी वह यह नहीं चाहते कि गांव की कोई रिश्तेदार और परिचित वहाँ आये। क्योंकि वे आएँगे तो दिल खोलकर अपने घर और कुडुंब की बातें करेंगे।फ्लाट के सभी सुरजन की जाति के बारे में जानते हैं। वे आमने सामने सुरजन के पारिवार को सम्मान भी देते हैं।लेकिन अंदर ही अंदर दलितों को मानने केलिए भी वे तैयार भी नहीं होते। इसलिए जाति के लोग आने से उसे डर है कि कहीं इस फ्लाट से हाथ धोना पडें। महिमा चाहती है कि रिशतेदार घर आये। वह चाचा से कहती है कि- " आप व्यर्थ ही झूठे सम्मान से डरते हो। यह के अपने पडोसी ऐसे है उनसे जितने डरो,उतना ही डराते है। इससे तो अच्छा यह है कि खुल्लम खुल्ला अपनी बातें जाहिर हो देनी चाहिए। हमारे लोगे क्या खाते है, कैसे रहते है और कौन से रोजगार करते हैं, इन बातों को छुपाने की क्या ज़रूरत है।"[31]

चमनलाल ने उषा और धीरज के रिश्ते की उडती खबर सुनी थी।उसे धीरज बहुत पसंद है।धीरज वाल्मीकि है।लेकिन चमन लाल वाल्मीकि को ब्राहमण या ठाकुर होने की गलतफहमी में पड जाते है।क्योंकि वह जानता है कि धीरज बनारस का रहने वाला है। वहाँ कई लोग एस .सी होकर भी वर्मा और शर्मा लिखते हैं। आज आरक्षण का लाभ मिलने केलिए, उच्च जाति के होने पर भी आरक्षण मिलने केलिए स्वयं ही एस. सी,एस.टी लिखा देते हैं।इसलिए उसने परिवारवलों से उषा की शादी के

बारे में कहा।सब खुश हो जाते हैं। चमनलाल अपनी संस्था के वार्षिक में एक संगोष्ठी आयोजित की।इसमें उसने भरी सभा में एलान किया कि उषा की शादी प्रोफसर धीरज के साथ तय कर लिया है।इसप्रकार ब्राहमण बनिया के बीच का भेदभाव दूर करने का प्रयास कर रहा है।धीरज ने इसका विरोध किया।उसने तनकर खडे सभा के लोगों के सामने कहा कि दलित माँ का बच्चा, मैं काशी का डोम हूँ।

4.5.3. संयम

दलितों को दलित बनाए रखने का षड्यंत्र भारतीय संस्कृति में समाया गया एक तत्व है।संस्कृति का यह तत्व समाज और राजनीति तक भीषण रूप में फैला हुआ है।इससे मुक्ति पाना आसान नहीं है।दलितों के हित में अनेक नियम बनाए गए है।इसे अपने हित में इस्तेमाल करने केलिए दलितों को शिक्षित होकर अपनी परंपरागत कामों को तोडकर अच्छी नौकरी प्राप्त करना है। जब तक उच्च शिक्षा और अच्छी नौकरी प्राप्त नहीं करते दलितों को और नारियों को थोडा संयम करना चाहिए।तैश में आकर विरोध करने पर उनकी प्रगति का रास्ता हमेशा केलिए बंध हो सकते हैं।

कॉलेजीय जीवन के दौरान धीरज को मालूम हुआ कि आर्थिक समानता से सामाजिक समानता नहीं आएगी।इसलिए उसने आर्थिक समानता की बात छोड़कर सामाजिक समानता लाने के लिए कार्य करने लगा।धीरज दलित,पिछडे और अछूतों को इकट्ठा करके सामाजिक समानता की बातें समझाने लगे।बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के नेता बसंत तिवारी ने इसका सख्त विरोध किया।उनके अनुसार दलितों का अलग संगठन बनाने की जरूरत नहीं है।हम सब केलिए काम करने को तैयार है।आर्थिक समानता केलिए सवर्ण आंदोलन चला रहे हैं तो दलित आंदोलन की क्या जरूरत है।धीरज ने इसका विरोध करते हुए कहा कि आर्थिक समानता का

आंदोलन तुम्हारे लिए है,हमारे लिए नहीं।इस घटना से नेता उसका दुश्मन बन गया।दूसरे दिन ही इसका परिणाम उसके सामने आ गया।धीरज को होस्टल इनचार्ज का पत्र मिला कि होस्टल में गुंडागर्दी करने और अव्यवस्था फैलाने के जुर्म में उसको होस्टल से निकाला जा रहा है।धीरज को घुस्सा आया।वह तिवारी पर चिल्ला उठा।लेकिन तिवारी हंसते हुए सामने से निकल गया।ठंडे दिमाग से सोचने के बाद धीरज को अपनी परिस्थिति की गंभीरता समझ आयी। हास्टल से निकलने के बाद उसके घर में रहकर पढ पाना बहुत कठिन था। पढाई अधूरी रह जाने पर अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी। समाज की स्थिति सुधारने केलिए अपनी स्थिति सुधारनी चाहिए। इन विचारों के अंत में वह इस निश्चय पर पहूँचा कि बसंत तिवारी एक नहीं हज़ारों है। किसी एक से बदला लेने केलिए अपना भविष्य और वर्तमान बर्बाद करना ठीक नहीं है। पहले सक्षम हो तभी विरोधियों को सही रास्ते पर लाया जा सकता है। धीरज ने होस्टल इन चार्ज को सही बात समझाया।वह फिर किसी झंझट में न पडकर अपनी पी.एच.डी थीसिस पूरा करने लगा।

जीवन के रास्ते में आनेवाले हर संघर्ष को महिमा संयम से सामना करती है। महिमा ने चमनलाल से शादी इसलिए की कि वह अपने समाज सुधार के कार्य को उससे मिलकर अच्छी ढंग से कर पाएँ। लेकिन शादी करने के बाद उसे ऐसी परिस्थिति का सामना करना पडा, जिसकी उसे उम्मीद तक नहीं थी।

चमनलाल ने शादी से पहले अपने घर में इसकी खबर तक नहीं दी थी। महिमा दलित होने के कारण चमनलाल के परिवारवाले उसे हवेली के अंदर घुसने नहीं दिया। उसे मेहमान खाने में ही रखा। चमनलाल के दोनों बहनें उषा और संध्या, उसके दोनों भाई और दोनों भाभियां,उसके माता पिता किसी ने भी उसे नहीं अपनाया। न मान सम्मान दिया, न बातें की। महिमा सभी सामाजिक विसंगतियों

का खुलकर विरोध करनेवाली होकर भी इसका विरोध नहीं किया। क्योंकि वह जानती है,कि इस सामाजिक मानसिकता से लोग जल्द ही मुक्त नहीं होंगे। इसकी सीख भारतीयों को सदियों से,परंपराओं से दी जा रही है। लोग उसके मानसिक रूप से गुलाम है। इसे धीरे ही मिटा दिया जा सकता है। इसलिए महिमा ने संयम को अपनाया और अपने गुणों से उसके मन में जगह पाना ही बेहत्तर समझा।

4.5.4. कामयाब दलितों का सहारा

जीवन समर में विजयी दलितों को दूसरे दलितों का सहारा बनना चाहिए। अक्सर ऐसा दिखई देता है कि दलित शिक्षित और नौकरी मिलने के बाद अपने गांव और गांववालों को बिलकुल भूल जाते हैं। वे फिर गांव की ओर मुडकर भी नहीं देखते। दलितों को कभी भी अपने लक्ष्य को नहीं भूलना चाहिए। पढे-लिखे दलित अपने तक सीमित न रहकर अपनों की अस्मिता केलिए काम करना चाहिए।धीरज कुमार कालिज अध्यापक बनने के बाद बनारस से रघुजी नगर गए। फिर बनारस आने के बाद उसने देखा कि अपने लोगों की वही हालत है जो पहले थी। अपनों के समाजिक विकास केलिए वह योजनाएँ बनाने लगा।वह बनारस की अपनी बस्ती में जागरण कार्य करने लगा।वह रोज़ दलित जाति की अलग अलग बस्तियों में सुबह शाम चक्कर लगाता रहा। वह नेताओं को बस्ती में बुलाकर वहाँ दलित जीवन का नंगा यथार्थ उनके सामने रखता है।

दलितों पर कामयाब दलितों की बातों का असर दुगुना है। अपने बीच से आनेवालों की बातों पर वह ज्यादा ध्यान देंगे। साथ ही साथ वह उनके लिए एक रोल मॉडल बन जाएँगे।महिमा दलित बस्तियों के घर घर में जाकर नारी शिक्षा का प्रचार प्रसार करती है।

4.5.5. नारी अस्मिता

भारतीय समाज में नारी केलिए अलग बहुत सारे नियम बनाए है।सदियों से गुज़र कर इन नियमों में बहुत सारी गलत धारणाएँ समायी गई हैं।इन्हें बाहर फेंककर शुद्ध बनाने केलिए नारी को ही सामने आना चाहिए।जो पीडित है उनकी ओर से आनेवाली कोशिश ज्यादा रंग लाएगी।

महिमा भारती शांति निकेतन महाविद्यालय की अध्यापिका है। वह कालिज के नज़दीक के वरकिंग वुमण होस्टल में रहती है। होस्टल में कामकाजी महिलाओं के साथ साथ कुछ ग्राजुएट और पोस्ट ग्राजुएट पढनेवाली छात्राएँ भी रहती है।महिमा के मन में जागृति की प्रेरणा जगाने की ललक हमेशा रहती है।वह शांतिनिकेतन महाविद्यालय से जुडे जूनियर कॉलिज की 11 वीं और 12वीं की दलित छात्राओं के मन से हीनता और अबलापन की भावना निकालती है। महिला सबलीकरण की प्रेरणा देती है।

भारत में नारी शिक्षा पर ज़ोर नहीं दिया जाता।लड़की को शादी तक ही पढाते है,चाहे वह पढने में कितनी भी होशियार हो। शोभा सोलंगी मेडिकल अस्पताल की सफाई कर्मचारी धन्नेबाई की पढाकू और होनहार बेटी है। वह दो भाईयों की इकलौती बहन है। इसलिए वह सबकी प्यारी भी है। लेकिन उसके माता पिता अच्छा वर मिलते ही उसकी शादी कर देना चाहते हैं। उनकी धारण यह है कि सही उम्र में शादी होना जरूरी है।पढाई जिंदगी में कभी भी कर सकती है।

भारतीय संस्कृति में अंतर्लीन दलित विरोध और नारी विरोध की छाया सभी बस्ती में मिलेगी। लोग लडकों को पढाने में रुचि रखते थे। लेकिन लडकियों को पराये धन समझ कर पढाने में हिचकते हैं। शोभा सोलंगी शांति निकेतन में बी.ए प्रथम वर्ष की छात्रा है। शोभा के माता- पिता अच्छा वर मिलते ही उसकी शादी करा देना चाहते

थे। महिमा शोभा के माँ बाप को समझाते हुए कहती है -" आज की सबसे बडी जरूरत है,अपने बच्चों को खूब पढाओ, उन्हें आगे बढने का पूरा अवसर दो। बेटियों की शादी जल्दी करने की चिंता के बदले, उनकी करियर बनाने की चिंता करनी चाहिए। जैसे मैं पढ़ सकी, तभी तो यह सब जान सकी। यदि बच्चे पढेंगे ही नहीं, तो अपने जीवन में वह क्या कर पाएँगे।"[32]

आधुनिक युग नारी सबलीकरण का युग है। नारी स्वतंत्रता केलिए बहुत सारी संस्थाएं काम कर रही है।लेकिन इन पुरुष मेधावी संस्थाओं में नारियाँ केवल नाम बनकर रह जाती है। इसलिए बहस एक तरफा हो जाता है।जिन लोगों केलिए संघर्ष कर रहे हैं उनके एक भी प्रतिनिधि न होने से असली समस्याओं की ओर ध्यान नहीं जाएगा।सभी विचार विमर्श ऊपरी तौर पर ही रह जाएगा। मीटिंग शुरू होकर ईटिंग में समाप्त हो जाता है।किसी की भी उत्थान की संस्था हो,चाहे दलित हो,नारी हो या आदिवासी आधी प्रतिनिधि उस वर्ग से होना चाहिए।

भारतीय पुरुष समाज की दृष्टि में नारी सबलीकरण की सीमा बहुत छोटी है। पुरुष मंच पर खडे होकर नारी सबलीकरण पर ज़ोरदार भाषण तो देते हैं। लेकिन घर की औरतों को घर की चार दीवारी से बाहर निकलने नहीं देते। वे यह नहीं चाहते है कि नारी पूरी तरह स्वतंत्र हो जाय। चमनलाल एक समाज सेवी है। उनकी बातों में हमेशा नारी सबलीकरण की बात ही सुनाई देती हैं। उनकी संस्था का नाम है 'अखिल भारतीय समाज जागृति एवं समस्या निवारण संस्था'। दलित,पिछडे और निम्न वर्ग की नारियों की जागृति और उद्धार केलिए कार्य करते थे। संस्था की बैठक हवेली के हॉल में होती रहती थी। लेकिन हवेली की एक महिला को भी उसमें शामिल होने का अधिकार नहीं है। इस संस्था की रजिस्टरी में तो उन सबका नाम है। लेकिन बैठक में पुरुषों के अलावा किसी भी स्त्री को भाग लेने नहीं देते थे।

पुरुष चाहे जितने भी बडे नेता या ऊँचे सोचवाला व्यक्ति क्यों न हो,वह पत्नी को अपने अधीन रखना चाहता है। स्त्री सबलीकरण की बात करनेवाले चमनलाल के घर में अब भी पर्दा प्रथा है।बहू,बेटी और नारियों को घर की बैठक में गैर पुरुषों के सामने जाना मना है। चमनलाल भी अंदर ही अंदर इस तथ्य को मानता था।चमनलाल परिवारवाली स्त्रियों को पारंपरिक रीति रिवाज के साथ बंधनों में रखने का पक्षधर है।

चमनलाल अंदर ही अंदर परंपरावादी विचारधारा के समर्थक है। यह विरोधाभास केवल भारतीय पुरुषों में ही मिलेगा। वे नारी की स्वतंत्रता तो चाहते हैं लेकिन वे अपनी पुरुष मानसिकता से कभी मुक्त नहीं हो पाते- " हमारे देश में समाज में महिलाऔं को जिस रूप में रखने से अधिक शांति रह सकती है, बस हमें उसी नीति पर चलना चाहिए। अधिक झंझट में पडने की कोई जरूरत नहीं है। नारी की सबलता इसी में है कि वह घर गृहस्थी के काम अच्छी तरह संभालें। "[33]

पुरुष मानसिकता के समान नारी की सोच में भी परिवर्तन आना चाहिए। नारी के मन में भारतीय परंपरा के प्रेति जो मोह है,यह भी नारी मुक्ति में अडचन पैदा करती हैं। चमन लाल की बहन संध्या कॉलेज के लक्चर होकर भी अपने आप को परंपरा के अनुसार घर की चार दीवारी में रखना ही पसंद करती है। वह हवेली में चलनेवाली मीटिंग में भाग लेना नहीं चाहती। क्योंकि घर का नियम ऐसा है। वह उसे तोडना नहीं चाहती।

दूसरों की सेवा करना,सहायता करना सब अच्छी बातें ही हैं। लेकिन ये सब महिलाओं केलिए बचाए रखना और केवल उसका कर्तव्य बनाकर सदियों से उस पर थोपना सही नहीं है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुसार पति की सेवा करना, परिवार की सुख सुविधाओं का ध्यान रखना और बडे बूढों की सेवा सब स्त्री का

काम है,सब स्त्री का कर्तव्य है। इसे उसपर थोपने केलिए सति, सावित्री और अनसूया जैसे अनेक पात्रों की सृष्टि की। सदियों से यह सीख देती आयी है कि नारी हो तो ऐसी।

चमनलाल महिमा को उसकी समाज सेवा,चुस्ती और शिक्षा देखकर शादी करता है। महिमा ने यही सोचा कि समाजिक पुनसंघटन का कार्य चमनलाल के साथ रहकर सफलता पूर्वक कर पाएगी। लेकिन शादी के बाद वह घर से बाहर नहीं निकल पायी।अपनी अस्मिता की बचाव केलिए महिमा प्यार की बहार में नौकरी छोडने की बात मानी। लेकिन उसने इस्तीफा नहीं दिया। 3 महीनों की छुट्टी ही ली। नौकरी नारी की शक्ति है यह उसे आर्थिक सुरक्षा देती है। इसलिए उसे छोडने से पहले दो बार जरूर सोचना चाहिए।नारी को हमेशा अपनी तीसरी आँख खोलकर रखनी चाहिए।

शादी नारी जीवन का एक टेर्णिंग पोयंट है। यहाँ से उसकी दूसरी जिंदगी शुरू होती है। नारी स्वतंत्रता केलिए काम करने वाली, भाषण देनेवाली महिमा चमनलाल की पत्नी बनकर परातंत्र रूप में रहने लगी। चमनलाल के परिवारवाले एक दलित कन्या को बहू के रूप में स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं थे।फिर भी बेटे की इच्छा के सामने वे हार मानते हैं। वे उन्हें आउट हाउस में रहने दिया। यह आदेश भी दिया कि बहु घर से बाहर कहीं नहीं जाएगी।वह चमनलाल की संस्था की उपाध्यक्षा थी।लेकिन अध्यक्ष के रहने पर उपाध्यक्षा की जरूरत नहीं कहकर उसे किसी भी मीटिंग में भाग लेने नहीं दिया। स्त्री पुरुष समता की बात करनेवाले चुमनलाल ने अपनी पत्नी को मनुवादी स्मृतिकालीन स्थिति में रहने केलिए मजबूर कर दिया। उनकी महिला सुधारवादी चिंताएँ घर के दहलीज तक ही है।

महिमा रिश्ता तोडकर समस्या का हल करना नहीं चाहती थी। वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल करके समस्या का समाधान ढूँढना चाहती थी। शादी के थोडे दिनों के बाद, संस्था की मीटिंग में सदस्यों ने चमनलाल की पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट की तो चमनलाल को सभा में उसे बुलाना ही पडा। इस मौके का फायदा महिमा ने पूरी तरह उठाया।

बाहर नारी स्वतंत्रता की बात करनेवाले चमनलाल की असलियत उसने सबके सामने खोलकर रख दिया।महिमा ने सिर से पाँव तक साडी में ढकी एक गुडिया के समान सभा में आकर खडी रही। चमन लाल के आदर्श के विरोधाभास की तरह खडी पत्नी को देखकर लोग दंग रह गये।ऐसे वक्त पर घूँघट हटाते हुए महिमा ने कहा मैं छुईमुई गुडिया नहीं हूँ। मुझे इस तरह बने रहने केलिए मजबूर किया है, महिमा कंधे में पडी आँचल कमर में खोस दिया।फिर उपस्थित लोगों के सामने निर्भीकता से कहा–" जब तक पुरुषों के विचार और व्यवहार में फर्क रहेगा, तब तक महिलाएँ खुले दिल और दिमाग के साथ सोच नहीं पाएँगी। वे अपने सीमित कठघरे से बाहर निकल नहीं पाएंगी। इसका जिम्मेदार पुरुष समाज है। पुरुष नारी स्वतंत्रता की बहुत बडी बडी बातें करते हैं मगर सही मायने में वे स्त्रियों की सबलता से डरते है, कतराते है। उन्हें लगता है कि वे अपनी महिलाओं को घर में कैद रख कर ही महिलाओं का उद्दार कर लेंगे।"[34]

नारी की उन्नति उसके अपने हाथों में है। गुलामी की जंजीर को तोडने केलिए उसे पहले अपनी चुप्पी तोडना चाहिए। नारी की स्वतंत्रता पुरुषों से नहीं पुरुषों की सोच से चाहिए। परंपरा की गहराई में उलझे पुरुष, महिमा का तमतमा रूप देख कर अवाक रह गया।इस घटना के बाद वह संस्था की उपाध्यक्षा के रूप में काम करने

लगी।सभी सदस्य उसकी बातों से प्रभावित हो गये। वे नारी के बढते चरण की प्रशंसा करने लगे।

ईश्वर ने मनुष्य को दो वर्ग के रूप में बनाया है, नर और नारी। दोनों में अपनी शक्ति समान रूप से दिया। लेकिन कालांतर में नारी को नर द्वारा शक्तिहीन बना गया। नारी जब अपनी शक्ति पहचानेगी तब समाज में नया सवेरा आ जाएगा। चंदन नगर के लोग शराब और गुंडा गर्दी केलिए बदनाम थे। यहाँ शिक्षा का पूर्णतया अभाव था। इन्हें पैसा हाथ में आते ही उसे शराब में उठाने की ललक रहता है। महिमा ऐसे क्षेत्र की महिलाओं को इकट्ठा करके भाषण और उद्बोधन द्वारा मार्ग निर्देशन दिया।

4.5.6. मिथकों का विरोध

भारत के हर त्योहारों के पीछे एक मिथकीय कहानी है। उन कहानियों में भी दलित विरोधी चेतना छुपी रहती है। हर एक त्योहार को मनाकर सवर्ण इन भावनाओं को, दलित दमन को ठोस आधार दे रहा है। सारे के सारे मिथकों की रचना आर्य वर्चस्ववाद की स्थापना केलिए की गयी है। इसके मूल में दलित दमन का गूढ तत्व ही निहित है। आर्यों द्वारा लिखे गये धर्म ग्रन्थों की बातें ही स्कूल में पढाई जा रही है, जिसमें दलितों की अस्मिता केलिए कोई स्थान नहीं है। यह परोक्ष रूप में वर्णाश्रम का प्रचार ही करता है। पुराने सारे मिथक एक तरफा है। दलितों के मुख पर कालिग पोत कर अपने को साफ रखने की रीति सभी में अपनायी गयी है।

कॉलेज की एक छात्रा ने महिमा को होली के दिन अपने घर पर बुलाया। होली को खुशी खुशी मनानेवाले परिवारवालों से उसने में होलिका के बारे में पूछा। तब उस घर के छोटे बच्चे ने बडी चाव से कहा कि होलिका को वरदान प्राप्त था कि वह आग में भी नहीं जलेगी। इसलिए उसके भाई हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद को पकड़कर

आग में बैठने केलिए कहा। महिमा ने देखा कि विकास की बातों पर माता पिता गर्व महसूस कर रहे हैं। महिमा ने उन्हें समझाते हुए कहा कि - " होलिका दहन के पीछे सच्चाई यह है, होलिका एक अनार्य स्त्री थी। वह बहुत ताकतवर और अनेक गुणों से सम्पन्न नथी। आर्य लोग से मार देना चाहते थे। मगर उसे मारना आसान नहीं था। तब उनशी काहों ने यह षडयंत्र किया था। दलित जाति के लोगों के लिए यह त्योहार खुशी का नहीं, दुख का दिन है। इसे हम लोगों को समझना चाहिए।"[35]

4.5.7. सवर्ण मानसिकता का विरोध

धीरजकुमार के एम.कोम करते समय मार्क्सवादी साहित्य साथ अंबेडकरवादी साहित्य भी पढ़ने लगे।तब उसे मालूम हुआ कि आर्थिक समता के पहले समाजिक समता, ज़रूरी है। चिंतन और विश्लेषण के साथ उसे यह भी समझ में आया कि आर्थिक समानता आने के बाद भी बनारस के पांडे कभी भी सामाजिक क्षेत्र में दलितों को बराबर नहीं मानेंगे। धीरज अपने दलित पिछडे और अछूत समाज के लोगों को मिलाकर, उन्हें आर्थिक समानता और सामाजिक समानता की बातें समझाने लगे।

कॉलेज के छात्र नेता को जब इस के बारे में मालूम हुआ तो वह धीरज पर झपड पडा।जब हम लोग है तो तुम्हें अलग संगठन बनाने की क्या जरूरत है। सवर्ण हमेशा नेता बनकर दलितों को अपने अनुचर बनाकर रखना चाहते हैं। दलितों लिए उनके बीच से नेता आना आर्यों को पसंद नहीं है। दलितों को नेता के रूप में मानने को वह तैयार नहीं है। सभी हिंदुओं केलिए एक संगठन, सवर्ण उसका नेता और दलित सेवक गण। सवर्णों के अनुसार दलितों की मुक्ति केलिए अपनी ओर से कुछ करने की जरूरत नहीं है। दलितों की मुक्ति केलिए सवर्ण आंदोलन चलाएँगे। दलितों को सिर्फ उसका साथ देना है चाहिए। दलित जब भी अपने लिए कुछ करता है तो

सवर्ण उसे अलगाव पैदा करनेवाली बात के रूप में मानते हैं। इसका विरोध करते हुए धीरज कॉलिज के सवर्ण नेता बसंत तिवारी से कहते हैं - "जातिवादी हम है या तुम हो। सभी जातियों में सबसे बडा बनकर सबसे ऊँचा बनकर कौन रहता है हम या तुम। आर्थिक समानकता का आंदोलन तुम्हारे लिए है हमारे लिए नहीं। हमारी लड़ाई हमें स्वयं लड़नी है।"[36]

भारत में एक व्यक्ति से मुलाकात होते ही पहले चार प्रश्नों के अंदर ही जाति की बात आती है। जाति के नाम पर लोगों का मूल्य तय करनेवाले समाज में दलितों को नाम के साथ सट्टे रहनेवाले जाति के नामों में फँसे रहनेवाले लोगों की मानसिकता का विरोध कहना चाहिए। सभी लोग इसतरह अपनी जाति का पहचान देने से इनकार करें तो जाति का पागलपन अपने आप मिट जाएगा। जैसे कमला विश्व विद्‌यालय के अध्यापक धीरज कुमार करता है। उन्हें दलित कहने में कोई हिचक नहीं है। लेकिन नाम सुनते ही जाति ढूँढ़नेवालों का घृणित मनोविकार पसंद नहीं है। उसी के अनुसार सामनेवाले की मोल तौल करने की रीति से वह नफरत करता है। उनसे कई लोगों ने कई बार पूछा है कि धीरज कुमार जी आप कौन है। तब वह यही कहता है कि मैं काशी के राजा हरिश्चंद्र का बेटा धीरज कुमार हूँ। पूछनेवाले यह सुनकर झोंप जाते हैं। मगर जो बात वे जानना चाहते हैं वह मालूम न होने से उनकी बेचैनी बनी रहती है। वे अलग अलग समय अलग अलग तरीके से धीरज से जाति उगवाने की कोशिश करते रहे।लेकिन धीरज यही कहता रहा कि -" राजा हरिश्चन्द्र को काशी के कालू डोम ने खरीद लिया था।तब हरिश्चन्द्र डोम के घर रहते हुए,डोम का काम करते हुए डोम ही कहलाए। मैं उन्हीं का बेटा हूँ।"[37]

4.5.8. शिक्षा

आज दलित समाज और नारी समाज में पढ लिख कर बहुत से लोग जागृत हो चुके हैं। अब दलित अशुभ और अस्पृश्य नहीं माने जाते। उनकी सोच वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। अब उन्हें यूँ कचरे में फेंकना आसान काम नहीं है। जिस ज्ञान के माध्यम से सवर्ण वर्चस्ववादी समाज ने उनके साथ जानवर जैसा सलूक किया, उसी ज्ञान को दलित और नारी ने अर्जित कर अपने अत्याचारों के हिसाब माँगने लगे हैं।

शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनमें शक्ति आ गई है। इस शक्ति के सहारे वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे और अपने लोगों में भी जागृति लाकर उनके जीवन भी सुधारने की कोशिश करते रहे। वे प्रतिबंधों में हार नहीं मानते, उससे भागते भी नहीं, टट्टे रहकर सामना करते हैं और विजयी बनते हैं।

महिमा और धीरज दोनों दलित समाज के हैं। उन दोनों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की हैं। धीरज कुमार का घर बनारस के छित्टपूर बस्ती में है। उसने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पढाई की थी। उन्होंने दलित बस्ती में असुवधाओं के बीच रहकर अपनी शिक्षा पूरी की। बी . एच . यू से बी.काम,एम.काम के बाद पी .एच . डी भी उन्होंने प्राप्त किया।रघुजी नगर में कमला नेहरू विश्वविद्यालय में वकेंसी देखकर वह महाराष्ट्र आ गया। महिमा का परिवार गरीब था।इसलिए वह शहर में मामा के यहां रहकर शिक्षा प्राप्त करती है।मामा के घर में कुछ परेशानियां होने पर भी, पढ कर अपने पैरों पर खडे होने की लालसा से वह सब सह लेती है। क्योंकि गाँव में उच्च शिक्षा केलिए सुविधाएँ नहीं थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह कॉलिज में अध्यापिका बन जाती है। शिक्षा से मिले ज्ञान और हौसले से उसके आत्मसम्मान की

भावना बढ़ जाती है। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सवर्ण समाज सेवक चमनलाल उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखता है।

शिक्षा नारी में अदम्य शक्ति का संचार करती है। शिक्षा अन्याय के विरेध करने की शक्ति देती है,घर की चार दीवारी के बाहर निकलने की और अपनों को जागृत करने की शक्ति देती है, अपनों का आश्रय बनने की शक्ति देती है, अपनी इच्छाओं को साकार करने की हौसला देती है, मौका की प्रतीक्षा करने की शक्ति देती है, मौका मिलने पर अपने आपको सही ढंग से अभिव्यक्त करने की शक्ति भी देती है।

4.5.9. संघर्ष

भारत की सवर्ण मानसिकता दलितों को समाज के उच्च पदों में आसीन नहीं देखनी चाहती।लेकिन सरकारी दफतरों में तो सरकार द्वारा चयन होने के कारण वे कुछ नहीं कर पाते।लेकिन अर्ध सरकारी संस्थाओं में दलितों को दूर रखने की कोशिश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में चल रही है।सरकारी अर्धसरकारी संस्थाओं में सरकारी नियम समान है।लेकिन अर्ध सरकारी संस्थाएँ हमेशा इन नियमों को हवा में उडाते हैं।

हनुमान नगर के शांति निकेतन महाविद्यालय के सभी टीचिंग और नॉनटीचिंग स्टाफ ब्राहमण है।किसी तरह की छोटी चालाक से वे कानून को अपने अनुसार डाल देते हैं। यहाँ के एस .सी आरक्षण पोस्ट बरसों से भरे नहीं हैं।हर साल यह बहाना दिया जाता है कि उचित कान्डिडेट नहीं मिला है। उसके स्थान पर किसी सवर्ण उम्मीदवार को एक साल के लिए नियुक्त किया जाता है।समाचार पत्र में बहुत ही छोटे अक्षरों में एक कोने में इस रूप में विज्ञापन दिया जाता है कि

साधारणताया पूरा अखबार देखने या पढने के बाद भी उस पर ध्यान न जाए। इस बार दिये गये विज्ञापन पर तीन शिक्षित दलितों ने आवेदन पत्र भेजा।

पंद्रह दिन बीतने के बाद भी कोई जवाब नहीं मिला तो वे सीधे कालिज गये। वहाँ से उन्हें पता चला कि इंटरव्यू हो गया और एक सवर्ण अध्यापिका की नियुक्ति भी हो गयी। तीनों ने मिलकर शांति निकेतन कॉलेज के भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपना शिकायती पत्र यु. जी .सी के उच्च अधिकारी को दे दिया।इस पर तुरंत कार्यवाही हुई औरि पहली नियुक्ति को रद्द की गयी। समाचार पत्र में दुबारा विज्ञापन दिया गया। इंटरव्यू चलाया गया। तीनों में से एक को नौकरी मिलेगी। इसलिए बाकी दोनों झगडा किये बिना नौकरी महिमा को देने का निश्चय किया। महिमा शांति निकेतन कॉलेज की अध्यापिका बन गयी। दलितों की अस्मिता की तलाश में इस तरह की भावना की आवश्यकता बहुत है। यह उन के बीच के प्रेम को बढाएगा। एक पद केलिए तीनों मिलकर झगडा करेंगे तो कोई दूसरा उनमें फूट डालकर फायदा उठाएगा और उनकी शक्ति कमज़ोर हो जाएगी।

4.5.10. योग्यताओं को बढावा देना

हाशियेकृतों को शिक्षा और नौकरी प्राप्त करने के बाद आलसी नहीं बनना चाहिए। उत्साही और प्रयत्नशील रहना चाहिए। हमेशा ऐसा देखा दाता है कि दलित हो या नारी कुछ बनने के बाद अपने में सीमित रहते हैं। ऐसा न करके अपनी योग्यताओं का पूरी तरह इस्तेमाल करना चाहिए। दुनिया को यह दिखाना चाहिए की हम किसीसे कम नहीं है।

शांतिनिकेतन महाविद्यालय की अध्यापिका महिमा निडर और साहसी है।महाविद्यलय में होनेवाले प्रत्येक कार्यक्रम में वह भाग लेती है और उसके संचालन में भी वह निपुण है। मासिक और त्रैमासिक रूप से निकलनेवाली पत्रिकाओं में

उसकी रचनाएँ छपती रहती हैं। इतना ही नहीं दैनिक भास्कर, नवभारत,लोकमत समाचार आदि समाचार पत्रों के साहित्यिक पन्ने पर उसकी रचनाएँ छपती है। व्यंग्य लेख और भाषण में भी वह कुशल है। बहस में भाग लेनेवाले छात्रों को वह अपनी तर्क बुद्धि,सूझबूझ और विवेक का इस्तेमाल करके तैयार करती है। वह अपना हर काम लगन और दृढनिश्चय के साथ पूरा करती है।उसके गुणों और कार्यों को देखकर कालिज के लोग महिमा से ईर्ष्या भी करते है।

4.5.11. आत्म सम्मान की भावना

दलित जितना भी कार्यकुशल हो उन्हें निम्न दृष्टि से ही देखा जाता है। उनके गुणों की परख जाति की कसौटी पर कसकर ही की जाती है। कॉलेज के लोग धीरज को परेशान करने का अवसर ढूँढते रहते हैं।महिमा की हालत भी इससे भिन्न नहीं है। अगस्त 15के दिन कॉलिज में आये महाविद्यालय का उपाचार्य शास्त्री को महिमा परिचय देते हुए माडम कहती है- " पंडित,महिमा हमारे विद्यालय की अच्छी अध्यापिका है।बस दुख की बत यही है कि वह निम्न वर्ण की चमार जाति में पैदा हुई है। इस अपमान का बदला उसी समय ही महिमा दे दिया---माडम मेरा परिचय सिर्फ जाति से नहीं मेरे कृतित्व और व्यक्तित्व से है।" [38]

दलित गरीब और झोपड पटटी में रहनेवाले लोग थे। बहुत सारे दलितो को अपनी जमीन,घर यहाँ तक कि राषन कार्ड भी नहीं थे।वे कीडे मकोडों की तरह रह रहे थे। इनकी शिक्षा की ओर कोई ध्यान देता नहीं थे। धीरज कुमार ऐसी हालत से शिक्षा प्राप्त करके कठिन मेहनत करके कॉलिज अध्यापक बनने वाला व्यक्ति है। दलितों को पढाई के साथ किसी संगठन से जुडे रहना चाहिए। यह उसके आंतरिक विकास में मदद देगा। धीरज मार्क्सवादी आंदोलन के मोर्चों, धरना कार्यक्रमों में भाग लेता रहा। यह उसके मन को दृढ बनाकर उसमें आत्मविश्वास भर दिया।

4.5.12. नारी अस्मिता का नया रास्ता

भारतीय समाज में प्रमुख रूप से दो तरह की स्त्रियाँ दिखाई देती है। एक तो पुरुषों का पूरी तरह विरोध करती हैं दूसरी पुरुषों की सत्ता और आधिपत्य को पूरी तरह स्वीकार करती हैं।शास्त्री मैडम परुषों का सत्ता स्वीकार करती है तो दामिनी चौधरी इसे स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होती। दामिनी चौधरी शिक्षित और नौकरी प्राप्त महिला है। नौकरी करने के बाद भी उन्हें अपना पैसा स्वयं रखने का अधिकार नहीं है। उसका पति उसके साथ बुरा व्यवहार भी करता है। घर की सभी जिम्मेदारी भी उसके ऊपर थी। मार पीट से तंग आकर एक दिन वह उसे घर से निकलकर अपने आपको आज़ाद करती है।

पत्नी पर पति द्वारा अत्याचार और उत्पीडन पुरानी समस्या है। हर युग में इसका समाधान ढूँढने का प्रयास किया जा रहा है। अत्याचारी पति को छोडकर अपनी अस्मिता की रक्षा करने वाली नारी आधुनिक नारी के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य और सर्वस्वीकृत हो गयी है। लेकिन तुम्हें बदलना ही होगा में नारी अस्मिता केलिए एक अलग रास्ते की तलाश सुशीला टाकभौरे हमारे सामने रखती है। क्रूर पति से मुक्ति पाने केलिए दामिनी अपने बेटे को लेकर घर छोडती है और पति से तलाक भी लेती है। इसका विरोध करती हुई महिमा कहती है - " यह समस्या का समाधान नहीं है। इससे एक समस्या से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है। बच्चा बिना बाप के रह जाएगा।सारी जिम्मेदारी उस महिला पर आ गिरेगी। अब उसे अकेला ही रहना ही पडेगा। घरेलू समस्याओं से भागने के बदले,डटकर उसका सामना करो और परिस्थितियों को बदल दो।"[39]

4.5.13. बालश्रम का विरोध

दलित बस्ती के बच्चों को धनी सवर्ण कम वेतन पर नौकरों के रूप में रखते हैं और उनसे कसकर काम लेते हैं। विवाह बारात के समय लाईट के हंडे सिर पर रखकर चलने केलिए इन्हीं बच्चों को बुलाया जाता है।घरेलू काम केलिए अधिकत्तर आठ से बारह पंद्रह तक वर्ष के बच्चों को नौकर रखा जाता है। खेतों,कारखानों और होटलों में भी ऐसे बच्चे बडी संख्या में काम करते हैं।

धीरज ने गरीब बच्चों को बाल श्रमिक बनाने वाले होटल मालिकों के विरुद्ध मोर्चा लगाया। धीरज ऐसी सभी जगह जाकर बच्चों और उसके मालिकों का लिस्ट बनाया।फिर ऐसी जगहों पर जाकर पुलिसों से एलान करवाया कि बच्चों से काम करवाना जुर्म है। ऐसे बच्चों को स्कूल भेजने की कार्यवाही भी की। महिमा की महिला जागृति संस्था और धीरज के दलित संगठन ने सरकार के सामने अनेक मांगें रखी। उसने रघुजीनगर, हनुमान नगर और स पास के सभी बस्तियों में घूमकर घर घर जाकर ऐसे बच्चों की सूची बनाई, जो अभी तक स्कूल नहीं भेजे गये थे। इनमें लडकियों की संख्या अधिक थी। कई बच्चों ने पांचवीं और छठवीं तक जाकर पढाई छोडी थी। धीरज ने उन्हें स्कूल खुलने पर प्राईमरी और मिडिल स्कूल में भर्ती कराया

4.5.14. संगठन

दलित और नारी मुक्ति केलिए संगठन किस प्रकार किया जा सकता है इसका विस्तृत विवरण इसमें मिलता है।धीरज कुमार द्वारा दलित और पिछडों का संगठन दिखाया है तो महिमा द्वारा नारी संगठन दिखाया है।

दलित अब संगठित हो रहे है। बहुत सारी दलित संस्थाएँ दलितों की उन्नति केलिए काम कर रही हैं। लेकिन अधिकतर दलित इन संस्थाओं के बारे में जानते तक नहीं है। संगठन का भाव दलितों में लाने केलिए सबसे पहले इन संगठनों में सभी दलितों को सम्मिलित होना चाहिए। इस प्रकार के संगठन में भाग लेने से उनके भीतर का हीनता बोध समाप्त हो जाएगा। हिंदू संस्कृति द्वारा सदियों से उनमें भरा हीनता बोध इससे मिट जाएगा। महिमा इन संस्थाओं की जानकारी देकर इसमें भाग लेने की आवश्यकता दलित महिलाओं को समझाती है।

महिमा होस्टल और कॉलिज की लडकियों में साहस और जागृति भरने की कोशिश करती है। उनके मन से अकेलेपन की भावना को निकालकर उनमें अस्मिता बोध जगाने की प्रेरणा देती है। महिमा नारियों को खासकर दलित नारियों को संगठित करने और उनमें आत्मविश्वास जगाने का प्रयत्न करती है।कॉलिज के पास के रामबाग बस्ती की छात्राएँ महिमा को दीपावली,दसहरा रक्षाबंधन आदि समाजिक त्योहारों के अवसर पर बुलाती है।वह उनकी विनती स्वीकार करके छात्राओं के घर जाती है और उनके घर वालों से मिलकर उन्हें भी जागृति का संदेश देती है। महिमा बस्ती की औरतों को घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर कुछ करने का हौसला दिया।"बहन आप लोग मेरी संस्था के दलित और महिला जागृति के कार्यक्रम में भी आईए।हमारे कार्यक्रम आप लोगों केलिए किये जाते है।लोग वहाँ आकर कुछ सीखें,समझें इसी में हमारी कार्यक्रम की सफलता है।"[40] साथ ही साथ वह दलितों में अस्मिता बोध जगाने की कोशिश भी करती रही।

महिमा अध्यापन के साथ दलित आंदोलन और नारी आंदोलन की अनेक संस्थाओं से जुडी रहती थी। वह जब भी अपना शहर आग्रा जाती है, रिश्तेदारों से कम वाल्मीकि बस्तियों में जाकर उनसे भेंट मुलाकातें अधिक करती है। क्योंकि भेंट

मुलाकातों से ही आपस की दूरियाँ मिट सकती है।दलितों में कुछ लोग तो शिक्षित होकर अच्छी नौकरियाँ प्राप्त की है। फिर भी बहुत से लोग अब भी गरीबी में जी रहे है। महिमा इन गरीब लोगों केलिए काम करना चाहती थी। वह यही चाहती थी कि आज की नयी पीढी के बच्चे पैतृक रोज़गार अपनाकर मज़दूर की ज़िन्दगी न बिताएँ। शिक्षित होकर अच्छी नौकरी पाकर सम्मानपूर्वक जिन्दगी बिताएँ। वह दलितों को जागृत और संगठित करने केलिए दलितों के लिए संघर्ष और प्रयत्न करनेवाले महापुरुषों के जन्मदिवस और मृत्यु के दिवस नोट करती है और इस दिन में कार्यक्रम आयोजित करती है। इस दिन ज्यादात्तर दलितों और महिलाओं को मिलाने की कोशिश करती है। इन कार्यक्रमों के द्वारा इन्हें अक्षर ज्ञान से पहले हिम्मत और स्वाभिमान प्राप्त करने की प्रेरणा भी मिलती है। दुखडों को सुनाने से ज्यादा जरूरतों को बताने की उत्तेजना मिलती है।

दलितों को अपने अधिकार प्राप्ति केलिए सदा सतर्क रहना चाहिए। आरक्षण और कानून प्रावधान में दलितों को बहुत अधिकार दिया गया है। लेकिन कभी कभी इसके भोक्ता दलित नहीं बल्कि दूसरे होते हैं। झूठी बातें और कानून के झंझड के बारे में कहकर लोग उन्हें ठगाते हैं। अनपढ हाशियेकृत लोग अफसर लोग जो कहते हैं उन्हें सच मानकर चुप रहते हैं। विरोध किस प्रकार करना है यह वे नहीं जानते। लेकिन शिक्षित दलित जानते है इसका विरोध किस प्रकार करना है। वे अपने आप को ठगने नहीं देते। वे टट्कर इसका विरोध करते हैं। शांति निकेतन कालिज के अधिकारी पंडित जी दलितों केलिए आरक्षित पद पर सवर्ण को रखा तो तीनों दलित आवेदकों ने संगठित होकर इसका टक्कर विरोध किया। अपना हक मिलने तक वे संगठित होकर कोशिश करते रहे। पंडित को मामला रफा दफा करने केलिए पैसा पानी की तरह बहाना पडा।

महिलाओं के विरुद्ध चलनेवाले अन्यायों की परंपरा को मिटाने केलिए दलितों की तरह नारी को भी संगठित करना चाहिए। घर से हटकर नहीं परिवारवालों के साथ जुडकर। घरेलू समस्याओं से भागने के बदले, टेट रहकर उसका सामना करना चाहिए। परिस्थितियों को अपने अनुकूल बदलना चाहिए। जब तक नारी की ओर से संगठित होकर कुछ करने का प्रयास नहीं होगा, स्थिति बदलेवाली नहीं है। नारी में भी जाति की भावना प्रबल है। मुख्यधारा समाज की नारी,शोषित और पीडित रहती है। फिर भी उच्च जाति होने का दंभ वह नहीं छोडती। अलग अलग रहकर जाति की चश्मे से अपने आपको देखकर नारी कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती।नारी को अपनी सामाजिक स्थिति का निरीक्षण करनी चाहिए। उसके बाद उससे मुक्त होने की इच्छा मन में पैदा करना चाहिए।

नौकरी मिलने के बाद धीरज बनारस की दलित बस्तियों में जागरण का कार्य करने लगे। उनके जीवन का यह नियम बन गया था। वह दलितों के अलग अलग, मुहल्लों में रोज चक्कर लगाता रहता था। जो लोग सुबह देर से काम पर जाते थे,उनसे सुबह भेंट हो जाती थी। जो सुबह जल्दी जाते थे उनसे शाम भेंट करते। उन्हे वह यही समझाती थी कि हमें समझ बूझ के साथ काम करना चाहिए।

4.5.15. निकम्मे दलित युवाओं सक्रिय बनना

ज्यादात्तर दलित शहर की गंदी बस्तियों में रहते हैं। अशिक्षा, विसंगतियों, विद्रूपताओं और अभावों के बीच बीते उनके बचपन, उसकी किशोरावस्था को भी कुचल देता है। इन परिस्थितियों से होकर आनेवाले दलित बच्चे युवा होते होते कभी कभी गुंडे और मवाली बन जाते हैं। भारत की उन्नति केलिए काम आनेवाली युवा शक्तियाँ भारत को विनाश करने की शक्तियाँ बन जाती है। अक्सर ये युवा सही वक्त पर सही मार्ग निर्देश न मिलने के कारण विद्वंसक शक्तियों के हाथ की

कठपुतली बन जाते हैं। भटके हुए इन युवाओं को समाज के उद्धार का काम सौंपकर सक्रिय बनाना वर्तमान समाज केलिए आवश्यक है।

धीरज छोटे छोटे कार्यक्रम बस्तियों में आयोजित करके बस्ती की आवश्यकताओं को अधिकारियों के सामने लाने की कोशिश करता रहा। धीरज ने ताजबाग की झोपड़ पट्टी के लोगों केलिए अधिकारियों से मिलने और अपनी जरूरतों को उनके सामने रखने केलिए एक कार्यक्रम आयोजित किया। इस कार्य केलिए उन्होंने झोपड़ पट्टी में रहनेवाले चार समझदार लडकों को अपने शिष्य बना लिया। उन्होंने कालू, हीरा, राजा भैया और मुहम्मद जावेद को अपने क्षेत्र का काम सौंप दिया। ये चारों जुवारी,सटोरिया, शराबी और गंजेडी है। धीरज कुमार के संपर्क में आते ही वे अपना पुराना चोला उतार कर फेंक दिया। अब वे समाज के जिम्मेदार नागरिक बनकर, जिम्मेदारी के साथ धीरज के बताए हुए काम को निष्ठा से किया। उन चारों ने अपनी बस्ती के लोगों के बीच जाकर,उन्हें ताजबाग के बड़े मैदान में इकट्ठा करके अपनी समस्याओं को अधिकारियों के सामने रखने की बात समझाया और पूरे कार्यक्रम की सफल पूर्ती तक धीरज कुमार के साथ रहे।

इन चारों ने अपने इस काम केलिए कई शिष्य बनाये। इसप्रकार धीरज ने दलित बस्ती के बहुत सारे दलितों को सही ढंग से जीने की शिक्षा दी। दलित बस्ती के युवक आवश्यक मार्गनिर्देशन के अभाव में गुंडे, चोर और बदमाश बन गये थे। धीरज ऐसे युवकों, जो भारत का भविश्य है, भारत की शक्ति है, उसकी शक्ति को राष्ट्र की निर्माण केलिए इस्तेमाल करता है।

4.5.16. अधिकारियों से अपनी जरूरतों की माँग करना

भारत के शहरे बस्तियों से भरे पडे हैं। इनसान रहनेवाली बस्ती में लोग जानवरों से भी बदत्तर जीवन जी रहे हैं। ये धनी सवर्ण समाजों से दूर फेंके गये

मनुष्य है। गरीब ऐर असहाय है। वहाँ उनकेलिए पीने के पानी की सुविधा नहीं है। बिजली नहीं है। देश के नागरिक होते हुए भी इनके पास राशनकार्ड नहीं है, स्थाई निवास जगह नहीं है। कभी भी कोई भी आकर इनकी बस्तियों को उजाड़ सकता है। विस्थापित होने की दहशत में वे अपना जीवन बिता रहे हैं। यहाँ के बच्चों की स्थिति देखनेवालों की आखों में आँसू भर देती है। इन के पास न तन ढकने केलिए पर्याप्त कपडे हैं न पेट भर खाने केलिए भोजन। शिक्षा प्राप्त करने केलिए इन बस्तियों में विद्यालय भी नहीं है। टूटी फूटी शीटों से बनी झोपड पट्टी में इनका बचपन भी सुरक्षित नहीं है।

धीरज ने इन असहाय लोगों को अपनी जरूरतों को अधिकारियों के सामने रखने का मौका दिया।उसने बस्तियों के युवाओं को लोगों को इकट्ठा करने का काम सौंप दिया। उन्होंने वार्ड मेम्बर और महापौर को इस कार्यक्रम की विशेषाथिति के रूप में आमंत्रित किया। कार्यक्रम शुरू होते ही पाँच साल की एक छोटी बच्ची धीरज के हाथों से गेंद का फूल लेकर महापौर के हाथों में दिया। उस फटे पुराने फ्रोक पहने अधभूखी बच्ची का हाल महापौर को उस बस्ती के बच्चों की स्थिति का एहसास दिलाया। अभावग्रस्त जीवन में निश्छल मुखमुद्रा के साथ मुस्कुराने वाली वह बच्ची अधिकारियों के मन में अनेक सवाल बिखेरती है।

धीरज अपने भाषण में सभी अधिकारों और सुविधाओं से वंचित इन लोगों को सुरक्षित करने की मांग करते हैं -" इन्हें भी इस देश का नागरिक होन का अधिकार चाहिए। प्रत्येक का कर्तव वार्ड मेम्बर का कर्तव्य है,वे अपने वार्ड की सुविधा और सुरक्षा का ध्यान रखें।महानुभाव,आपके वार्ड और आपके नगर में सबसे अधिक इन लोगों को सुविधाओं की जरूरत है।इनके बच्चे भूखेमरे रहे हैं।शिक्षा -स्वास्थ्य जैसी प्राथमिक जरूरतों से ये अब भी वंचित हैं।हमारे देश का लोकतंत्र इनके लिए

क्या कर रहा है।"[41] इसके अलावा उसने इसके ओर भी संकेत किया कि बस्ती में बहुत सारी महिलाएँ प्रसूती के समय मर जाती हैं। झोंपडियों की आस पास की गंदगी के कारण बस्ती के लोग बहुत सारी बीमारियों के शिकार बन जाते हैं।

धीरज ने दस लोगों के नाम दिये और उन्होंने मंच पर आकर माईक पर अपनी समस्याओं का विवरण देकर,सरकार का ध्यान उसकी ओर खींचा।महापौर,वार्ड मेम्बर और मंच पर उपस्थित राजनीतिक और सामाजिक नेताओं, सभी ने उनकी समस्याएँ सुनी।इसके बाद जिन्होंने भी बदल भाषण दिये।वे सब हाथ जोडकर माफी मांगी और तुरतं उनकी तकलीफ दूर करने का वचन दिया।

4.5.17 अंतर्जातीय विवाह

अस्मिता की स्थापना केलिए दलित कोशिश कर रहे है।यह तब ही सफल हो जाएगी जब समाज की मानसिकता में बदलाव आएगी।इस के लिए जाति भेद मिटाना है।जाति को मिटाने का एकमात्र रास्ता अंतर्जातीय विवाह है।इसीसे ही जाति भेद और वर्ण भेद मिटेगा।इसप्रकार की दो शादियाँ इस उपन्यास में दिखाई हैं।चमनलाल और महिमा की शादी और चमनलाल की बहन उषा और धीरज की शादी।

चमनलाल बजाज मारवाडी राजपूत है।वह होशियार,समझार और दूरदर्शी व्यापारी है।वह बहुत ही धनी, सज्जन और समाजसेवी है।शांतिनिकेतन में आयोजित संगोष्ठी में मुख्य अथिति के रूप में चमनलाल लाया गया।महिमा कार्यक्रम की संचलक थी। चमनलाल महिमा के मिलनसार और हंसमुख व्यक्तित्व गुणों और उनकी ओजस्वीवाणी तथा आत्मविश्वास देखकर उनके प्रति आकर्षित हो गए।वह ऐसा सोचने लगा कि महिमा यदि मेरी ज़िन्दगी में आए तो यह उनके जीवन की सबसे बडी खुशी होगी।वह महिमा के गुणों की ओर ही ध्यान दिया।जाति की ओर

उसने उतना ध्यान नहीं दिया।महिमा चमनलाल की स्त्री सबलता और स्त्री स्वतंत्रता संबधी बातों से प्रभावित होकर उनसे प्रेम करने लगी।चमनलाल अधिक इंतजार करने केलिए तैयार नहीं था।इसलिए उन्होंने जल्द ही कोर्ट में जाकर शादी करने का आवेदन पत्र दिया। अगले महीने ही दोनों ने कोर्ट में शादी की।

सेठ मुकुन्दलाल की बेटी और चमनलाल की बहन उषा बजाज अपने कालिज अध्यापक धीरज से प्यार करती है।धीरज ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की।क्योंकि उन दोनों के बीच जाति की ही नहीं धन की भी दीवारें खडी हैं।उषा उसकी अच्छी शिष्या है। इसके आगे इस रिश्ते को लेकर जाना वह नहीं चाहता।धीरज और उषा के बीच पांच साल का ही अंतर है।मगर उषा में अधिक नादानगी और बचपना है तो धीरज में जीवन के कठिन संघर्षों के कारण गंभीरता है।वह उषा को परेशानी में डालना नहीं चाहते।इसके साथ ही जाति की चिंता भी उसे सताती थी।क्योंकि वह अपनी जाति कहकर नहीं चलता था।इसलिए उसने उसे समझाने की कोशिश करता रहा। छुट्टी लेकर एक महीने केलिए अपना गाँव चला गया। लेकिन वापस आने पर उसने देखा कि उषा की हाल में कोई परिवर्तन नहीं आया है। वह भी मन ही मन उसे प्यार करने लगा था।फिर भी बात को साफ करने केलिए धीरज ने उषा से खुलकर कहा कि वह दलित है।यह सुनकर उषा कुछ देर चुप रही।क्योंकि उस दिन तक वह यही सोची थी कि धीरज ब्राहमण या क्षत्रिय है।फिर उसने आत्मविश्वास के साथ कहा कि–" आप ब्राहमण हो, वैश्य हो या अछूत इससे क्या फर्क पडता है। मैंने आप से प्रेम किया है, आपकी जाति से नहीं। " [42] उस दिन से धीरज उषा से प्रगाढ प्यार करने लगा।

दलित और गैर दलित जाति के समझदार युवा और युवतियाँ शादी करने से समाज में समाजिक समता जल्दी ही ला सकती है।

4.6. निष्कर्ष

ईक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के बाद के उपन्यासों में हाशियेकृतों की सोच प्रौढ हो गयी।उनका लक्ष्य दलित अस्मिता की स्थापना के साथ-साथ दलित अस्तित्व की स्थापना करके भारत को संसार के प्रमुख देशों में एक बनाना बन गया।भारत के समग्र विकास की कल्पना को साकार करने केलिए ऐतिहासिक दृष्टि से पिछडे लोगों के साथ धार्मिक दृष्टि से पिछडेपन की व्यथा से जूझ रहे मुसलमान समाज की अस्मिता की तलाश की बात भी कही है।क्योंकि सवर्ण मानसिकता के लोग दलितों को ही नहीं मुसलमानों को भी चैन से जीने नहीं देते।

भारत युवाओं की शक्ति से संपन्न देश है।दलित उपन्यसकार समाज के पुनःनिर्माण का कार्य युवाओं के हाथ में देना चाहते हैं। हाशियेकृत वर्गों की युवा अस्मिता की लडाई केलिए शिक्षा,संगठन और संघर्ष के साथ अपने प्रौढ व्यक्तित्व का सहारा भी लिया है।विरोध और संघर्ष वे करते हैं,लेकिन सवर्णों को बातों को लातों से समझाने से ज्यादा संयम से समझाते हैं।सदियों से सवर्णों के मन में रूढ हो गयी धारणाओं को गलत साबित करना समाज में हाशियेकृतों की अस्मिता की चिर स्थापना केलिए आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ39
2. वही -		पृ 40
3. वही -		पृ 76
4. वही -		पृ 74
5. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ61
6. वही -		पृ 28
7. वही -		पृ 32
8. वही -		पृ101
9. वही -		पृ 41
10. वही -		पृ 48
11. मोहनदास नैमिशराय	ज़ख्म हमारे	पृ111
12. वही -		पृ 119
13. वही -		पृ 196
14. वही -		पृ 78
15. वही -		पृ 142
16. वही -		पृ 121
17. सुशीला टाकभौरे	नीला आकाश	पृ 26
18. वही -		पृ 95
19. वही -		पृ 46
20. वही -		पृ 68
21. वही -		पृ 61
22. वही -		पृ 85
23. वही -		पृ 78

24. **वही** - **पृ** 39

25. **वही** - **पृ** 76

26. **वही** - **पृ** 86

27. **वही** - **पृ** 87

28. **डॉ.श्योराजसिंह बेचैन और देवेन्द्र चौबे** **सामाजिक न्याय और दलित साहित्य** **पृ** 40

29. **सुशीला टाकभौरे** **नीला आकाश** **पृ**51

30. **वही** - **पृ** 104

31. **सुशीला टाकभौरे** **तुम्हें बदलना ही होगा** **पृ**15

32. **वही** - **पृ** 57

33. **वही** - **पृ** 45

34. **वही** - **पृ** 150

35. **वही** - **पृ** 56

36. **वही** - **पृ** 93

37. **वही** - **पृ** 63

38 **वही** - **पृ** 76

39. **वही** - **पृ** 150

40. **वही** - **पृ** 59

41. **वही** - **पृ** 161

42. **वही** - **पृ** 205

पाँचवाँ अध्याय

दलित उपन्यास : भाषा शैली

दलित साहित्य का उद्देश्य दलित समाज को जागृत करना और शिक्षा की प्रेरणा देकर अपनी अस्मिता स्थापित करने केलिए प्रेरणा देना है। यह साहित्य किसी प्रकार के शिल्प, प्रतीक, बिंब व सौंदर्य का गुलाम नहीं है। यह अपनी भाषा के शब्द, मुहावरे और वाक्यों की संरचना अपने सामाजिक परिवेश से ग्रहण करते है।

मुख्य धारा साहित्य में साहित्य का सौंदर्य और अर्थवत्ता सत्यं,शिवं सुदरम की कसौटी पर ही निर्धारित की जाती है।डॉ.एन सिंह ने अभिजात साहित्यकारों के संबंध में कहते है कि – " समाज का दर्पण, सत्यम,शिवम्,सुन्दरम्, सर्वहिताय वसुदैव कुटुम्बकम् आदि सिद्धांतों का ढ़ोल पीटा जाता रहा ।लेकिन वह सवर्णों का हिताय ही रहा।केवल सवर्ण समाज का दर्पण रहा।"[1]

दलित साहित्य दलितों की अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष से आकार पाता है।दलित लेखन अनावश्यक आरोपण से हटकर तार्किक एवं वैज्ञानिक होने का माँग करता है। दलित साहित्य के शिल्प के संबंध में सी.बी भारती कहते हैं —" दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का रूप विधायन, उसका सीमांकन व आकलन सामान्य सौंदर्य दृष्टि से संभव नही है। दलित विरुद्ध और विद्रोह का साहित्य है। दलित साहित्य का सौंदर्य वहीं निखरता है, जहाँ सदियों का संताप जो दलितों ने सहें है यथार्थ अभिव्क्ति पाता है। दलित साहित्य के सौंदर्य में काल्पनिक रोमांटिक रंगीनियाँ नहीं, अपितु दर घटनाओं का खुरदुरापन अपने यथार्थ के रूप में प्रस्फुटित होता है।"[2]

दलित साहित्य का सौंदर्य इस पर निर्भर है कि सदियों से चली आ रही सडी गली परंपरा पर वह कितनी बेदर्दी से चोट करती है। इस सौंदर्यबोध ने दलित साहित्य की भाषा को रूपायिता किया। डॉ मूल चंद गौतम - उसकी आप बीती इतनी दारुण है कि उसके बाहर की प्रामाणिकता का भाषा और शिल्प का चाकचिक्य उन्हें प्रभावित नहीं करता। यह आँखन देखी किताबों की दुनिया पर भारी है। इसके लिए

परंपरागत शास्त्र न काफी है। इसलिए इन्हें एक नए,अलग और विशिष्ट सौंदर्य शास्त्र की जरूरत महसूस होती है।" [3]

दलित साहित्य की भाषा में अश्लीलता और परिष्कार की बात करने वालों से मैनेजर पांडेय कहते है –" दलित साहित्य में जैसी सच्चाइयाँ और भावनाएं व्यक्त हो रही हैं, उन्हें क्या वाँछित प्रभाव के साथ ललित भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। दलित साहित्य में भाषा और अभिव्यक्ति का रूप दलित जीवन के सच से बनता है जो प्रिय तो एक दम नहीं है बल्कि नंगा,तीखा और चोट करने वाला है। वह भला ललित भाषा में कैसे अंट सकता है।" [4]

दलित साहित्य समुदाय विशेष का साहित्य है। अतः जिस परिस्थिति में वह समाज जी रहा है उस परिवेश और वहाँ से उत्पन्न पात्रों की सृष्टि में यथार्थता तभी आ जाएगी जब उस परिवेश की भाषा ही सार्थक है। उनके जीवन से जुडी, शब्दों, मुहावरों और उनमें प्रचलित भाषा के गठन रूपों का प्रयोग करके उनके भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति दी जा सकती है। उसमें अश्लीलता देखना स्थापित सवर्ण चश्मे की कमी है, दलित साहित्य की नहीं। सामाजिक त्रासदी की टीस कसक, जलन, असमानता से उपजी क्रूर यातनाओं बहन बेटियों की लुटती इज्जत, जाति पाँति की विचार धाराओं ,धर्म के नाम पर नुचती देवदासियों, धार्मिक पाखंडों और अंधविश्वासों ने दलित उपन्यास की भाषा को एक अलग छटा प्रदान की।

संस्कृत काव्यशास्त्र वर्ण व्यवस्था का पोषक एवं समर्थक है। दलित साहित्य काव्यशास्त्र को नहीं मानता। उसका शिल्प मानव जीवन का शिल्प है। ज़मीन की गंध इसका नजी वैशिष्ट्य है। यह अमूर्त सरलीकरण की जगह ठोस बिंबों को प्राथमिकता देता है। ऐसे शब्दों,प्रतीकों की बहुलता दलित साहित्य में मिलती है। यह सवर्ण संवेदनशीलता को चोट पहूचाती है। आक्रोश और दुख,ये दो अहसास हैं जिन्हें दलित

साहित्य पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करता है। घोर अत्याचार और तिरस्कार की यथार्थ घटनाओं का वर्णन करते समय भाषा कलात्मक रूप में नहीं आएगी। कलात्मक भाषा में यथार्थ पाठकों के मन में सुखात्मक पीडा की छाप ही छोडते हैं। लेकिन दलित साहित्य की भाषा पाठकों के मन में एक कसमसाहट पैदा करके उनके विचारों को कौंधती है ।

5.1. दलित उपन्यास की भाषा

इक्कीस्वीं सदी में साहित्य की दो धाराएँ बलवत्ती हुई, वे हैं दलित और नारी वादी साहित्य। ये दोंनों साहित्य धाराएँ वर्चस्ववादी पुरूष समाज के विरोध में खडी हुई हैं। इसमें दलित साहित्य में नारी मुक्ति के साहित्य के तत्व भी मिलते हैं ।

दलित साहित्य के साथ दलित बस्तियों की सडांध गलियाँ भी साहित्य में प्रवेश की। आभिजात साहित्य ने जिन लोगों को अपने घर के पिछवाडे में रखा उनके साहित्य प्रवेश बिलकुल अच्छा नहीं लगा।सवर्ण साहित्यकार और समीक्षकों केलिए दलितों के संस्कार, गंदी बस्तियों की स्थिति, गली में घूमते बच्चे आदि अनजान थे, इसलिए इनका वर्णन उन्हें असाहित्यक लगा। असल में यही दलित साहित्य है, जो अब तक के भारतीय जीवन और भारतीय संस्कार संबधी धारणाओं का पुनर्पाठ करने की कोशिश कर रहा है।

भुक्त भोगी रचनाकारों की भाषा प्रभावात्मक होना स्वाभाविक है। दलित रचनाकारों के मामले में वह तीक्षण भी हो गया है। भारतीय संस्कृति के दलित विरोधी, नारी विरोधी दर्शनों पर दलित उपन्यासकार आक्रात्मक होते दिखाई देते हैं। दलित साहित्य में यह आक्रात्मक तेवर आई . के गंगानिया के अनुसार संत और रैदास के काल से ही है। सामाजिक कुव्यवस्था धार्मिक पाखंड और शोषण चित्रित करने केलिए इस्तेमाल किया गया है। इन दोनों की शिष्य परंपरा में विशेषकर रैदास

की शिष्य परंपरा में ऐसे कई साहित्यकार हो चुके हैं,जिन्होंने भाषा की इस क्षमता का उपयोग अपने साहित्य में किया है।

ब्राह्मणवाद पर तीखा प्रहार दलित साहित्य की सबसे बडी विशेषता है। यह उपन्यास के शिल्प को परंपरागत उपन्यासों से अलग करता है। दलितों ने ब्राह्मणों द्वारा दलितों पर लगाये गये हर धार्मिक रीति रिवाजों पर प्रश्न चिह्न लगाया है। सवर्ण पात्रों को प्रस्तुत करते समय भाषा बहुत पैनी हो गयी है। तब भाषा सवर्ण मानसिकता को व्यक्त करने के साथ उसके मन में झांककर हिंदु संस्कृति की अमानवीयता को भी व्यक्त करने में सफल हुई है। दलित उपन्यासों की भाषा में मिलने वाली यह विशेषता वर्चस्ववादी उपन्यासों में नहीं मिलती। दलित उपन्यासों की भाषा सवर्ण मानसिकता को सूक्ष्म रूप में व्यक्त करनेवाली है। पाँचवीं पास करने के बाद सुनीत बस्ती से थोडी दूर के स्कूल में दाखिला लेने केलिए गया। वहाँ के मास्टरजी ने बंसी से कहा – " अभी भी समय है।कहीं इसे में धंधों पर लगा दो। दो पैसा कमाएगा तो अच्छा रहेगा। " [5]

उपन्यासों की भाषा बहुत ही सरल है। इसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जो हमें उलझाता है। गंभीर बातों को भी सरल और स्पष्ट रूप में कह दिया है। शोषण का विरोध करते समय इसमें कुछ तीव्रता आ गयी है। मौन में गिरी हुई अभिव्यक्ति दलित उपन्यासों की भाषा को एक अलग छटा प्रधान करती है। ब्राह्मणवाद दलितों को ही नहीं मुसलमानों को भी अपना शत्रू मानता है। उसका इस मुस्लीम विरोधी भाव ने भारत के अमन और चैन को कटघरे में खडा कर दिया है। अब भारतवासी सांप्रदायिकता के दहशत भरी वतावरण में साँस, ले रहे हैं। सादिया अक्सर कालिज जाते समय एक दादी को देखती थी ।एक दिन सादिया ने उसे सडक पार करने में मदद की। पहले उसने दुआएँ दी लेकिन जब उसके पिता का नाम सैयद सुना तो कुछ

पल टकटकी लगाकर सादिया की ओर देखने लगा। उसके मुँह से सै...य ....द....शब्द निकला। इन शब्दों के बीच की बिंदुओं ने हिंदू मुसलमान के बीच फैले अलगाव को व्यक्त करता है। इन बिंदुओं में उपन्यासकार ने शंका भर दी है। यह शब्द मात्र एक शब्द नहीं है बल्कि एक जनता की मनोवृत्ति है।

बहुत ही कम शब्दों में एक व्यक्ति की संपूर्ण जीवन कहानी कहने की क्षमता जितनी उनकी भाषा में मिलती है शायद दुर्लभ ही मिलेगी। पार्वती की जीवन गाथा कहते हुए उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वह अप्रतिम है। –" बिना शिव की पार्वती, शिव ने पहले ही मंदिर में बिठाकर देवदासी बनाया। फिर मंदिर से चकले में भेज दिया। पहले मंदिर के पूजारी ने इसके शरीर को भोगा। फिर गाँव के पट्टेल ने बाजी मारी। दोनों का मन भर गया तो गाँव के सामंत साहूकार की बारी आई यान हमारे समाज में जिसका जितना मान सम्मान, उतना ही देवदासी को भोगने केलिए उनके अधिकार सुरक्षित होते हैं। अब रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं। "[6]

तार्किकता का पुट इसमें स्वतः आ गये हैं। दलितों का आरक्षण हमेशा सुर्खियों पर रहा है। दलितों को आरक्षण देना कोई नहीं चाहता। इसके विरेध में हमेशा दंगा फसाद आदि होता रहा है। लोगों ने आत्मदाह भी किया है असल में इसे दलित और आदिवासियों या हाशियेकृत लोगों को क्यों दिया जा रहा है इसका खबर लोगों को नहीं है। दलित और आरक्षण विरोधियों के बहस से आरक्षण संबधी मान्यताएँ लोगों के सामने रखा है। ऐसे अवसर में भाषा गंभीर हो जाती है। इसमें बात में स्पष्टता और समग्रता आ गयी है। भाषा में ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक सौंदर्य ही नहीं नाटकीयता,वक्रता और सांकेतिकता भी है। विशेष अर्थ गर्भित और विशिष्ट, भाव संकेतों से भरे मुहावरों और लोकोक्तियों का विपुलता के साथ प्रयोग किया है।

भाषा के नये प्रयोग उपन्यासों में मिलता है।मुक्ति पर्व के रामलाल बनिया जाति के होते हुए भी दलितों की बस्ती में आकर उनके हाथों पानी पीते थे।इस संदर्भ में प्रयुक्त,'वह जाति के कीडेवाला आदमी न था' में सदियों की सवर्ण मानसिकता दूर होने की सूचना मिलती है।

उपन्यासों में भाषा का परिमार्जित रूप भी मिलता है। दलित उपन्यासों की भाषा में एक नए भविष्य की उम्मीद दिखाई देता है।यह उम्मीद सिर्फ दलितों के ही नहीं सवर्णों के भी है। 'सुअरदान' में एक जवान ठाकुर जीवन सिंह कहता है " विज्ञान का चमत्कार हो रहा है। अजूबी संतानें पैदा हो रही हैं। इक्कीस्वीं सदी से आगे की दुनिया है। इसमें सबकुछ हो सकता है। जिसको हम सोच नहीं सकते।"[7]

भावों की तीव्रता भाषा में पूरी तरह उतरने में दलित उपन्यासकार सफल हुए है। आरक्षण का विरोध करके योग्यता के आधार पर लोगों को जवाब देते हुए शिवकुमार कहते हैं कि प्रतिशत से अधिक दायित्वपूर्ण पदों पर सामान्य वर्ग अर्थात कथित योग्यता दक्षता प्राप्त उम्मीदवारों का ही कब्जा है। मुख्य सचिव जैसे पदों पर तो 100 प्रतिशत इन्हीं का कब्जा है। जब महत्व के पर जमे हुए है तो फिर क्यों सर्वत्र अराजकता फैली हुई है। यह पाठकों के मन में

भाषा बहुत पैनी है। 'उधर के लोग' में सुशील पन्ना से कहते है कपर हमारी लडाई सत्ता से नहीं, अस्तित्व की है। दलितों की लडाई ब्राहणों और उससे निर्मित सत्ता से ज्यादा दूसरी दलित जातियों, सामाजिक स्तर पर करनी पडती है। सभी जाति अपनी जाति को ऊपर उठाने में लगी रहती है दूसरी जाति की उन्नति में कोई हाथ नहीं बाँटता।

दलित साहित्य मानवीयता को लेकर चलता है। मनुष्यता के हितैषी दलित उपन्यास के मूल में सब को स्वीकृत करने की भारत भूमि के मूल तत्व ही निहित

है। जिसको आर्यों ने आत्मसात करके अपना लिया था।'ज़ख्म हमारे' में असलम राजू से कहते है मुझे तुम्हारी जाति से नहीं तुमसे मतलब है। फिर अल्लाह के बंदे तो सब बराबर होते हैं। भाषा का , भारत की अखंडता बनाए रखने केलिए इस्तेमाल किया है। दलित उपन्यासों में कहीं भी सांप्रदायिकता को बढावा नहीं दिया गया है। मानव को मानव से मिलाने केलिए इसे प्रयुक्त किया है।

भाषा में व्यक्तिगत अनुभवों से ज्यादा समूहमन के अनुभवों को अहमियत दिया है। कभी कभी ऐसा लगता है कि सामाजिक दुख के सामने वैयक्तिक दुख अवाक् रह जाते है। दलित उपन्यास की भाषा की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें अंबेडकर और बौद्ध की विचारधारा की स्पष्ट झलक मिलती है। 'जय भीम' शब्द हिंदी उपन्यास केलिए ही नहीं हिंदी साहित्य केलिए ही नया है। यह दलित साहित्य की पहचान है। यह शब्द दलित साहित्य में ही दिखाई देगा। दलित आंदोलन से जुडे लोग परस्पर संबोधन केलिए इसी शब्द का इस्तेमाल करते है। उनके नेता न नेहरू है न गाँधी है और न कोई और। अंबेडकर वही उनके नेता है।

मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में उर्दु शब्दों का भरमार हैं। महफूज, अंग्रजी शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है। अंग्रेजी शब्दों के साथ वाक्यांश और कविताएँ भी मिलती हैं। ये उपन्यास के प्रवाह को कभी रोकते या टोकते नहीं है। बल्कि उसको सुंदर ही बनाया है। ये उपन्यास के स्वाभविक अंग प्रतीत होते हैं।

वेश्याओं की भाषा बहुत ही तेज़ है। यह भाषा उनके जीवन की अरक्षित दशा से उत्पन्न हुई है। यह भाषा सभ्य समाज केलिए अपरिचित है। यह भाषा जैसे के तैसे आज बाज़ार बंद है उपन्यास में मिलता है। " नई ससुराल की तरह। हर रात मर्द आते हैं तपाते हैं और तड़पते हुए छोड़ जाते हैं स्साले है।हर रात हमारे लिए नई होती है। "[8]

अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों से इसके कारक सवर्ण वर्गों से घृणा करने वाले सुक्खा रमिया से कहता है -"कुछ सोच समझकर बात किया कर रमिया। जिन लोगों ने कहीं का नहीं छोडा हमको, जिनकी बर्बरता और अत्याचारों के कारण आज यह हालत है हमारी। मनुष्यता के इन हत्यारों से दया की उम्मीद करती है तू। पूरी कमाई हैं ये तो, खून में रंगे हैं इनके हाथ। ये हालत तो कर सकते हैं बहाल नहीं। "[9]

दलित उपन्यासों में क्रांति की भावना दिखाई देती है। यह क्रांति की भावना या सामाजिक परिवर्तन की भावना दलित उपन्यास का मूल स्वर है। छप्पर में चंदन अपने कालिज के दोस्तों को सामाजिक परिवर्तन का संदेश देते हुए कहते है कि –" हमारी शिक्षा की सार्थकता और जीवन का श्रेय इस बात में है कि हमें अपने साथ साथ अपने समाज के उद्दार और विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए। सदियों से दासता और गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा है हमारा समाज। खाली पेट नंगे तन और टूटे फूटे छान झोंपडों में बसर करने की विवशता,यही रहा है सैकडों - हज़ारों वर्षों से हमारा समाज का यथार्थ। हम लोग पढ लिख गए लेकिन हमारा समाज, हमारे नाते रिश्तेदार सबके सब अभी भी उसी स्थिति में है,उन सबकी निगाहें हमारी ओर है। "[10] भाषा के इस तथ्यात्मक रूप लगभग सभी उपन्यासों में मिलता है।क्रांति में भी वह सभ्यता की सीमा नहीं लांघता।

दलित जीवन की विसंगतियों को चित्रित करनेवाले दलित उपन्यायों की भाषा में उसे सुधारने की उम्मीद भी है। शोषण दलितों का अभिशाप है। शोषण की एक लंबी परंपरा दलितों ने झेली है। इसे तोड़ना उन्हें मुक्ति की राह दिखाना है।

दलित उपन्यायों की भाषा के मूल में गवेषणपरता है। पुराणों और वेदों के आधार पर भारतीय समाज में प्रचलित कहानियों के सत्य को खोज निकालना इसका

प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय भाषा और भारतीय साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को नए अर्थ में दलित उपन्यासों में प्रयुक्त किया है। काली, चण्डी, दुर्गा आदि देवताओं को भारतीय संस्कृति के अनुसार आर्य देवियाँ मानी गयी हैं। दलित उपन्यासों में इन्हें दलित देवियाँ मानी गयी है। इसका तर्क भी वह देता है।' सुअरदान' में अपनी इज्जत पर हाथ रखनेवाले ठाकुर से अनसूया कहती है - " काली, चण्डी दुर्गा का मैं रूप हूँ। दुर्गा काली चण्डी दलित महिलाएँ थी। वे सभी देवियाँ नहीं बल्कि कर्मयोगी महिलाएँ थी,जो भी कामुक,व दुराचारी व्यक्ति उनके पास गया था वह तरा नहीं मरा था।"[11]

भारतीय समाज में व्याप्त हर अंधविश्वासों को दलित उपन्यास तर्क की कसौटी पर कसकर देखता है।इसलिए इसकी भाषा में तार्किकता का गुण स्वतः आ गया।'थमेगा नही विद्रोह' में हिंदू समाज में प्रचलित अंधविशासों के पोल खोलने का प्रयास किया है। भला कोई अपने शरीर सहित स्वर्ग पहूँच सकते होंगे। हाड माँस का शरीर तो मिट्टी बनकर यहीं रह जाता है। पुराणों में अनेक ऋषियों के हज़ारों साल तपस्या करने की बात भी झूठा मानते है क्योंकि कोई भी आदमी हजारों साल कभी जीवित रहने की घटना किसी शास्त्रों में अभी तक नहीं कहा गया है। इसकेलिए शास्त्र का कोई आधार नहीं है। पहले ज़माने में ऐसा हुआ है तो अब क्यों नहीं। घर गृहस्थी छोडकर जंगल जाने पर भगवान मिलेगा,यह कि प्रचार गलत है भगवान घर में रहने पर भी मिल सकते हैं। दलित साहित्य में तर्क विचार बहुत मिलते है जो भारतीय संस्कृति की कुछ बातों को सुनने पर स्वाभाविक रूप में आ जाते हैं। व्यवस्थाओं के दोहरे मानदंड पर तीखा प्रहार करता है।

5.1.1. संकेत भाषा

सांकेतिक भाषा का प्रयोग दलित उपन्यासों में मिलता है। पात्रों के मानसिक व्यापार को व्यक्त करने केलिए इसका प्रयोग किया है। 'छप्पर' में रमिया बेटा चंदन को शहर से वापस बुलाना चाहती है ताकि सुक्खा को बुढापे में कुछ सहारा मिल जाए। लेकिन सुक्खा चंदन की आस तक उसकी पढाई जारी रखना चाहता है। रमिया उसे पढाना चाहती है।लेकिन पति के झडते शरीर और दमे की बीमारी से वह परेशान है। उसके मन की तड़प को इसप्रकार व्यक्त किया है —" इसके आगे कोई तर्क नहीं कर सकती थी रमिया, उसे अभी छुप लगाना पड़ा। पर कब तक मौन से ज़्यादा वाचाल और मौन से ज़्यादा आंदोलित करनेवाला और कुछ नहीं होता। शब्द मुखरित हो जाएँ एक बार तो मन हल्का हो जाता है,पर मौन बडा गंभीर होता है। जब तक मौन न टूटे मन में उथल पुथल मची रहती है। अंदर में कुछ उकसता रहता है, छटपटा रहता है मुखरित होने को।"[12]

सांकेतिकता का प्रयोग काल और परिवेश के परिवर्तन को दिखाने केलिए किया है। 1947 अगस्त 15 की सुबह के वर्णन में लाक्षणिकता का सुंदर प्रयोग मिलता है। " वैसे सूरज को लोग रोज़ देखते थे, पर आज का सूरज उनके लिए कुछ अलग रूप में था। कल तक वही उजाला उनके लिए कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता था। उजाला तो था पर जैसे अँधेरे से हारा हुआ था। गुलामी के परिवेश में दम तोडती आज़ादी जैसी। आज वही उजाला आज़ादी का प्रतीक था और सूरज चेतना का रथ बन गया था।"[13] 'मुक्ति पर्व' के ये शब्द दलितों की मुक्ति नव प्रतीक्षा है।

इतिहास द्वारा छुपाये गये सत्यों को खोज निकालना दलित उपन्यास को मुख्यधारा उपन्यास से अलग छटा प्रदान करते हैं। हमारा लिखित इतिहास सत्ता की रुचि या उनके आदेश के अनुसार लिखा गया इतिहास है। लेकिन बहुत सारे लोग

वैयक्तिक रूप में खोज करके सच्चाई सत्ता द्वारा ढक दिये सत्यों को बाहर लाये हैं। बाहर से देखने पर दलितोद्दार की श्रेष्ठ लगनेवाले अछूतोद्दार के दूसरे पहलू पर दलित उपन्यासों में प्रकाश डाला गया है। क्योंकि यह सत्य दलित जीवन से जुडे हुए तथ्य है। मुख्यधारा उपन्यास में समाज की निम्न श्रेणी या दलित के जीवन पर विचार विमर्श किया है। लेकिन इन उपन्यासों में दलितों के उद्दार को गाँधीवादी नजरिये से देखा गया है। दलित उपन्यास गाँधीवाद का विरोध करते है। क्योंकि उन्होंने अपनी लंबी जीवन यात्रा में इस तथ्य को पहचान लिया था कि इसके मूल में उसे दलित हित की नहीं सवर्ण हित की बातें ही है । इसलिए दलित साहित्य गाँधीजी और गाँधीवाद हमेशा प्रश्न चिह्न लगाया है। उमराव सिंह जाटव के 'थमेगा नहीं विद्रोह' में गाँधीवादी दलितोद्दार की आलोचना की है। इसकेलिए जाटव जी ने संकेत भाषा का प्रयोग किया है। संकेत इतना स्पष्ट है कि पाठक दुरूहता में कभी नहीं पडेगा। गाँधीवाद पर प्रहार करने केलिए उसने एक पात्र की ही सृष्टि की है।चावली कहती है – " एक महात्मा ने जब अछूतों के उद्दार का बीड़ा उठाया तो बाबा को उनका तरीका कतई पसंद नहीं आया क्योंकि महात्मा के अनुसार सब हिंदु भाई - भाई हैं लेकिन कोई अपना काम नहीं छोड़े। भंगी मैला कमाता रहें ,जाटव केवल बाहमन बनिया, रजपूतों की सेवा करते रहें। "[14]

संवादों की भाषा पात्रों से ज्यादा भारतीय संस्कृति को प्रकट करता है ।छुआछूत भारत की कोढ़ है । छूआछूत का पालन भारत में हर स्थिति में होता है चाहे वह भूकंप से पीडित प्रदेश हो या सुनामी से पीडित। ज़ख्म हमारे में भूकंप से पिडित गुजरात में तंबुओं में भोजन बाँटते समय भी ब्राह्मण दलितों के छूने पर चिल्ला उठता है। 'ओह ढेड' शब्द हथौडे की तरह चोट की आगे खडे दलित व्यक्ति के मन में। तुम यहाँ क्यों खडा है दलित केलिए अलग पंक्ति बनाने केलिए आक्रोश करने वाले ब्राहमण से गुलाम अहमद ने यही कहा कि, " मैं हरिजन हूँ,पर तुम से

भीख नहीं माँग रहा हूँ। इस पर ब्राह्मण तिलमिलाकर यही जवाब देता है कि ढेड होकर ज़बान चलाता है।मेरी नज़रों से दूर हो।"[15] इन शब्दों से मोहनदास नैमिशराय भारत में व्याप्त छुआछूत रूपी कोढ की गहराई को उसकी पूरी विकरालता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

पाठकों को पात्र के आंतरिक भावों को अनुभव कराने योग्य भाषा के संकेत उपन्यासों में बहुत हैं। 'मुक्ति पर्व' में पाँचवीं में नये स्कूल में जानेवाले सुनीत के मन की चिंताओं का संकेत इन शब्दों में उपन्यासकार ने दिया है - "स्कूल का पहला दिन सुमित केलिए बेचैनी का दिन था,वहाँ कुर्सी पर बैठे हुए अध्यापक को देखकर उसकी हालत जीब सी हो गयी। खुशी के स्थान पर उसके भीतर बेचैनी हो गयी।"[16]

भाषा में ऐतिहासिकता का संकेत भी मिलता है। ए.के सिंह द्वारा हुए अपमान का विरोध रमिया सशक्त रूप में करती है।फिर भी मन ही मन में वह उसे माफी भी देना चाहती है।वह सोचती है डॉ अंबेडकर ने मानववाद को स्वीकारा था और गाँधीजी को क्षमा किया।भारत को बँटनो से रोका था। आज रमिया ने भी सिंह को क्षमा कर दिया।

इतिहास संबधित बहुत सारी घटनाएँ दलित उपन्यास में मिलता है। मंडल आयोग की संस्तुतियों के क्रियान्वयन के विरोध में कई हादसाएँ हुई है।आत्मदाह हुआ है इसकी ओर 'जस तस भई सवेर' में इशारा जिया है। कानून हमेशा विवादास्पद रहा है चाहे वह बहु विवाह प्रथा हो,सति प्रथा समाप्ति हो, बाल विवाह निषेध हो, विधवा पुनर्विवाह हो, अस्पृश्यता निवारण हो, सवर्ण स्त्रियों को शिक्षा, समानता जैसे अन्य अधिकारों की प्राप्ति आदि घटनाएँ भारत में ही बहुत ही तहलका मचा दिया था। जब तक इसे दंडनीय अपराध नहीं घोषित किया गया तब

तक इसका जमकर विरोध किया गया।इन एतिहासिक सत्य के साथ इतिहास में छुपा दिये सत्यों की ओर भी इशारा किया है।

भारतीय इतिहास कुछ लोगो के हितों के अनुसार लिखा गया इतिहास है। इसमें बहुत सारी घटनाओं और सत्यों को छुपा दिये गए हैं। उन घटनाओं को उपन्यासों में पर्दाफाश किया है। रमिया शमी से कहती है—" आपको मालूम है भारत माँ दो हिस्सों में क्यों बँटी। यही अपने को श्रेष्ठ कहने वाले सपूतों के चलते। क्या आप जानती हैं कि भारत माँ तीन टुकडों में बँटने से कैसे बची, बाबा साहब अंबेडकर के चलते। अगर वे भी अपने पथ पर अडिंग रहते तो आज भारत माँ का चेहरा ही सिर्फ बचता। उनकी दाये बाएँ भुजाएँ साफ हो जातीं।"[17]

5.1.2. बिंबात्मक भाषा

दलित उपन्यास के सारे बिंब दलित जीवन से जुडे हुए है ।मुख्य धारा सामाज का जीवन उनके जीवन से बिलकुल अलग है।इसलिए दलित उपन्यास में प्रस्तुत बिंब बिलकुल अलग है।

दृश्य बिंब का सुंदर प्रयोग 'मुक्ति पर्व' में मिलता है। "गाँव में स्कूल खोलने पर दलित बच्चे पढाई को खेल मानकर घर से दौडे चले आये। उनके पास न किताब थी न कापियाँ,न तख्ति न स्याही। वे स्वयं ही कोरे कागज़ की तरह थे जिनके ऊपर समय की कलम ने अपनी तहरीर लिखनी थी। उनके मन आज समंदर से भी विशाल हो गये थे। जिन्में ढेर सारी लहरें उभर आई थीं।"[18] सीतापुर गाँव में दलितों की संख्या अधाक है लेकिन वहाँ के बच्चों को पढने केलिए विद्यालय नहीं था। रामजीलाल सहियक के कठिन परिश्रम के बाद स्कूल खोला। तब गाँव के बच्चे स्कूल के बारे में सुना ही था। देखा नहीं था। एक पिछडे गाँव में पहली बार विद्यालय आने

पर होनेवाले उभाड को मोहनदास नैमिशराय ने इस बिंब के द्वारा व्यक्त किया है।

घ्राण बिंब का सुंदर प्रयोग 'नीला आकाश' में मिलता है " मेहनत की कमाई आने पर मुर्गा, मटन,मछली, अंडा की तरकारी बनती है। गरम मसालों की सुगंध से घर महकने लगता है। कभी गेहूँ की रोटी बनाते है कभी ज्वार या बाजरे की कभी चावल, कभी चावल की पूरी,नहीं तो मोटा गेहूँ की दलिया। तेल मसालों की तरी वाली तरकारी में रोटी चूर मसलकर खाने का मजा ही कुछ और है।"[19] यह बिंब पाठक के स्वादकलिका को उत्तेजित करता है और ऐसी उनुभूति देती है कि वह खाना उसने खुद ही चख लिया हो।

वेश्याओं का जीवन प्रस्तुत करते समय लेखक के सामने बहुत ही चुनौतियाँ खुद ब खुद आ जाती हैं। भाषा के नियत्रित प्रयोग पर ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है। नहीं तो शील का अश्लील हो जाएगा। नैमिशराय ने बिंबों के सहारे स्पष्ट प्रभावशाली वर्णन किया है। 'आज बाजार बंद है' के वाक्यों के बारे में बस यही कह सकते है कि बात सीधी सी लगने पर भी तीखी है। वेश्याओं के पास आनेवाले पुरुषों की मनोवृत्ति की पैनी अभिवयक्ति इन शब्दों में हुई है "वह खड खडाते हुए आते थे सड सडाते हुए चले जाते थे।"[20] 'आज बाज़ार बंद है' का यह ध्वनि बिंब अभिसारिका के जीवन जीने केलिए अभिशप्त नारी जीवन को सूक्षम रूप से चित्रित किया है।

वेश्याओं की गली और उसमें तैर रहे मानव जीवन को दृश्य बिंब के माध्यम से सुंदर रूप में 'आज बाज़ार बंद' में प्रस्तुत किया है। "इस बाज़ार में नीचे पानी बिकता था ऊपर आग। आग घौंसलों में सुरक्षित थी। घौंसले जलते न थे। वहाँ कुछ

और ही जलता पिघलता था और पिघलते हुए आस पास बहता था। लोग आते थे और उफनती नदी में डुबकी लगाकर चले जाते। "[21]

ईसापूर्व युग के समाज केलिए बनाये गये नियम इक्कीस्वीं सदी में भी ढो रहा है इसका सुंदर बिंब रूपनारायण सोनकर ने 'सुअरदान' में दिया है। " यह युग प्लेन युग है। बैलगाड़ी युग समाप्ति पर है। दकियानुसी लोग इस बैलगाडी में पोथी – प्रत्रा अमानवीय संस्कार और अवैज्ञानिक धर्मग्रन्थों को लाद कर ढ़ो रहे हैं। जर्जर गाडी चरमरा रही है। बैल भार खींचते खींचते हाफ रहे हैं। बैल गिर कर मर रहे हैं और जर्जर गाडी टूट गयी है।"[22]

दलित उपन्यास नयी चेतना और नयी प्रेरणा का साहित्य है। इसमें हरिजन के बिंब को तोडकर अंबेडकर के दृष्टिकोण के आधार पर,दलित, बिंब की स्थापना की गयी है। डॉ. अंबेडकर की विचारधारा दलित चेतना और दलित साहित्य को परखने की मुख्य कसौटी है। दलित उपन्यासों में जड संस्कारों से मुक्त होकर नए संस्कारों को अपनाने की बात इसका प्राण है। 'सुअरदान' में पंडित देवी शंकर के हाथों में भगवद्गीता के बदले संविधान पकडाकर उपन्यासकार ने अंबेडकर के सिद्धान्त का समर्थन किया है। साथ ही साथ सवर्ण राज व्यवस्था के स्थान पर समता और मानवता के नये लोकतंत्र का संदेश देता है। उसे दृश्य बिंब में कुछ इसप्रकार चित्रित किया है। " पूजारी दयाशंकर के हाथ में डॉ. भीमराव अंबेडकर का संविधान था।"[23] पूजारी दयाशंकर अंबेडकर के संविधान की समानता और मौलिक अधिकारों की धाराएँ पढ रहे थे। संविधान पढ़ पढ़कर चारों की शादियाँ करा रहे थे।

5.1.3. प्रतीकात्मक भाषा

दलित उपन्यासों में व्यवस्थापित साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों को नहीं अपनाया। इन प्रतीकों में अभिजात वर्ग के लोगों के जीवन संदर्भों को ढोने की ही

क्षमता है। ये दलितों के दुःसाध्य जीवन को वहन करने में असमर्थ हैं। दलित उपन्यासों में पारंपरिक प्रतीकों के स्थान पर नए और मौलिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। सुअर, लोकतंत्र, कुते आदि प्रतीकों को अपना लिया है। झाड़ू, बाल्टी, कनस्तर आदि भी प्रतीक के रूप में आये हैं, जो शिल्प को यथार्थवादी बना रहे हैं और झाड़ू हाथ में लिये शिक्षित दलित विद्रोह के नये प्रतीक की सृष्टि कर रहा है।

रूपनारायण सोनकर के दोनों उपन्यासों के शीर्षक प्रतीकात्मक हैं। "डंक बरैयों के हैं। बैरेये कई प्रकार की होती हैं, लेकिन सभी के डंक तेज़ होते हैं। उनके अंदर जातिवाद, छुआछूत, ऊँच-नीच असमानता, सांप्रदायिकता का विशैला द्रव भरा है। उनके डंक चुभते ही दलित और पिछडे कराहने लगते हैं।"[24] "बरैयों के छत्ते शहद नहीं जहरीले वंशज पैदा करते हैं। ऐसे बरैयों को मशाल से जलाई जाती है।"[25] यहाँ प्रतीकात्मक रूप से यही कहा गया है कि जाति के डंक को क्रांति से ही जलाना चाहिए।

रूपनारायण सोनकर का 'सुअरदान' संपूर्ण रूप में एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। सुअरदान उपन्यास का नाम,और उसके पात्र सब प्रतीकात्मक है। गुजरात में माधवराव सोलंगी जिस समय मुख्यमंत्री थे उस उस समय उन्होंने क्षत्रिय, हरिजन या पिछडी जाति और मुस्लिम को आगे लाने की बात कही थी। इस प्रकार सुअरदान के लेखक किसी एक जाति के व्यक्ति को नायक न बनाकर चार लोगों को प्रतीकात्मक रूप में लिया है। चार चार वर्ग के प्रतीक हैं। इसके माध्यम से उपन्यासकार यही बताते है कि सिर्फ दलितों की कोशिश ही काफी नहीं है। गैर दलितों को भी सामाजिक परिवर्तन केलिए आगे आना चाहिए। पूरी जनता भेद-भाव के बिना एक साथ एक जुट होकर काम करेंगे तो भारत का रूप ही बदल जाएगा। यह तथ्य उन्होंने बडी सरल सफल ढंग से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

गाय सवर्ण वर्ग का प्रतीक है। सुअर और कुत्ता दलित वर्ग का। सुअर को मानव सबसे निकृष्ट जानवर मानते हैं। लेकिन सुअर आर्थिक रूप से कीमती जानवर है। देश की अर्थ व्यवस्था सुधारने व भूख मरी मिटाने में सफल रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है। इनके बालों से स्टैणडर्ड टूथब्रश बनते हैं। लोग सुअर के दूध का लोग उपयोग नहीं करते। इसमें सुअरों के दूध की उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला है। सुअरिये का दूध अनेक प्रकार की औषधियाँ बनाने केलिए काम आते हैं।जीवन रक्षक व काम शक्ति बढानेवाली दवाईयाँ सुअरियों के दूध से बनाई जाती हैं। भारतीय संस्कृति में निकृष्ट माने जाने वाले जीव को एक मल्टिपल मुनाफा देनेवाले प्रोडक्ट के रूप में सामने रखा है।

सुअरदान में आदि से अंत तक सुअर और गाय का एक अदृश्य द्वंद चल रहा है। यह दो जानवरों का नहीं दो संस्कृतियों का द्वंद है। सुअर और गाय के प्रतीकों द्वारा सोनकर ने बहुत ही सरल भाषा में व्यक्त किया है। इन दो प्रतीकों में सवर्ण और दलित ही नजर आते हैं। जिसमें दलित कामयाब होते हैं।

'सुअरदान' में प्रतीकात्मक शैली में यही बताया गया है कि युवा देश की संपत्ति और शक्ति है। इस दृष्टि से देखें तो भारत दुनिया के संपन्न देश अमेरिका से भी शक्तिशाली है।लेकिन इस शक्ति का संपूर्ण इस्तेमाल करने की व्यवस्था यहाँ नहीं है। जाति के कारण यहाँ के अस्सी प्रतिशत युवाओं को देश की उन्नति के कार्यों से अलग रखा गया है। जब तक इनके दिल और दिमाग को सही दिशा की ओर नहीं मुडाएगा तो देश का समग्र विकास संभव नहीं होगा। दलित ऐसा एक खज़ाना है जिससे भारत की भूखमरी मिट सकती है। भारत अब तक कस्तूरी हाथ में रख कर कस्तूरी की तलाश करनेवाले मृग के समान सहायता केलिए दर दर भटक रहा है। भारत विश्व का सबसे बडी मानपवर वाला देश है। इस शक्ति का ठीक इस्तेमाल

करने से भारत दुनिया में विकसित देश बन जाएगा। लेकिन भारत अब भी ब्राह्मणवाद के सिद्धान्तों को ऐसे पकडे बैठे है कि बेटे का चाहे मौत हो जाय, बहु की आँसू देखना ही काफी है।

सवर्णों को अपनी परंपरागत दकियानूसी विचारों से मुक्त होना चाहिए। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ज़माने के अनुसार न बदलने के कारण ब्राह्मणों की ज़िन्दगी पिछडी रह जाती है। इस बात को भी उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त किया।सवर्ण हो या अवर्ण जाति किसी केलिए भी अच्छी नहीं है। यह अपनी तरफ से सभी को परेशानियाँ ही देती है।बगुला और हंस सफेद रंग का होता है।बगुला मछली खाता है और हंस मोती चुगता है। मोती हर दम नहीं मिलते हैं।इसलिए हंस भूखों मरता है।मछलियाँ हर दम तालाब में मिलती हैं इसलिए बगुला जिंदा रहता है।

कावेरी जी ने दलितों को शिक्षा के क्षेत्र में मिल रहे तिरस्कार को महाभारत के गुरु द्रोण के प्रतीक के द्वारा स्पष्ट किया है। द्रोण चाहे जितने भी बडे गुरू हो।लेकिन एक व्यक्ति के रूप में देखें तो वह घृणित मानसिकतावाले व्यक्ति है,जो जाति के देख कर शिक्षा देने की बुरी प्रथा के ब्रांड अंबाजिडर है। दुर्योधन पौराणिक दृष्टि से दुष्टता का प्रतीक है। फिर भी उसमें मानवता और इंसान को परखने की शक्ति है। उसने सूत पुत्र कर्ण को उसकी जाति से नहीं उसके गुण के हिसाब से सम्मान और स्थान दिया। इसलिए कावेरी ने दुर्योधन को दलितों के साथ देनेवाले सवर्णों के प्रतीक के रूप में अपना लिया था।

पढ़ी लिखी होने पर भी दलित नारी को सम्मान देने केलिए सवर्ण तैयार नहीं होते।दलित नारी का जीवन विभिन्न तरह के शोषणों की कहानी है।गणतंत्र दिवस में राष्ट्रीय झंडे के सामने रमिया का अपमान हुआ।शिक्षा प्रशिक्षण जैसे उच्च

शिक्षा के क्षेत्र भी दलितों केलिए तिरस्कार का केंद्र है।उच्च वर्ग की लडकियाँ और शिक्षिकाओं ने उसे बहुत अपमानित किया।इस तरह के दलित उत्पीड़न के बहुत सारे मिथ महाभारत में मिलते हैं। "कालिज में रमिया स्वयं को कर्ण और शिक्षिकाओं को द्रोणाचार्य समझी थी।वहाँ शमी ने दुर्योधन की भाँति आगे बढकर सम्मान दिया था आज बाईस वर्ष बाद भी वही स्थिति है।"[26]

जाति को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित करते हुए नैमिशराय कहते हैं –" रात के अंधेरे में टकराने वाले भेडिये न थे वे बल्कि दिन के उजाले में रँगे सियार थे।गेंडे की खाल पहनकर वे दलितों पर तरह तरह से हमला करते थे। वेश्याओं की हालत के चित्रण के समय यह और तीखी होती दिखाई देता है।" इन मर्दों ने ही तो हमारे जिस्मों का भट्टी बना दिया है।हम भीतर बाहर से खूब जलती है।"[27]

5.1.4. सहज भाषा

दलित उपन्यासों की भाषा सामाजिक शोषण और अव्यवस्था का चित्रण करते समय बहुत तेज़ है। इसे छोड़कर बाकि सभी जगहों में भाषा बहुत ही सरल दिखाई देती है। सरलता और आडम्बरहीनता दलित उपन्यास की विशेषता हैं। दलित जीवन हमेशा अभावो में गुज़रा है। अभाव भरे जीवन ने ही दलित उपन्यासों के सौंदर्य और शिल्प को रूपायित किया है। ऐसे अवसर पर भाषा आक्रात्मकता को छोड़कर सहज रूप धारण करती है।

मिस रमिया में,रमिया फीस भरने केलिए माँ से पाँच रूपया माँगती है।प्रस्तुत संदर्भ में रमिया के घर –परिवार का चित्रण जिन शब्दों में उपन्यासकार ने किया है,वह बहुत ही सहज है। " फिर उसे बीते साल की याद तेज़ी हो गयी। आगे साल कितना धान हुआ था।माँ धाना से चावल बनाती ऊब जाती थी।जब किसी को ज़रूरत पडी तो झट से कोठरी खोलकर चावल ला देती।,वही कोठी आज खाली सूनी श्रीहीन

लग रही है।रूपये केलिए एक ही सांस में माँ से बोल दी परन्तु माँ पिता को जब कहेंगी तो पिताजी का गरीबी स जर्जर चेहरा और सूखकर सिकुड़ने लगेगा।"[28]

'नीला आकाश' में भीकू बेटा रामकिशन को पढ़ाकर इस गरीबी और तिरस्कार से मुक्त कराना चाहते थे। लेकिन वह लाख कोशिश करने के बाद भी आठवीं पार नहीं कर सका। आठवीं फेल होना सिर्फ राम किशन केलिए ही बल्कि सारे परिवार के लिए एक सद्मा था। इस उपन्यास की सबसे सुंदर भाषा प्रयोग यहाँ मिलता है। गाँव के उच्च जाति के बच्चे स्कूल जा रहे है, रामकिशन उन्हें स्कूल जाते देख रहा है।हृदय में छिपे दुख के कारण आँखों से आँसू बहने लगते हैं। रामकिशन अपनी बाहों से आँसू पोंछता है। रामकिशन पढ़कर बडा आदमी बनना चाहता था।उसने जी तोड मेहनत भी किया ।लेकिन आठवीं के गणित और विज्ञान जैसी कठिन विषयों की कठिनता दूर करने केलिए उसे किसी से कोई सहायता नहीं मिली।

दलित उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता दलितों की अस्मिता की तलाश में उसे पूरी सहयोग देनेवाले सवर्ण लोगों का चित्रण है। ऐसे संदर्भ में भाषा का सरल रूप मिलता है। विज्ञान और शिक्षा के प्रचार प्रसार से सवर्णों की नयी पीढ़ी में बहुत परिवर्तन आया है। छप्पर रजनी ठाकुर की बेटी है। चंदन के दलित अस्मिता की लडाई में वह पूरा सहयोग देती है और गाँव में उसके माता पिता का देखभाल करती है। वह सुक्खा से कहती है " मेरे पूर्वजों द्वारा किए गए अकृत्यों के कारण मेरे मस्तिष्क पर जो कलंक लगा है उसको धोने केलिए यदि मैं अपना सबकुछ भी आपके लिए नोछावर कर दूँ तो भी शायद कम होगा। इसलिए मैंने जो कुछ भी किया हे यह आप पर उपकार नहीं अपितु मेरे पूर्वजों द्वारा आप पर किए गए अन्याय का प्रायश्चित है। "[29]

दलित आंदोलन और नई पीढ़ी की कोशिशों से पुरानी पीढी में भी परिवर्तन आ रहे हैं। यह हृदय परिवर्तन छप्पर के हरनाम ठाकुर के हृदय से उतर कर शब्दों में प्रकट होता है तो जयप्रकाश कर्दम जी की भाषा उसकी सुंदरता की चरम सीढ़ी पर पहूँचती है।"जाति गत अथवा धर्म के सूचक किसी गोत्र अथवा उपनाम का भी अपने नाम के साथ प्रयोग नहीं करें हम, मनुष्यता का रिश्ता हो हमारे बीच मनुष्यता ही हमारा गोत्र हो, मनुष्यता ही हमारी जाति और मनुष्यता ही हमारा धर्म हो। इसलिए मेरा तुम से अनुरोध है सुक्खा कि मुझे ठाकुर साहब नहीं, हरनाम सिंह भी नहीं, केवल हरनाम कहकर पुकारो तुम, जैसे मैं तुम्हें सुक्खा कहता हूँ।"[30]

'डंक' उपन्यास में सरल भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है। राजा महाराजाओं के महलों और पुलों को मज़बूत करने केलिए केवल दलित या असहाय गर्भवती नारी की बलि चढाने की कहानी आदिवासी युवक द्वारा अपनी पत्नी को लोहे की चढढी पहनाकर ताला लगाने की बात , रूपनारायण सोनकर को पद्मश्री का निषेध करनेवाली बात आदि । ये घटनाएँ घटती नहीं है विराट द्वारा कही जाती हैं। इन जगहों में भाषा का प्रवाहमयी सुंदर रूप सामने आता है।

शिक्षा और आंदोलन द्वारा भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तन को सहज सुंदर भाषा में उपन्यासकारों ने व्यक्त किया है। सोनकर ने 'सुअरदान' में बदल रहे ब्राहमण जीवन का परिचय भी उन्हीं के मुख से दिया है। इसे उपन्यासकार ने मार्कण्डेय अग्निहोत्री के मुँह से ही कहलवा दिया कि पहले ब्राहमण दलितों, पिछडों की खुबसूरत लडकियों और औरतों को रखैल बनाकर रखा करते थे। मेहतरों की नवविवाहिता पत्नियों के साथ सुहाग पहले ब्राहमण मनाया करते थे। अब उलटा हो गया है।

सामाजिक विसंगतियों के चित्रण करते समय ही दलित उपन्यास की भाषा बहुत ही सूक्ष्म हो गयी है। जिन लोगों द्वारा भगवान की मूर्ति बनाई जाती है। मूर्ति बनने के बाद उसे मूर्ति छूने का अधिकार नहीं है। तब उसके छूने से मंदिर ही अपवित्र हो जाएँगे। सबसे विडंबना इस बात में है कि मंदिर को पवित्रता के लिए जिन वर्गों के लोगों को दूर भगाते थे उन्हीं की कुमारियों के मंदिर में देवदासी के रूप में काम पर लगायी जाती हैं।ऐसे संदर्भों में भाषा के संवेदनात्मक रूप भी मिलता है। " वे औरतें जरूर थीं,पर रंडियाँ थी। उनके कोई बाप, भाई, मामा या फूफा उनकी चौकसी नहीं करते थे। वे लावारिस थी, पिंजरों में रहती थीं। उन पर सभी का हक था। उनके अंगों को छेड़ने और सहलाने पर कोई पाबंदी नहीं थी।"[31]

दलित उपन्यास की भाषा सवर्ण पात्रों के मन को तार तार करके भारत के दलित विरोधी तत्वों को उजागर करती है। सवर्ण मानसिकता में स्वतंत्रता के बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।दलितों को शिक्षित कराना वह नहीं चाहते। मिस रमिया में रमिया दलित है।वह अपनी ओर से घर में एक स्कूल खोलती है।तब मधु जो सवर्ण जाति का है बच्चों को पढाने केलिए आती है। वह रमिया से कहती है " तो हम से ऐसा नहीं होगा ।एक तो हल चलानेवाले और नीच कर्म करनेवालों को पढाकर मूर्ख बनना। दूसरा मुफ्त..आज ये लोग पढ जाएँगे तो कल हमारी बराबरी करने लगेंगे। हमारे बच्चों के जैसा खाना पहनना खोजेंगे। कहकर नाक सिकोडने लगी।" [32]

शोषण का विरोध कानूनी तौर पर करने की सलाह भी दी गई है।सुअरदान में स्कूल के प्रधान आचार्य जितेन्द्र यादव स्कूल के लिए फर्णीचर खरीदने का पाँच लाख रूपया हड़प लेते हैं।एक दलित महिला स्कूल का भोजन बनाती है। उसे हटाने का अनुरोध सवर्ण लोग करते हैं और दलित बच्चों को सवर्णों से अलग करके खाना

खिलाने की बात भी होती है तो नए प्रधान संकटा प्रसाद चिकवा इसे मानने केलिए तैयार नहीं होते।वह इन सारी बातें समाप्त करना चाहता था। वरना शेड्यूल कास्टस/शेड्यूल ट्राइब्स उत्पीडन आक्ट के अन्तर्गत केस दर्ज होने पर लोगों की जमानत भी नहीं होगी।

इसकी भाषा के दलितों की मानसिकता के साथ सवर्णों की मानसिकता भी लेकर चलती हैं। सवर्ण आरक्षण के विरुद्ध रहे हैं। आरक्षण हिंदू समाज केलिए बनाने वाले अब इसका घोर विरोध करने लगे हैं। शिक्षा में आरक्षण और सुविधा में वह विरोधी नहीं है। लेकिन सरकारी नौकरी में वह आरक्षण उन्हें खलती है। आज़ादी के वर्षगाठ समारोह में प्रो.वयोमेश राय कहते है कि आरक्षण होना ही नहीं चाहिए।अगर हो भी तो जाति गत आधार पर कथापि नहीं होना चाहिए।इस आर्थिक आधार पर तो सहन किया जा सकता है।जाति विशेष में जन्म लेने से किसी को आरक्षण का अधिकार नहीं मिल जाना चाहिए।जस भई सवेर में प्रो.नाथ शिवदास से अंतर्जातीय विवाह के संबध में कहते है "अन्तर्जातीय विवाह को हम बुरा नहीं कह सकते। अंतर्जातीय विवाह का अर्थ है दो समान जातियों के युवक युवती का परस्पर विवाह।तुम नीच जाति क हो और सुमेधा उच्चवर्गीय कुलीन कन्या है।इस प्रकार यह बहिर्जातीय विवाह हुआ।"[33]

5.1.5. आक्रात्मक भाषा

सामाजिक विसंगतियों का चित्रण बहुत ही सूक्ष्म रूप से किया है। जिन लोगों द्वारा भगवान की मूर्ति बनाई जाती है, मूर्ति बनने के बाद उसे मूर्ति छूने का अधिकार नहीं है। तब उसके छूने से मंदिर ही अपवित्र हो जाएँगे। सबसे विडंबना इस बात में है कि मंदिर को पवित्रता के लिए जिन वर्गों के लोगों को दूर भगाते थे

उन्हीं की कुमारियों के मंदिर में देवदासी के रूप में काम पर लगायी जाती हैं। एसे संदर्भों में भाषा आक्रात्मक हो गयी है।

आरक्षण का विरोध करके योग्यता के आधार पर सरकारी नौकरियाँ देने की माँग करनेवाले लोगों को जवाब देते हुए शिवकुमार कहते हैं कि "अभी तक 75 प्रतिशत से अधिक दायित्वपूर्ण पदों पर सामान्य वर्ग अर्थात कथित योग्यता दक्षता प्राप्त उम्मीदवारों का ही कब्जा है। मुख्य सचिव जैसे पदों पर तो 100 प्रतिशत इन्हीं का कब्जा है।जब महत्व के पर जमे हुए है तो फिर क्यों सर्वत्र अराजकता फैली हुई है।"[34] भारतीय संस्कृति या हिन्दु संस्कृति की पुनरुद्दार का दावा लेकर आये आर्य समाज अपने दर्शन की समानता का बीगुल उठाया है। ईसाई धरम प्रचारकों के प्रचार के कारण बहुत सारे हिन्दु ईसाई बनने लगे तो हिन्दु धर्म की कट्टरता को दूर करके लोगों को इसी दर्शन से जोडकर रखने केलिए इस संस्था का निर्माण हुआ था। आर्य समाज के हर एक नेता मूल रूप में आर्य ही है, सौ प्रतिशत आर्य इसके कई उदाहरण थमेगा नहीं विद्रोह में मिलते हैं। दलितों के उद्दार का दावा देते हुए पीछे से उसे वार करनेवाली भारतीय आर्य संस्कृति की पोल खोलनेवाली सशक्त भाषा का प्रयोग किया गया है।

दलित नारी के शरीर पर सवर्णों का पूरा अधिकार है। सब समान है के आर्यसमाजी दीक्षा मंत्र से प्रभावित खडेचू, खडेचू आर्य बनकर आर्य समाजियों की तरह जीने लगा। समानता वाली बात की दुहाई होने पर भी आर्य समाजी लोग उसे दलित ही माना। बराबरी तो बातों में है, असल में दलित दलित ही रहता है। आर्य समाज के व्यवस्थापक,देवेशराज जी पाठक ने खडेचू आर्य की चौदह साल की बेटी चावली का बलात्कार करता है। इसका वर्णन करते समय भाषा कठोर हो जाती है। दहकती दिल से निकली सुलगती आवाज़ इतनी मार्मिक है कि यह उस पात्र के आगे

की चरित्र सृष्टि में सहायक होता है। "एक ऊँची जाति की गलीज़ व्यक्ति ने रोगी तन के उपचार का अंतिम साधन मान मुझसे बलात्कार किया था,एक अछूत और दलित की बेटी से बलात्कार किया कि कोई उसका कर ही क्या लेगा।"[35] इन शब्दों में असहाय असुरक्षित दलित कन्या का करूण स्वर जो दलित जीवन का यथार्थ है,अपनी पूरी चोखा के साथ उकेरा है।'थमेगा नहीं विद्रोह' की भाषा कुछ तेज है ।इसलिए पढनेवालों के दिल और दिमाग में स्फुर्ति का संचार हो जाता है।

दूसरों की संस्कृति की कुछ बातों को लेकर उस संस्कृति को निम्न और भारतीय संस्कृति को ऊँचा दिखाने की एक रीति पहले से ही यहाँ पर है। चावली कहती है " इनकी यह संस्कृति स्वर्णिम कतई नहीं है,हाँ सवर्णिम अवश्य है पत्थरों को पूजती और निर्दय इंसानों को निर्दयता से कुचलती,उनकी बहन बेटियों,पत्नियों माताओं पर बलात्कार करती, उनके बसेरों को फूँकती, उन्हें सबल उम्र भर केलिए बँधुआ और दासत्व के जुए में जोतकर रखती इनकी इस सवर्णिम सभ्यता में तनिक सी भी लाज लिहाज है तो किसी कुआँ खाई में डूब क्यों नहीं मरती।" [36]

दलित उपन्यास भाषा बहुत ही सशक्त है ।सुशीला टाकभौरे ने अपने ही प्रतिरूप में नीलिमा की सृष्टि की है।वह अपनी बातों को नीलिमा के माध्याम से कहती प्रतीत होती है ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए।हम क्यों अन्याय सहें, अन्याय सहना गलत है। चंदरी के माध्यम से भी वह महिलाओं से यही कहती है कि बहन-बेटियों, अपने घर से निकलो,समाज से जुडो और समाज के जोडो।बुधिया कहती है " सिंगार पटार में बहुत समय गंवा दिया तूने, अपने मर्दों की लड प्यार की बातें भी खूब सुन लीं।,बाल बच्चों को भी पाल पोस के बडा कर किया।अब आईना देखने से बदले समाज के काम से निकलो। खुद को आईने में देखने के बदले अपने

आपको बदलो।"[37] इस भाषा में एक आक्रोश है। सदियों से दमित वर्ग का आक्रोश इन शब्दों में व्यक्त होता है।

ओज भाषा की विशेषता है। छप्पर में चंदन गरीब दलित बच्चों को पढाने का संदेश अपने कॉलिज के दोस्तों को देते हुए कहते है कि " नहीं नहीं मैं पढाऊँगा मैं शिक्षित करूँगा उन्हें। मैं वाणी दूँगा उनके मूक ज़बान को।पढ़ लिखकर हमारे समाज के लोग ऊपर नहीं उठेंगे तो हमें ही कौन पूछेगा। हम थोडे लोग चीख चीख कर मर जाओगे,कौन सुनेगा हमारी चीख को। हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लडाई लडनी है, जुल्म और शोषण से विरुद्ध संघर्ष करना है एक दो आदमी के बल का नहीं है यह काम।अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसके लिए फैज चाहिए,वह फौज की तैयारी करूँगा मैं।" [38]

छप्पर में सुक्खा बेटे चंदन को पढने केलिए शहर भेजता है। पंडित और ठाकुर चंदन को वापस बुलाने केलिए कहता है तो वह नहीं मानता। इसका परिणम यह होता है कि सवर्णों ने सुक्ख को उनके खेतों में काम देना छोड दिया।लगान न देने के कारण बेदखली की बात आयी तो रमिया ठाकुर के पास जाने का सलाह देती है तो सुक्खा इसका विरोध करता है " चुप रह रमिया मत ले ऐसे जाहिलों का नाम मेरे सामने,जो मेरे बेटे का जीवन बर्बाद करने पर तुले हैं। मैं मर जाऊँगा, भूखा प्राण तज दूँगा सब कुछ बर्दाश कर लूँगा मैं पर मेरे चंदन को इस नर्क में नहीं पडने दूँगा कभी,जिस नर्क में मुझे रहना पडा है।तू अपना काम देख रमिया......।"[39] हाशिये कृत वर्ग जब जाग उठते हैं तब दुनिया के किसी भी शक्ति उसे रोक नहीं पाती।बाप और बेटे के इन शब्दों में उग रही नयी क्रांति का संदेश मिलता है, जिसमें जर्जर परंपराएँ बह जाएँगी।

हम डरते है गलत काम करने से। ईंट का जवाब पत्थर से देने में हम डरते हैं, मगर वे ज्ञानी पंडित नहीं डरते। अपने अहंकार और ऊँचे होने के,भाव को बचाने केलिए वे झूठे फरेब अन्याय अत्याचार सब करते हैं।हमारे साथ खुले आम बेईमानी करते हैं।जरा शर्म नहीं आती उन्हें ऐसे लोगों के साथ तो वही करना चाहिए-जैसे को तैसा।हमार अपना कोई ऐसा हो,जो उन्हें उनके ऊँचे सिंहासन से नीचे उतार कर,जमीन पर खडा कर दे।तभी वे हम जैसे अछूतों को बराबरी की नजर से देख सकेंगे, तभी समाज में भाईचारा और अपनापन आ सकेगा। चंदरी की इन बातों के पीछे बडी समाजिक चीख की अनुगूँज सुनाई देती है।इसमें हमारी बहुत सारी समस्याओं का समाधान है।इन सीधे से शब्दों में ऐसी शक्ति है जो आम आदमी के दिमाग में भी सीधा उतरेगा।

ब्राहणवाद और वर्चस्ववादी पुरुष समाज पर इसमें तीव्र प्रहार किया है।कोरा प्रहार नहीं तथ्यों को सामने रखकर प्रहार है,जिससे कोई भी सवर्ण नहीं बच पाएगा।हिन्दु संस्कृति का पहला पुनरुद्दारक श्री शंकराचार्य और उनके द्वारा स्थापित चार अद्वैत आश्रमों के आचार्यों,जिन्हें हिंदु धर्म के रक्षक के स्थान पर अभिषेकित किया है उनके अस्तित्व पर भी प्रश्न चिहन लगाया है।सवर्णों द्वारा स्थापित किसी भी स्तंभ को वे नहीं मानते। सदियों के तिरस्कार की तीव्र वेदना दलित साहित्य का प्राण है।उनके शब्दों में घनीभूत पीडा की कसक अपने आप आ गयी है। “ मंदिरों में कुत्ता बिल्ली,फ्लेग फैलानेवाला चूहा,घोडा,गाय तीथा सांड जा सकते थे परंतु शूद्र नामक इंसान नहीं।” [40]

गाँधीजी के हरिजन उद्दार को दलित लेखक नहीं मानते।इस आदर्श का विरोध दलित उपन्यासों पर जगह जगह पर मिलते हैं।गाँधी के राज्य में किसी सफाई कर्मी परिवार को चपरासी या बाबू की नौकरी देने का रिवाज़ नहीं था।नादिरा और

रुक्मिणी पढी लिखी होकर भी उन्हें अच्छी नौकरी देने केलिए बाबू लोग तैयार नहीं हुए उनके आवेदन को उन लोगों ने कार्यवाही केलिए भेजा तक नहीं।रुक्मणी देवी का नाम घटते घटते रुक्मो रह गया।सिर पर मैला ढ़ोनेवीली का भी कहीं रुतबा होता है।रुतबा होता है ब्रह्म के मुँह से पैदा होनेवाली संतानें सदियों से अभिशप्त जीवन जीने केलिए मज़बूर थी।

शोषण और सवर्ण मानसिकता का विरोध करते समय उपन्यासों की भाषा तीखी बन जाती है।गिनती लिखते समय साड़ी छूने की वजह से मधु लल्लू नामक एक छोटे बच्चे को थप्पड खींच कर मारती है और दो चार भद्दी गाली भी देती है ।रमिया इसका विरोध करके कहती है कि " मधु दी मैं फिर एक बार कह रही हूँ,ऐसी बात नहीं बोलिए लोग पढ लिखकर ही कुछ नहीं करेगा तो क्या ऊँची जाति के बच्चे माँ के पेट से ही कुछ करके निकलता है सब कोई अभिमन्यू ही जन्म लेता है। यह क्या जरूरी है कि एक डाक्टर का बेटा डाक्टर और एक पंडित का लडका पंडित और एक विद्‌वान का लडका विद्‌वान होगा।"[41] थमेगा नहीं विद्रोह की चावली कहती है इनकी यह संस्कृति स्वर्णिम कतई नहीं है, हाँ सवर्णिम अवश्य है पत्थरों को पूजती और निर्दय इंसानों को निर्दयता से कुचलती,उनकी बहन बेटियों,पत्नियों माताओं पर बलात्कार करती, उनके बसेरों को फूँकती,उन्हें सबल उम्र भर केलिए बँधुआ और दासत्व के जुए में जोतकर रखती इनकी इस सवर्णम सभ्यता में तनिक सी भी लाज लिहाज है तो किसी कुआँ खाई में डूब क्यों नहीं मरती। यहाँ भाषा का सहज रूप ही उभरकर आया है।

धार्मिक आडंबरों के विरोध में भाषा आक्रात्मक हो गयी है। सुअरदान में पंडित देवी शंकर कट्टर ब्राह्मण है।वह एडस के शिकार होने पर सब लोग उसका साथ छोड़ देते हैं ।तब पिगरी फार्म के अधिकारी सज्जन खटिक सलवंत यादव और

घसीटे चमार, जिनका विरोध देवी शंकर हमेशा करता था वहीं सहायता देता है।रोग से मुक्त पूजारी कर्मकाण्ड को छोड़कर मानव पर विश्वास करने लगता है।" इन पत्थर की मूर्तियों को जिनको हम देवता कहते हैं। रात दिन इनकी सेवा में लगे रहते है,इस विश्वास के साथ कि हमारा कल्याण करेंगी।यह सभी कोरी चीजें हैं।इन्होंने कभी भी किसी मानव का कल्याण नहीं किया है।हमारे संस्कारों को बेवजह इतना धार्मिक बनाकर हमें कर्महीन बना दिया है एवं फिज़ूल के धार्मिक कर्मकाण्ड में लगा दिया है।"[42]

दलित उपन्यास में सौम्य दिखाई देने वाली नारी शोषण के विरोध में बातें करते वक्त रण चंडी बन जाती है।रमिया भारतीय समाज के, नारी सम्मान पर जोर देनेवाले अभियंता से कहती है मैं माफी देने केलिए तैयार नहीं है।मेरे साथ तो महाभारत का दृश्य उत्पन्न हुआ।द्रौपदी की तरह बीच समूह में मेरा चीर हरण हुआ।

5.1.6. अकृत्रिम भाष

दलित साहित्य की भाषा की सबसे बडी विशेषता उसकी अकृत्रिमता है।दलित जीवन का चित्र मुख्यधारा साहित्य के रंगों से नहीं रंगा जा सकता।इनमें कुछ वर्ण आभिजात साहित्य के पास नहीं है या उसने उसे न देखा है न सुना है।इसलिए इस अकृत्रिम भाषा को इसकी कमज़ोरी बताकर इसे नकारने का प्रयास हमेशा होता रहा है। रामदरश मिश्र लिखते है " वे(दलित लेखक) जो लिख रहे हैं उसकी उसकी कमज़ोरी को भी साहित्य की एक नयी उपलब्धि मानकर, उसके मूल्यांकन का आधार खोजा जाय यह वांचित नहीं है। " [43]

दलित उपन्यासों में यह अकृत्रिम भाषा दलित जीवन की प्रामाणिकता देने केलिए अवश्य आयी है।दलितों के आपसी व्यवहार में प्रयुक्त इस भाषा को अश्लील माना जाय तो, साहित्य समाज का दर्पण वाली बात केवल ढींग मारने केलिए प्रयुक्त

शब्द बन जाएगा।'थमेगा नहीं विद्रोह' में चावली की कहानी उसके सार-भाग के कारण अप्रतिम है।चावली भंगी जाति की कन्या है।अपनी माँ के प्रकरण में उसने भंगन के जीवन का वर्णन किया है। " जिस मुहल्ले में मुँह अँधेरे ही टोकरा लेकर जो पूरे मुहल्ले की स्त्रियाँ,मुहल्लों मुहल्लों बामण, बनिया,कैद,रजपूतों के गू-मूत कमाने जाती हैं और टोकरों से रिस रिस कर गू मूत उनके ऊपर टपकता रहता है।गू-मूत की बास जिनके तन मन में इस प्रकार बस जाती है कि दुनिया की किसी साबुन में वह क्षमता और सामर्थ्य नहीं है कि तन को त्याग कर जाने को तैयार करे,उस मुहल्ले के वातावरण को बाबा हवन से साफ करता।"[44]

'आज बज़ार बंद है' उपन्यास पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक नियमों में भोग्या के रूप में निकृष्ट जीवन बितानेवाली नारी का सूक्षम अंकन है।कोठी में वेश्याओं को इंटरव्यू करने केलिए कुछ पत्रकार आये।उनके साथ आयी एक महिला पत्रकार उनसे शरीर बेचने का धंधा छोडने केलिए कहा। यह सुनकर दोनों वेश्याओं को घुस्सा आया।उनमें एक उस पर टूट पडी।" यह बतला तू,तेरी माँ ने नहीं कराया यह सब अगर वह अंदर नहीं कराती तो स्साली तू कैसे बाहर आती।"[45].अकृत्रिम भाषा कभी कभी सीमा लांघकर अश्लीलता की सीमा पर पहूँच जाती है।

ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी मिलता है।अंधविश्वास का विरोधी सरवन को फँसाने के लिए भगत और चौधरी ने अंधविश्वास की ही सहायता से भाई हंसा को वश में कर दिया।उन लोगों ने एक जाल में फँसाकर सरवन को जेल भेज दिया।जेल से सरवन बाहर आया तो भगत ने हंसा से कहा कि सरवन तुम्हें मारने केलिए आ रहा है।जोश में आनेवाला हंसा के मुंह से आनेवाले शब्द बिना किसी लाग लपेट के गाँव की अकृत्रिम भाषा है "अगर मैं असल मंगल पहलवान का पेशाब हूँ तो तुझे जिंदा न छोड़ूँगा।बच्चा अभी क्या,आगे तेल देख तेल की धार देख।"[46]

5.1.7. लोक भाषा

दलितों में अस्सी प्रतिशत लोग गांवों में रहते है।इसलिए सर्वाधिक दलित उपन्यास की कथावस्थु गाँव केंद्रीकृत है। इसलिए उपन्यासों में लोक भाषा या आंचलिक भाषा का प्रयोग ज्यादा मिलता है। ग्रामीण हृदय की टीस, पीडा तथा उल्लास को व्यक्त करनेवाले लोकगीतों का सार्थक प्रयोग उपन्यासों में किया है। अशिक्षित पात्र शुद्ध आँचलिक भाषा का प्रयोग करते हैं।औरतों की भाषा का स्वरूप शुद्ध आँचलिक है।विशुद्ध स्थानीय भाषा का प्रयोग किया है क्योंकि ऐसे पात्रों की संख्या उपन्यासों में अधिक है।

दलित साहित्य की भाषा नये मुहावरों में ढल रही है।इसमें देशज शब्द और मुहावरों को ज्यादा स्थान दिया गया है।साथ ही साथ पारंपरिक अर्थवाले शब्दों में व्यंजना का अलग तरह से संचार करके उनको नयी ध्वनियों में संपृक्त किया है। " रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।" [47]

लोक भाषा के विविध प्रयोग द्वारा नूतन भाषा संसार की रचना की है।अशिक्षित ग्रामीण लोगों की असंतुष्टी और व्यवस्थापित सामाजिक व्यवस्था को तोडने की लालसा उसके आक्रोश में दिखाई देता है। आँचलिक भाषा के मुहावरे और लोकोक्तियाँ के प्रयोग 'थमेगा नहीं विद्रोह' की भाषा को आँचलिक रंग में रंगकर प्रभावशाली बना दिया है। " में कै रिया था मास्टर साहब जी,म्हारे या छोटा कू भी अपने स्कूल में दाखिला चइय्यै।" [48]

5.1.8. व्यंग्यात्मक भाषा

'थमेगा नहीं विद्रोह' में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों को आमने सामने रखकर उसका विश्लेषण किया है।इस संदर्भ पर भाषा आक्रात्मक साथ ही साथ

व्यंग्यात्मक भी हो गयी है।हर संस्कृति के दो पहलु है।अक्सर ऐसा देखा गया है कि भारतीय संस्कृति के सामने पाश्चात्य संस्कृति को नीचे दिखाने की कोशिश होता रहा है ।इस उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाईंयों और भारतीय संस्कृति और दर्शनों के खोखलेपन को दिखाया है।जिसे अक्सर ढकने की कोशिश करता आया है।भारतीय संस्कृति की महानता के बारे में कहते है कि यहाँ इतना आदर कि इतना आदर तो क्या,पत्थर भी पूजे जाते हैं।इसपर तीखा व्यंग्य चावली करती है- " इस पर जीते जाते मानवों के प्रति ऐसे घृणा कि परछाईं भी पड जाए तो स्नान करना पडे।जिन पत्थरों में चेतना नहीं जिन्हें भूख नहीं लगती है न प्यास,जिन्हें ढाँपने केलिए कपडों की आवश्यकता नहीं सिर छुपाने केलिए छत की उन्हें लाखों रूपयों की मंदिर,ओढने - पहनने केलिए हजारों लाखों कपडों,हीरों मोतियों और खाने केलिए चारों वक्त मिठाईयाँ।जिन्हें इसकी आवश्यकता है वे अधनंगे,भूखे होकर दर दर भटक रहे हैं।"[49]

सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य दलित उपन्यासों में मिलते हैं।हाशिएकृतों का जीवन नारकीय है।समय समय पर बनाए गये मानवीय नियमों ने उनके जीवन को जानवरों की तरह बना दिया।मानव को बहुत ही मामूली दर्जा देनेवाली इस निष्ठुरता पर करारा व्यंग्य इन उपन्यासों में मिलता है।नारी के शारीरिक शोषण के धार्मिक आधार पर व्यंग्यात्मक प्रहार आज बाजार बंद है में किया है। " विराट आध्यात्मिकता और देह से बनते उनके रिश्ते।धर्म उनकी रास लीला में कहीं आड नहीं आता था। ऋषियों मुनियों तक यही सब तो होता रहा है।फिर उनकी संतानें पीछे कैसे रहे ।"[50]

दलित उत्पीडन और उसकी मानसिक दशा का चित्रण बडी सूक्षमता से उभर कर आयी भाषा बहुत ही गंभीर है।हर एक शब्द गहरा अर्थ लिए हुए है।हिंदु धर्म पर

करारा व्यंग्य करते हुए चावली कहती है हिंदू धर्म में इंसान नहीं जन्म लेते, बामण, रजपूत, बनिया, कैथ,नाई,धोबी,खाती, चमार,चूहडे,इत्यादि जन्म लेते हैं।

सामाजिक विसंगतियों के चित्रण में उनकी भाषा सख्त हो गयी है।आदिवासी जीवन की अकिंचनता का वर्णन करते हुए विराट कहते है कि—" उच्च धनाढ्य औरतें और लडकियाँ अपना जिस्म अधिक से अधिक दिखाने केलिए कम से कम कपडे पहनती हैं,आदिवासी लडकियां व औरतें के पास कपडा न होने से जिस्म अपने आप दिखता है।"[51] नारी हक केलिए कानून तो बहुत सारे बने है।लेकिन वे बस कागजो में ही है,रोजमरा जिंदगी में इनका लाभ उसे नहीं मिलता।'औरतों के हित में कानून कितने ही बने,दर हकीकत बेअसर है औरत की जिंदगी '। मोहनदास नैमिशराय का यह शब्द औरतों की हालत को,उनकी बेबसी को व्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम है।

वेश्याओं की भाषा बहुत तीखी है।फिर भी शबनम बाई और उनके कोठी के लोगों की भाषा में कुछ अदब बरी है।अपनी कोठी में आये पत्रकारों को पानी पीने की अनुरोध पर ना नुक्कर करनेवालों से वह कहती हैं — " देखिए इन कोठों पर जो भी आता है, हमें उनकी प्यास बुझानी ही पडती।"[52] बात सीधी सी लगने पर भी तीखी है।इस उपन्यास में व्यंग का पुट ज्यादा मिलता है। वेश्याओं की हालत के चित्रण के समय यह और तीखी होती दिखाई देता है।

डंक में सोनकर जी ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है।भारतीय समाज,वर्ण व्यवस्था,रीति रिवाज़ सब पर जगह जगह पर व्यंग्य किया गया है। भारतीय गाँवों का वर्णन करते हुए वह कहते है गाँव में गरीबी तांडव नृत्य करती है तो शहरों में गरीबी भरत नाट्यम कर रही है।सब कहीं अमीर सुखी है।गरीब उसके पैरों के नीछे कुचल रहे हैं।

सवर्णों की योग्यता पर ढींग मारनेवाले प्रो.दत्त से शिवदास कहते है- " क्यों प्रशासनिक प्रणालियाँ व अन्य प्रणालियाँ पंगु बनी हुई है।देश के करोडों मंदिरों पर शैवायत,पूजारी और मठाधीश के रूप में स्वयंभू योग्य,दक्ष वर्गों का निश्चित लोगों का कब्जा है...क्यों नहीं ईश्वर से अनुरोध करके व्यवस्था ठीक करा देते।अब या तो ईश्वर में ऐसा करने की क्षमता नहीं है या फिर उसके पूजारी योग्य व दक्ष नहीं है। "
53

अयोग्य व्यक्ति सेवा में भर्ती होने के खतरा का जवाब देते हुए शिवदास करता है पुजारी भगवान और इंसान के बीच में माध्यम होता है।अब अगर वह योग्य नहीं है तो हमारी साधना ,उपासना और ईश्वर के निमित्त भेंट पूजा व्यर्थ जाएगी क्योंकि पुजारी योग्यता और दक्षता के अभाव में हमारा दूरभाष भगवान के बजाय शैतान से मिला देगा।और भारी अनर्थ हो जाएगा लेने के देने पड़ जाएँगे।भारतीय बात बात पर ईश्वर के पास दौडते है ।लेकिन इसके बारे में कतई नहीं सोचते कि पूजारी इसकेलिए योग्य है या नहीं। वर्ण व्यवस्था की बातों पर कोई सवर्ण आपत्ति नहीं उठाता ।क्योंकि वह उनके हित में है।

गुरू जाति को हमेश हमेशा केलिए कालिख पोतने वाले द्रोण को घृणा करने के बजाय उनके नाम पर राष्ट्रीय प्रतिभाओं को पुरस्कार देना असल में प्रतिभाओं का अपमान है।सवर्ण जाति के गुरू नीच काम करने से वह नीच न बनकर श्रेष्ठता की कसौटी बनना शायद दुनिया भर में भारत में ही मिलेगा।क्यों कि भारत वैविध्य और विडंबनाओं का देश है।

विरोध को व्यंग्यात्मक लहेज में कहने की अद्भुत कला ने प्रस्तुति को गंभीर और पैना बना दिया है। नारी सम्मान की बडी बातें करने वाले देश में नारी भ्रूण हत्या की बात तो आम हो गयी है। इस पर तीखा प्रहार 'सुअरदान' में मिलता है।

देश हो या विदेश कहीं भी अब एक लडकी के साथ चार लडकों की शादी एक साथ करने की मान्यता नहीं है। 'सुअरदान' में हेरी सिल्वा से चार पार्टनरों की शादी की होने की बात का गपशप गाँव में फैलाकर उपन्यासकार ने आगामी भारत की समस्या पर विचार किया है। लडकी को बोझ मानकर जनम लेने से पहले ही हत्या करने से भारत लडकियों केलिए तरसेंगे और शादी करने केलिए विदेश से लडकियों को लाना पडेगा।वह भी चार केलिए एक के हिसाब से।

'थमेगा नहीं विद्रोह' में गाँव के गरीब किसान के डरावना जीवन को भगमली की कहानी में प्रस्तुत करते में समय भाषा आक्रात्मक रूप में व्यंग्यात्मक हो गयी है।" मेरी माँ,और मेरी ही क्या जाटवाडे की औरतें बच्चे जनती रहें,कि हर जन्मे बच्चे को माँ उन्हें अपने कलेजे का दूध पिलाकर,अपने पेट की रोटी देकर जवान करे कि वह गूजरों के खेत घर में एक अच्छा कमाऊ बेगारी करनेवाला मज़दूर बने।,कि बगारी करते करते वह तपेदिक का रोगी होकर मर जाए,और मरने से पूर्व चार छह और मज़दूर पैदाकर जाए।" [54]

नारी की पूजा करनेवाले देश में नारी को भोग्या बनाने की रीति रिवाज है। उसका कट्टर पालन भी किया जा रहा है। देश में कितनी भी संस्कृतियाँ है वे सब पुरुषों को कंद्र में रखकर बनायी गई है ।लेकिन सिर्फ पुरुष केलिए बनायी गयी एक ही संस्कृति है,वह है सनातन भारतीय संस्कृति ।नारी को देवदासी बनाकर इच्छानुसार भोगने केलिए समाजिक व्यवस्था बनायी थी ।दलित उपन्यासकारों ने इस व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है ।दलित समाज की कोई भी लडकी देवदासी न बने तब वह नाराज़ हो जाते थे।देवदासी को विवाह करने की मनाही थी,पर देवदासी के साथ दस दस लोग संभोग करें,न पत्थर के देवताओं को एतराज था न मानव देवताओं को।

5.1.9. मुहावरेदार भाषा

लोक भाषा की अछूती उपमाओं ने दलित उपन्यासों को नयी छटा प्रदान की है। मुक्ति पर्व में पालकी उठानेवाले कमेरों की स्थिति के बारे में कहते हैं " कंधे छिल जाते,पर उफ गे प करते।नंगे पाँव पैदल चलते चलते छाले पड़ जाते, पर वे सरपट घोडे की तरह दौड़ते रहते।" [55] मारने पीटने में उन्हें ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती ,वे अपनी रियाया समझते थे।जैसे खूँटे से जानवर को बाँध दिया वैसे थी दलितों आदमी को भी। "पानी में रहना है तो मगरमच्छ से बैर मत करना।" [56]

" बिल्ली जिस दिन पहली बार हाँडी में मुँह डाले उसी दिन इलाज होना चाहिए क्यों कि मर्ज से बडकर पक जाने पर औषधियाँ असर करना बंद कर देती है।" [57] आदि संवादों में लोक भाषा की उपमा और मुहावरे भाषा की नयी अर्थ क्षमता को प्रकट करते हैं।

. शहरों से ज्यादा गाँवों दलित उत्पीडन होता है।दलितों को गाँवों में सफेद कपड़े पहनने नहीं देते थे। सवर्ण लाठी मार मार कर कमर तोड देते थे।लेकिन यह बात सवर्णों में ही नहीं दलित भी अपने से छोटी जाति के साथ करता है।मुहावरे दार शैली में अजय नावरिया उधर के लोग में अपने पात्रों से कहलवाते है काहे हाय कास्ट...जिसकी लाठी,उसकी भैंस।

दलित साहित्य की भाषा नये मुहावरों में ढल रही है।इसमें देशज शब्द और मुहावरों को ज्यादा स्थान दिया गया है।साथ ही साथ पारंपरिक अर्थवाले शब्दों में व्यंजना का अलग तरह से संचार करके उनको नयी ध्वनियों में संपृक्त किया है।

5.1.10. काव्यात्मक भाषा

दलित उपन्यासों में प्रेम जैसी कोमल भावनाओं को उतना स्थान नहीं दिया है जितना मुख्य धारा साहित्य में दिया जाता है।फिर भी प्रेम भी इससे अछूता नहीं रहा है।क्रांति की भावना से यद्यपि वह उतना नहीं उभर पाया है,फिर भी प्रेम अपने अनूठे रंग में इसमें उभर कर आया है।'थमेगा नहीं विद्रोह' में प्रेम का तीव्र रूप खाला के निशब्द प्रेम के रूप में दिखाया है।प्रेम प्रसंग में भाषा की लाक्षणिकता का सुंदर प्रयोग दलित उपन्यासकारों ने भी किया है।

'जस तस भई सवेर' में शिवदास सुमेधा से कॉलिज के दिनों में ही प्यार करता है। लेकिन अपनी गरीबी के कारण वह प्यार का इज़हार नहीं कर पाते।बरसों के बाद अपना प्यार जताना चाहता है तो सुमेधा उसे सुनने केलिए भी तैयार नहीं होती।इस संदर्भ में भाषा कुछ काव्यात्मक दिखाई देती है- " लोहे की खंबे मोडना सरल है पर्वत विजय आसान है,नदी के रुख मोडना भी आसान है,तूफानों का रास्ता रोकना भी दुष्कर नहीं है।वीरों को तो मृत्यु विजय भी असंभव नहीं है किन्तु प्रेमिका विशेषकर रूढी प्रेमिका के आदेश रूपी अनुरोध को ठुकराना सर्वथा दुष्कर कार्य है।" [58]

'डंक' उपन्यास में लाक्षणिक प्रयोग मिलता है।गाँव का मेहतर परिवार जब भंगी का काम छोडने का निर्णय लेता है तो सवर्ण पूरी तरह फँस गये ।इस आशय को व्यक्त करने केलिए रूपनारायण बहुत ही सुंदर शब्दों का प्रयोग किया है। " एक ओर गुलामी की बेडियाँ कटती जा रही थीं, दूसरी ओर वही बेडियाँ गुलाम बनानेवालों के हाथ में जकडती जा रही थी।एक ओर बीमारी दूर होती जा रही थी।दूसरी ओर बढती जा रही थी। " [59]

'छप्पर' में कमला चंदन के बीच एक मानसिक लगाव है।लेकिन वे इसका जिक्र कभी एक दूसरे से नहीं करते।लेकिन जब कमला को मालूम होता है कि ठाकुर

की बेटी रजनी उसके माँ बाप की सेवा गाँव में चंदन की अनुपस्थिति में करती रही तो वह रजनी केलिए चंदन को छोडने केलिए तैयार होती है।" बचपन से लेकर अब तक तुम्हारी भावनाओं के साथ जुड़ रही है वह,और उन्हीं के अनुरूप जीति रही है बाबू साहब।तुम्हारे जीवन के सफर की सहयात्री है रजनी।जहाँ तक मेरा सवाल है,सफर का एक पड़ाव भर हूँ मैं तो।और केवल इतना ही महत्व होता है पड़ाव का कि थोडी देर केलिए यात्री वहाँ ठहरे,विश्राम करे और पुनः तल दे अपने पथ पर।लेकिन सहयात्री साथ साथ चलता है-अन्तिम पड़ाव तक।" [60]

'आज बाज़ार बंद' है की भाषा एक शायरी शैली की है। 'आज शायर की गजल जैसी उनकी आँखों में रहस्यपूर्ण मुस्कान थी' जैसी बहुत सारी पंक्तियाँ 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में मिलती हैं। "औरत के शरीर को खोलनेवाले बहुत होते हैं, पर औरत के ज़ार बमन को पढने तथा महसूस करनेवाले कम होते हैं।" [61] औरत लाख चाहे पुरुष से नफरत करें,पर पुरुष की मौजूदगी उनके बीच सम्मोहन की स्थिति भी पैदा करती है।यह एक बहैदा करती है।यह एक बहुत बडा सच है।नारी पुरुष का साथ चाहती है ।नारी चाहे कितनी ही कठोर हो पर पुरुष के प्यार में वह अपने आप को पूरी तरह समर्पण करती है ।नारी पुरुष की तरह नहीं है, वह अंदर ही अंदर पुरुष का साथ चाहती है।बदनाम गली के औरत सभी बुरी नहीं है।बाहर से जो कुछ दिखता है वह सब सही नहीं है।

प्रभावशाली शब्द और वाक्यों के प्रयोगों का भरमार दलित उपन्यासों में है।" अभी आराम करने की उम्र नहीं है मेरी। सांच में आंच क्या।"[62] "सच्चाई को कोई नहीं परखते हैं।शमी सच्चाई जल्दी नहीं उभरती।जब हम इस संसार से विदा हो जाएगी तब सच्चाई उभरेगी।पार्वती समंदर बनकर मत रहो,नदी बनो कल कल करती नदी,गीत गाती स्वयं भीगती और दूसरों को भी भिगोती।"[63]

काव्यात्मकता बातों को प्रभावशाली बनाने के साथ भावों की भूमि तक पाठकों को ले जाती है।" रात के अंधेरे में टकराने वाले भेडिये न थे वे बल्कि दिन के उजाले में रँगे सियार थे।गेंडे की खाल पहनकर वे दलितों पर तरह तरह से हमला करते थे। मानसिक रूप में उन्हें मास्टर जी ने भी तो उनपर हमला ही किया था। शरीर पर न सही मन को तो कुरेद कुरेद कर लहु-लुहान कर दिया था बाप बेटे दोनों का।" [64] ये पंक्तियाँ आगे आने केलिए कोशिश कर रहे दलितों को सवर्णों से मिलनेवाले तिरस्कार को काव्यात्मक भाषा में व्यक्त करती हैं।

'आज बाज़ार बंद है' में मुम्ताज़ शबनम बाई की कोठे की वेश्या है। उसका परिचय देते हुए प्रयुक्त शब्द सुंदर है। अब रह गयी मुम्ताज़। मुमताज़ का ताज़महल यही है।रात चाँदनी हो अँधेरी,लोग इस ताज़महल पर दस्तक ज़रूर देते हैं।ग्राहकों को मालूम है यहाँ कोई न कोई मुमताज महल ज़रूर मिलेगी। " वे औरतें जरूर थीं,पर रंडियाँ थी। उनके कोई बाप,भाई,मामा या फूफा उनकी चौकसी नहीं करते थे। वे लावारिस थी, पिंजरों में रहती थीं। उन पर सभी का हक था।उनके अंगों को छेडने और सहलाने पर कोई पाबंदी नहीं थी। " [65]

5.1.11. मिथकीय भाषा

दलित उपन्यायों की भाषा के मूल में गवेषणपरता है।पुराणों और वेदों के आधार पर भारतीय समाज में प्रचलित कहानियों के सत्य को खोज निकालना इसका प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय भाषा और भारतीय साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का नए अर्थ में दलित उपन्यासों में प्रयुक्त हुआ है।काली,चण्डी,दुर्गा आदि देवताओं को भारतीय संस्कृति के अनुसार आर्य देवियाँ मानी गयी हैं। दलित उपन्यासों में इन्हें दलित देवियाँ मानी गयी है।इसका तर्क भी वह देता है।सुअरदान में अपनी इज्जत पर हाथ रखनेवाले ठाकुर से सुनयना कहती है कि काली,चण्डी दुर्गा का मैं रूप हूँ।दुर्गा,काली

और चण्डी दलित महिलाएँ थी।वे सभी महिलाएँ थी, ।जो भी कामुक,व दुराचारी व्यक्ति उनके पास गया था उन्हें काटकाटकर मार डालती थी।

सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने केलिए और समाज में सवर्णों की श्रेष्ठता को बनाए रखने केलिए कुछ मिथकों का रूपायन किया था।इनमें दलितों को दुष्ट,क्रूर और पापी रूप में चित्रित किया है।दलित चरित्र पर पडे इस झूठे पर्दे को हटाने की कोशिश दलित उपन्यासों में की है ।सवर्ण दृष्टिकोण पर गाढे गये दलित मिथकों की पुनर्व्याख्या करने के साथ साथ व्यवथापित नियमों के पोल खोलने का प्रयास भी किया है। एक ही पिता से जन्म लेने पर भी सवर्ण स्त्री से जन्म लेने के कारण जन्मांध धृतराष्ट्र का राजा बनना स्वीकार किया जाता है।लेकिन योग्य दक्ष होने पर भी दासी पुत्र होने के कारण विदुर को सिंहासन से दूर रखा जाता है ।द्रोण ने एकलव्य को विद्या देने से इनकार कर दिया।फिर भी एकलव्य अथक परिश्रम से स्वयं विद्या सीख ली तो गुरू ने प्रशंसा करने के बजाय उससे गुरू दक्षिणा के रूप में उसका अंगूठा ही काटकर उसे सदा केलिए विकलांग बना दिया।

'सुअदान' में ऐतिहासिक मिथकों का प्रयोग किया है। सत्यनारायण त्रिपाठी दलित लडकी सुनयना को रखैल बनाकर अपने घर में बंध करके रखता है। सुंदर चीजों को भोगने के सवर्णों के अधिकार पर एतरानेवाले त्रिपाठी से वह कहती है— दलित लडकियाँ कमज़ोर नहीं होती है ।वे वीरांगना झलकारी बाई की संतानें है ।1857 की क्रांति में राणी लक्ष्मी बाई के साथ उसके वेष में अंग्रेजों से लडनेवाली वीरांगना थी झलकारी बाई ।लेकिन इतिहासकारों ने उसे भी लक्षी बाई ही कहा।उसका नाम इतिहास के पन्ने में कहीं भी स्थान नहीं पाया।

शंबुक को नए अर्थ में दलित उपन्यासों में प्रयुक्त किया है। "महर्षी शंबुक चोरी डकैती अथवा परस्त्रीगमन करते नहीं मारे गये थे और न ही वाशिष्ठ एवं

दीर्घात्मा जैसे ऋषियों की भाँति वीर्यदान करना उनका व्यवसाय था।उन्हें तो तपस्या करते हुए कथित मर्यादा पालक अयोध्यापति राजा राम चन्द्र ने मारा था। "[66] शंबुक शोषितों अछूतों, स्त्रियों,दासों की शिक्षा और अधिकार विहीनों को अधिकार देने की बात करते थे।

शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार से घिनघिनीपन आ गया है। प्राचीन काल से ही मंदिर जैसे पवित्र माननेवाले शिक्षा के क्षेत्र ब्राहमणवाद के कारण उसकी पवित्रता विवादास्पद रही है। आज की स्थिति भी इससे कुछ भिन्न नहीं है।एकलव्य और द्रोण के प्रतीक को लेकर नैमिशराय ने इसे मुक्ति पर्व में व्यक्त किया है। "इस स्कूल में न कोई पाण्डे थे न पण्डा मास्टरजी थे।पर स्कूल में जितने अध्यापक थे,उनमें अधिकांश द्रोणाचार्य के ही वंशज थे,जिनकी एकलव्य को शिष्य बनाने में रुचि नहीं थी,बल्कि उसकी अँगूठी काटने में दिलचस्पी थी। "[67] सवर्ण अध्यापक दलित छात्रों को पढने में कोई मदद नहीं करता ।लेकिन यदि वह अकेले पढकर बढ रहे है तो उसका रास्ता काटने केलिए कोई कसर नहीं छोडता।

. 'तुम्हें बदलना ही होगा' में होलिका दहन के पीछे की सच्चाई के बारे में महिमा अपनी छात्रा से कहती है।" होलिका एक अनार्य स्त्री थी। वह बहुत ताकतवर और अनेक गुणों से संपन्न थी। आर्य लोग उसे मार देना चाहते थे। मगर उसे मार देना आसान नहीं था।तब उन्होंने यह षडयंत्र किया कि उसी के भाई की सहमति से उसे आग में जला दिया।दलित जाति के लोगों केलिए यह खुशी का नहीं,दुख का दिन है। इसे हम लोगें को समझना चाहिए।"[68]

एकलव्य दलित साहित्य में एक मिथक है।शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त सनातनी ब्राहमण सोच का एक मिथक।भारतीय संस्कृति में गुरू शिष्य संबंध को सबसे बडा अनुपम रिश्ता माना गया।इसके अनुसार गुरू शिष्य को अपना बेटा ही मानते हैं वे

यही चाहता है कि शिष्य अपने से ज़्यादा प्रसिद्ध हो जाय।लेकिन दलितों के मामले में यह विशाल दृष्टिकोण अति संकरा हो जाता है। दलित शिष्य को वे शिष्य ही नहीं मानते ।उनके शब्दों में ये अपना काम छोडकर आये नौकर है।उनकी विशाल मानसिकता कहीं छूट जाते,रह जाते है सिर्फ ब्राहमण।द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अंगूठा इसलिए माँगा कि धनुर्विद्या में वह और भी प्रवीण न हो जाए।क्या ध्रोणाचार्य गुरू होकर भी यह नहीं चाहते थे कि एकलव्य जैसा शिष्य उतनी प्रगति न करे कि उसके अपने शिष्य पीछे रह जाएँ।

5.2. दलित उपन्यास की शैलियाँ

दलित उपन्यासों में उपन्यासकार हाशिएकृतों की पीडाओं और संवेदनाओं को विशिष्ट शैली,नए अर्थों,संकेतों, बिंबों,प्रतीकों तथा मिथकों को प्रस्तुत कियाहै।दलित उपन्यास में शैली कथन शैली है,सपाट बयानी,वर्णनात्मक शैली,चेतना प्रवाह शैली,आत्मकथात्मक शैली।

5.2.1. वर्णनात्मक शैली

चरित्र चित्रण,रुचियाँ,अरुचियाँ,संस्कार और घटनाओं के वर्णन पर कथा का पूरा प्रभाव टिका होता है।स्पष्टता और स्वाभाविकता से इनमें सजीवता उत्पन्न होती है।वर्णनात्मकता की मार्मिकता के आधार पर रचना पाठक के मन में प्रभाव डालती है।

दलित उपन्यासों में वर्णऩात्मक शैली का प्रयोग ज्यादात्तर किया गया है।दलित उत्पीडन, शोषण का विद्रोह,अस्मिता की तलाश आदि वर्णनात्मक शैली के माध्यम सहजता से उकेरा है।दलितों द्वारा अपने पैतृक धंधा न करने के फैसला करने पर सवर्णों के जीवन में आनेवाले परिवर्तन का वर्णन सुंदर ढंग से डंक में

प्रस्तुत किया है।"मजबूरीवश सवर्णों के स्त्री पुरुष,बच्चे बाल्टियों में अपने घरों का सड रहा मैला मिट्टी के खपटों में भर भर कर बाल्टी में डाल रहे थे।कपडों से अपना मुंह बंद किये थे।जब उनके हाथों में और कपडों में मैला लग जाता था तो ऐसा बिचकते थे जैसे बैल के शरीर में लोहे के नुकीली अरई चुभा दी गयी हो।कुछ औरतें कैं करने लगी,कुछ बेहोश हो गयीं।कुछ पुरुष मैला देखकर ही उल्टी करने लगे।" [69]

गाँव,परिवेश,दलित बस्ती वहाँ के जीवन सबका सामान्य वर्णन हुआ है।नीला आकाश का रचनात्मक विकास वर्णन शैली में हुआ है- " कन्हान महाराष्ट्र का एक गांव है।यहाँ की संस्कृति और परंपरा एँ देश के अन्य शहरों और गाँवों जैसी ही हैं। सदियों से चली आ रही सामाजिक भेद भाव और छुआछूत की परंपराएँ यहाँ भी हैं।पूरा गाँव वर्ण और जाति के अनुसार अलग अलग मोहल्लों में बँटा है।,बनिया ब्राह्मण,तेली कुनबी सबकी अलग अलग बस्तियाँ है।इन सबकी स्तियों से दूर,गाँव के बाहर नाले के किनारे अछूत जाति के घर है। "[70] दलित जीवन से जुडी हर छोटी छोटी बातों की ओर इसमें इशारा किया है।दलितों को शौच्य करने केलिए घर में शौचालय का बंधोबस्त नहीं है।वह बाहर जंगलों में शौच्य करने केलिए जाते है।जंगल में तालाब भी होते है हरियाली भी।असल में यह घने जंगल नहीं होते झाडियों वाला एक मैदान होता है। लेकिन शहर के लोग इसे लुगाई हगन हट के नाम से पुकारते हैं।

दलित उत्पीड़न के प्रभावात्मक चित्रण केलिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग मोहनदास नैमिशराय ने अपनाया है।बंसी नवाब की हवेली में काम करता है।कमर तोडकर काम करने पर भी उसे तिरस्कार और अपमान के सिवा वहाँ से कुछ नहीं मिलता।" ढेर सारी खकार बंसी की हथेली पर उगल दी गयी थी।नवाब साहब केलिए वही उगलदान था और वही पीक दान।बंसी की आँखों में आंसू बर आये थे,पर मुँह से

उर्फ तक नहीं की थी उसने।वैले ही हथेली पर बलगम लिए वह बैठखाने के बाहर आ गया था।उसके भीतर अँधड तूफान था।बाहर से वह बिलकुल सहज।" [71]

सभी दलित उपन्यासकारों ने इस शैली का उपयोग किया है लेकिन रूपनारायण सोनकर जी ने इस शैली का उपयोग ज्यादात्तर किया है।सुअरदान उपन्यास वर्णनात्मक शैली में आगे बढता है।इसमें घटनाएँ कम है,उपन्यास की गती को वर्णनात्मकता ही निश्चय करती है " चारों पार्टनरों ने एक सौ पाँच नौजवानों की टीम बना रखी है,जो पूरे देश में भ्रमण करती है।उडीसा बीहार,उ.प्र,झारखण्ड,कलकत्ता व अन्य प्रदेशों में ऐसे लोगों की तलाश करती है जो पेट भरने केलिए मेंढक और चूहे खाते हैं।उनको पिगरी-फार्म में लाकर नौकरी देते हैं।यह वास्तव में काल्पनिक लोक नहीं है बल्कि पिगरी –लोक है।एक ऐसा व्यवसाय जिसके निर्यात से देश की आर्थिक स्थिति सुद्दढ हो सकती है।देश से गरीबी मिट सकती है।"[72]

वर्णनात्मक शैली की सुंदर योजना 'थमेगा नहीं विद्रोह' में मिलती है।एक आँचलिक उपन्यास के परिवेश में लिखा गया है "माटी की ईंट के घर,दीवार,छत है,जो बरस भर में होली दीपावली और अनिवार्यतः जेठ आषाठ के महीनों में,इससे पूर्व कि भादों में आकर अपना पानी का कुलाबा दुर्बल मकानों के ऊपर खुला छोड़े,मुकन्ना की काली चिकनी मिट्टी के गारे और भिसे के मिश्रण से ल्हिसाई और फिर उसके ऊपर भैंस के गोबर और लाल मिट्टी के गारे से लीपे जाते हैं।,कि मिट्टी के कच्ची दीवारों और छत्तों को इतनी शक्ति दिलाई जा सके कि भादों महीने की दानवी वर्षा से लड़ सकें।"[73]

सामाजिक आंदोलन से आये परिवर्तन को 'छप्पर' में विवरणात्मक शैली में प्रभावी ढंक से चित्रित किया है।"कल तक कभी जूतों की धूल से ज़्यादा नहीं समझा जिनके वजूद को ठाकुर साहब ने,आज गर्व से सिर उठाकर चलते उन लोगों का कैसे

सामना करते वह कैसे नज़र मिलाते उनसे,स्थिति बदल गयी थी एकदम से।कल तक ठाकुर साहब को रास्ते में आते देख जो लोग स्वयं ही एक ओर हट जाते थे रास्ते से आज उन्हीं लोगों से स्वयं बचकर –कतराकर निकलने लगे ठाकुर साहब।" [74]

दलितों के शोषण के चित्रण करने केलिए प्रमुख रूप से विवरणात्मक शैली के प्रयोग सभी उपन्यासों में किया है।दलित बच्चों को पढाना सवर्ण अध्यापक नहीं चाहते।उनके मन में हमेशा यह भय रहता है कि दलित शिक्षित होने से उन्हें बेगारी करने केलिए नौकर नहीं मिलेगा।इसलिए वह दलित बच्चों की पढाई की ओर कोई ध्यान नहीं देता।नीला आकाश में भीकूजी पढना चाहकर भी पढ नही पाया इसलिए वह अपने बच्चों को पढाने केलिए स्कूल भेजा।लेकिन वहाँ उन्हें तिरस्कार और अपमान के अलावा कुछ नहीं मिला।" मास्टरजी ब्लाक बोर्ड पर वर्णमाला के अक्षर और गिनती लिख देते।बच्चे उन्हें जोर से पढते हुए अपने स्लेट पर लिखते।सबसे पीछे बैठी सीती और राधा को न कुछ दिखाई देता न कुछ समझ में आता।वे छुपछाप अपनी स्लेट पर आडी तिरछी लकीर बनाती ।उनकी स्लेटपट्टी कोई नहीं देखता।वे भी मास्टरजी से कुछ नहीं पूछतीं।कभी कभी खाना खाने की छुट्टी में ही अपना बस्ता लेकर वे घर आ जातीं।"[75]

5.2.2. विश्लेषणात्मक शैली

'मुक्ति पर्व' में विश्लेषणात्मक शैली की सुंदर अभिव्यक्ति हुई।दलितों की उपेक्षित स्थिति का चित्रण विश्लेषणात्मक शैली में हुआ है।"दलित समाज के लोग जहाँ भी थे हाशिये पर थे।गांव हो या शहर उनकी बस्तियाँ शेष समाज से अलग थलग ही होती थी।उनके घर अलग से पहचाने जाते थे।उनका व्यवसाय दूसरों से अलग था।वे जितना अपने आप को ढोते उतना ही गुलामी को भी।इसलिए उनके भीतर जैसे घाव होते है वैसे ही बाहर भी दिखलाई देते।वे अपने घावो को जितना भी

इलाज करते,नए घाव उतने ही हो जाते।उन्हें इतिहास से काटकर रख दिया गया था।अब वर्तमान से भी काटने का प्रयास हो रहे थे,पर इतिहास से काटकर अलग रख देने में जितनी सफलता नहीं मिल पा रही थी।"[76]

दलित उपन्यास का लक्ष्य हाशियेकृत लोगों में जागरण लाना है।भारतीय समाज में नारी और दलित सदियों से कुछ झूठी मान्यताओं के वहम में जी रहे हैं।'तुम्हें बदलना ही होगा' में नारी सबलीकरण पर विश्लेषणात्मक ढंग से विचार किया है।नारी सबलीकरण की सभा में धीरज कुमार कहते हैं-"जब नारी सबल हो जाएँगी,तब वह स्वयं तैय करेंगी कि उन्हें शादी करनी है या नहीं,शादी कब करनी है।किसके साथ करनी है और किसके साथ नहीं।शादी के बाद उसे बच्चा चाहिए तो कितने चाहिए।इसका फैसला वह स्वयं करेंगी।क्या आप नहीं जानते,पुत्र न होने पर समाज में परिवार में,उनपर कितने जुल्म किये जाते हैं।एक पुत्र की प्रतीक्षा में 5-7-9 चाहे जितनी पुत्री संतान की माँ उन्हें बनना पडता है।लडकियाँ ही हो पुत्र न हों, तब उनका पति अपनी बेटियों और पत्नि की जिम्मेदारी भूलकर,पुत्र पाने केलिए दूसरा विवाह कर लेता है।क्या यह महिलाओं पर अन्याय नहीं है।"[77]

वेश्याएँ भारतीय संस्कृति की एक विकृत परिच्छेद है। 'आज बाज़ार बंद है' में भारतीय धार्मिक संस्कृति से चिपटे हुए नारी के वेश्या रूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। विश्लेषणात्मक शैली प्रमुख रूप से व्यक्तिवादी उपन्यासों में पायी जाती है। 'आज बाजार बंद है' व्यक्ति वादी उपन्यास नहीं है फिर भी इसमें नारी के वेश्या बनने की परिस्थितियों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

5.2.3. फ्लाश बॉक शैली

थमेगा नहीं विद्रोह' में चावली की कथा फ्लाश बैक शैली में लिखी गयी है। जो चावली खुद उपन्यासकार से कह रही है। चावली दरियाव से यह कहानी एक दिन

में नहीं कई रातों में कहती।पूरी कहानी कहने में बहुत रातें लग जाती हैं। चावली बहुत ही तेज और गस्सालू है।रात में दारू पीते बैठते वक्त वह बहुत शांत रहती है। दरियाव रात में आते हैं। चावली की एक नीरसमयी जिंदगी में एक बेटे के सहेरे के रूप में वह आया। दरियाव एक कहानी लिखने केलिए प्लॉट ढूँढ कर उसके पास पहूँच गया था। शाम बीतते ही शराब की बोतल खोलकर बैठनेवाली चावली के पास गाँव के बहुत से रहस्यों का खजाना है। लेकिन चावली इन रोजों को खोलने केलिए तैयार नहीं होता। लेकिन अपनी कहानी कह देती है ।

'थमेगा नहीं विद्रोह' की सशक्त नारी पात्रें है चावली और भागमली। भागमली भारतीय सामाजिक नियमों में बली चढाई गयी नारी का प्रतीक है तो चावली जीवन के कठिन परीक्षाओं को तैर कर सशक्त बनने वाली नारी की प्रतीक है। नारी का जो रूप भागमली में दिखाई देता है उस का विकसित रूप चावली में दिखाई देता है ।भागमली परिस्थितियों से जल्द ही पराजित हो जाती है तो चावली हार मारने केलिए तैयार नहीं होती। हाथों में हाथ रखकर अपनी नियति को देखती रहती है।

'छप्पर' में सुक्खा लगान नहीं दे पाता।ठाकुर साहब को खुशामद करके बेदखली से बचने का सुझाव रमिया देती है।यह सुक्खा को अतीत की ओर ले जाता है।" जैसे किसी ज़हरीली सर्प ने डस लिया सुख्का को।क्या कहा...ठाकुर साहब के पास।भूल गयी क्या....और अतीत उसके आँखों के सामने घूम गया।" [78] इस उपन्यास का प्रमुख पात्र कमला और हरिया का अतीत भी पूर्वदीप्त शैली के द्वारा ही उद्घाडित किया है। कमला ने चंदन को अपनी आपबीती बतायी थी।

5.2.4. लाक्षणिक शैली

बात को सीधे न कह कर लक्षणा शक्ति के द्वारा कहने की शैली को लाक्षणिक शैली कहते हैं।दलित उपन्यास में दलित जीवन,शोषण,मानसिक संघर्ष,नारी

जीवन की त्रासदी को प्रभाव पूर्ण ढंग से चित्रित करने केलिए लाक्षणिक शैली का सहारा लिया है।सुमित पार्वती के मन में मुक्ति की आशा डालते हुए कहता है- " पार्वती समंदर बनकर मत रहो,नदी बनो कल कल करती नदी,गीत गाती स्वयं भीगती और दूसरों को भी भिगोती।"[79] इन शब्दों में अभिशप्त जीवन से मुक्त होकर खुशी के साथ जीने का संदेश है।

बंधुआ मजदूरों के संदर्भ में भाषा उपमा युक्त हो गयी है स्वार्थ सिद्ध और मानव मुक्ति का द्वन्द्व हमेशा चलता रहता है।स्वार्थी मानव के सामने कमजोर,असहाय मानव सदैव हारता है।आसमान से जैसे ही ओले बरसते हैं तो हरा भरा पेड उज़ड जाता है।उसी तरह बंधक मानव पत्ती -फल विहीन ठूणठ की तरह होता है ।इसमें दोबारा पत्तियाँ और फल नहीं उगते।'आज बाजार बंद है' में लाक्षणिक शैली का बहुत प्रभाव मिलता है।पूरे उपन्यास में यह शैली छाई रहती है।

कोठों के अभिशप्त नारी जीवन के चित्रण केलिए नैमिशराय ने लाक्षणिकता को ही अपनाया था। क्योंकि लाक्षणिकता से कम शब्दों में भावों को संवेद्य कर सकते है।आज बाज़ार बंद है में मुम्ताज़ शबनम बाई की कोठे की वेश्या है।उसका परिचय देते हुए प्रयुक्त शब्द सुंदर है।"अब रह गयी मुम्ताज़।मुमताज़ का ताज़महल यही है।रात चाँदनी हो अँधेरी,लोग इस ताज़महल पर दस्तक ज़रूर देते हैं।ग्राहकों को मालूम है यहाँ कोई न कोई मुमताज महल ज़रूर मिलेगी।"[80]

5.2.5. चेतना प्रवाह शैली

'मुक्ति पर्व' में चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग किया है।दलितों को हर कहीं उपहास ही मिलता है।समानता का पाठ सिखाने की जिम्मेदारी उठाने वाले अध्यापक भी इसमें पीछे नहीं है।नये स्कूल में सुमित को अपने अध्यापक और सहपाठियों से परिहास झेलना पडा।इस के बारे में सुमित से सुनकर बंसी मानसिक अंर्दद्वन्द्व से

ग्रस्त हो गया।यह उसे पूरी तरह कचूमर कर डाला।" वह स्वयं से ही सवाल करता,उन्हें क्या अधिकार है हमारे जख्मों को कुरेदने का।हम कोई भीख माँगने तो नहीं जाते उनके घरों में।उलटे उन्हीं ही जाति के लोग स्वयं लाल-पीले कपडे पहन कर घर घर जाकर भीख माँगते फिरते हैं। एक दो-रात तो वह सो भी नहीं सका था।रात में कुछ न कुछ बड़बड़ा उठता।"[81]

'उधर के लोग' का सुशील दलित होकर भी दूसरे दलितों पर विश्वास नहीं करता वह हमेशा कहता रहता था कि दलित जाति के लोग भी अपनी जाति केलिए ही काम कर रहे है ।दूसरी जाति की सहायता करने केलिए कभी तैयार नहीं होते।लेकिन उसे अपने शहर में उपायुक्त के पद पर प्रतिनियुक्ति एक जाटव काबिनट मंत्री के कारण मिला था।यह घटना उसकी धारणा को पूरी तरह बदल दिया।सुशील देश की सर्वोच्य सेवा में रहकर पेशेवर कुशलता दिखाता रहा।उसने अपने आवेगों और आवेश को नियंत्रित करना भी सीख लिया।पन्ना इस पर विचार करते हुए कहते है कि "यह यात्रा है सुशील।हम सब को अलग अलग और अकेले ही इसे तय करना होता है।हम सब अलग अलग पडाव पर हो सकते हैं।अलग अलग यात्रा पर नहीं।यह जीवन सिर्फ सत्ता संघर्ष है।"[82]

'थमेगा नहीं विद्रोह' में दरियावचावली से कहानी के सूत्र मिलने केलिए आया था।लेकिन चावली की अपनी कहानी से जितना आगे बढता गया उतना ही माँ के पवित्र रिश्ते के सूत्र में बाँधता चला गया। "मन ही मन मैं एक प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सारे अंदेशे गलत साबित हों और चावली की कथा में रहस्य की पर्तें चाहे जितनी हों,प्रेम और अवैध प्रेम ब उसके चाहे जितने हों,उसका बाबा चाहे एक और ब्याह करके फिर से दुखी हो जाए लेकिन चावली का जीवन हँसता खिलखिलाता ही लिखने को मिले।लेकिन अपने प्रिय भागो के मामले में,मैं अपनी की गयी प्रार्थना

को निरस्त और विफल होते देख चुका हूँ,इसलिए मुझे कुछ आशा विशेष नहीं है लेकिन कहते है न कि जब तक सांस है तब तक आस।"[83]

5.2.6. आत्मकथात्मक शैली

जब कोई कथा मैं,को केंद्र में रखकर होता है तब उसकी शैली को आत्मकथात्मक शैली कह सकती है।इस शैली के प्रयोग करते समय रचनाकार समाज सापेक्ष समस्याओं को आत्म से जोडकर देखता है।वह स्वयं को कथा के केंद्र में रखता है।कभी कथा नायक कभी सहनायक कभी दोनों रूपों में घटना क्रम को प्रस्तुत करता है।

'थमेगा नहीं विद्रोह' और 'डंक' की शैली आत्मकथात्मक है।'थमेगा नहीं विद्रोह' एक आँचलिक उपन्यास है।इसमें दादरी गाँव घटित होनेवाली कहानियाँ दरियाव नामक व्यक्ति के माध्यम से कहा है।पूरी कथा में छाए हुए दरियाव असल में उपन्यासकार ही प्रतीत होता है।" मैं उसे भागो ही पुकारता था।दीदी बहन इत्यादि पुकारने का रिवाज़ इन दिनों गाँवों में न था बहुत हुआ तो बीबी और उम्र,कोई भी हो सीधे नाम से ही पुकारा जाता था।उसे मैं बीबी भोगो भी न पुकारा था।" [84]

'डंक' पर आत्मकथा शैली पूरी तरह हावी है।'डंक' उपन्यास का नायक विराट स्वयं लेखक ही है ।उपन्यास की शुरुआत ही मैं शैली से हुआ है ।" मैं(विराट)अपनी प्रेमिका संध्या के साथ भ्रमण पर निकला हूँ। बिलकुल उसी तरह जैसे विदेशी अपनी अपनी प्रेमिकाओं के साथ भारत भ्रमण पर आते हैं।" [85] अंत तक पहँचते पहूँचते उपन्यास पूरी तरह आत्मकथा बन जाती है।

'सुअरदान' में भी कभी कभी ऐसा लगताहै कि इस में पात्र ही नहीं है। सब कहीं लेखक ही लेखक है ।इस उपन्यास में दलित उद्दार के साथ ही साथ सवर्ण के

मानसिक परिवर्तन पर जोर दिया है ।उपन्यास के अंत में पूजारी दया शंकर गोदान का विरोध करते हुए सुअर दान करता है।यहाँ पूजारी अदृश्य दिखाई देता है।ऐसा लगता है कि खुद उपन्यासकार ही हमारे सामने खडा है।

5.3. निष्कर्ष

शिल्प सतत अभ्यास का फल है। दलित उपन्यासों की संख्या बहुत कम है।दो दशकों की दलित उपन्यासों की विकास परंपरा में शुरुआत के कुछ उपन्यासों में भारतेंदु युग के रचनाकारों के समान सपाट बयानी मिलती है। फिर भी इसकी कथा वायवी नहीं है। ये जीवन के सत्य करीब हैं। इनमें दलित व्यक्ति के जीवन को सुंदर बनाने की वकालत की है।

दलित उपन्यासों की भाषा सरल और सहज है। संस्कृत,हिंदी उर्दू को शब्द अपने तत्सम और तद्भव रूप में मिलते है। कहावतों, मुहावरों, लोकगीत, लोक कथाओं लोक शब्दों तथा परिनिष्ठित भाषा के लोकोच्चरित बिगडे रूप आदि ने मिलकर दलित उपन्यास की भाषा का निर्माण किया है।

दलित उपन्यास का सौंदर्य शास्त्र परंपरागत हिंदी उपन्यास के सौंदर्यशास्त्र से पूर्णतया भिन्न है। आलोचकों और पाठकों को इसे समझने केलिए परंपरागत दृष्टि बदलनी होगी। इसमें शब्दों के चमत्कार नहीं है। इन उपन्यासों में हाशियेकृतों के जीवन को सुंदर बनाने केलिए संघर्षों की चमक है। इसकी खोज परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के सिद्धान्तों,पुराने प्रतिमानों और सामंती मूल्यों के अनुसार नहीं हो सकती ।

दलित लेखकों द्वारा लिखे गये उपन्यास मनोरंजन या किसी दृश्य को देखकर हुई मानसिक कचोट से उत्पन्न साहित्य सृष्टि नहीं है। साहित्यिक कलात्मकता और

अलंकरण की अपेक्षा जीवन का कटु यथार्थ है। कुछ गरीब तिरस्कृत लोगों की वेदना की, उससे उत्पन्न मुक्ति की चटपटाहट की कहानी है। इसलिए इसके शिल्प में साहित्य सौंदर्य का मन को विभोर करनेवाली कोई प्रवृत्ति नहीं मिलती। इसकी भाषा मन को कुरेदती है और दृश्यों व भावनाओं को बिना लाग लपेट के पाठकों के सामने रख देती है। पुराने घिसे पिटे मानदंडों को तोडकर नये मानदंडों को अपनाया। संस्कृत या पाश्चात्य काव्यशास्त्र से उधार ली गयी कुछ भी इसमें नहीं है जो कुछ है वह इनका अपना है।

हिंदी दलित उपन्यासों की भाषा असाधारण रूप से समृद्ध है। उसमें अभिव्यक्ति के ढंग,रंग,रंगीली संपदा से मुख्यधारा से कहीं अधिक संपन्न। इसमें दलित जीवन के गरीबी, संत्रास, उत्पीडन, आत्मसम्मान को नोचनेवाली घटनाओं को व्यक्त करने वाली भाषा के साथ,लोक साहित्य की भाषा और आभिजात से मुक्त साहित्य की शैली भी मिलती है। मानव को मानव द्वारा नोचने की पूरी छूट देनेवाली व्यवस्था को तोड़ कर नये सवेरे के निर्माण केलिए प्रयत्नरत एक समाज का मन भी इसकी भाषा वहन कर रही है। ऐसे अवसर पर उपन्यास की भाषा सात्विक रूप ग्रहण करके शांत हो जाती है। सामाजिक विडंबना को व्यक्त करते समय आक्रात्मक हुई भाषा उपन्यासों से गायब हो जाती है।

संदर्भ सूची

1.डॉ.रश्मी चौधरी	हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ	पृ 199
2.डॉ.श्योराज सिंह बेचैन और देवेन्द्र चौबे	चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य	पृ 83
3. डॉ.श्योराज सिंह बेचैन	सामाजिक न्याय और दलित साहित्य	पृ 40
4.हरपालसिंह आरूष	दलित साहित्य की भूमिका	पृ 76
5. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 58
6. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 33
7.रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 40
8. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 28
9. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 93
10. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 39
11. रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 115
12. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 8
13. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 26
14. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 202
15. मोहनदास नैमिशराय	ज़ख्म हमारे	पृ 11
16. मोहनदास नैमिशराय	ज़ख्म हमारे	पृ 61
17. कावेरी	मिस रमिया	पृ 24
18. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 42
19.सुशीला टाकभौरे	नीला आकाश	पृ 20

20. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 127
21. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 19
22. रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 96
23. रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 90
24. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 31
25. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 90
26. कावेरी	मिस रमिया	पृ 98
27. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 26
28. कावेरी	मिस रमिया	पृ 21
29. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 100
30. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 113
31. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 43
32. कावेरी	मिस रमिया	पृ 78
33. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 70
34. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 55
35. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 216
36. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 189
37. सुशीला टाकभौरे	नीला आकाश	पृ 98
38. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 40
39. जयप्रकाश	कर्दम छप्पर	पृ 35
40. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 56
41. कावेरी	मिस रमिया	पृ 81

42. रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 84
43. डॉ.एन .सिंह	दलित साहित्य के प्रेतिमान	पृ 263
44. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 206
45. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 30
46. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 91
47. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 198
48. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 96
49. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 189
50. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 90
51. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 11
52. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 127
53. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 56
54. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 102
55. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 20
56. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 129
57. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 75
58. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 44
59. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 76
60. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 116
61. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 33
62. कावेरी	मिस रमिया	पृ 33
63. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 126

64. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 66
65. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 43
66. सत्यप्रकाश	जस तस भई सवेर	पृ 102
67. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 108
68. सुशीला टाकभौरे	तुम्हें बदलना ही होगा	पृ 56
69. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 77
70. सुशीला टाकभौरे	नीला आकाश	पृ 9
71. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 24
72. रूपनारायण सोनकर	सुअरदान	पृ 68
73. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 96
74. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 89
75. सुशीला टाकभौरे	नीला आकाश	पृ 24
76. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 75
77. सुशीला टाकभौरे	तुम्हें बदलना ही होगा	पृ 49
78. जयप्रकाश कर्दम	छप्पर	पृ 30
79. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 126
80.. मोहनदास नैमिशराय	आज बाज़ार बंद है	पृ 35
81. मोहनदास नैमिशराय	मुक्ति पर्व	पृ 66
82.अजय नावरिया	उधर के लोग	पृ 74
83. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 197
84. उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह	पृ 99
85. रूपनारायण सोनकर	डंक	पृ 9

छठा अध्याय

उपसंहार

साहित्य और समाज परस्पराश्रित है। इक्कीसवीं सदी में साहित्य में नयी नयी प्रवृत्तियों का आवर्भाव हुआ नारी साहित्य ,दलितसाहित्य ,पारिस्थितिक साहित्य आदिवासी साहित्य आदि।इसमें दलित साहित्य एक बडे मानव समूह के संघर्ष की कहानी है।

जाति,वर्ग और लिंग भेद का विचार भारत मानस का पीछा नहीं छोडता। दलित,नारी और आदिवासी आज भी हाशिए पर पडे हुए हैं। शिक्षित सवर्ण भी प्रत्यक्ष रूप में न सही अंदर ही अंदर जाति के पोषक हैं।दलितों की सबसे बडी समस्या वर्ण और जाति की है।आर्थिक समस्या उन्हें है लेकिन वह इतनी गंभीर नहीं जितनी जाति है।दलितों की सारी समस्याओं का नींव जाति है।जब इसकी जड़ हिलेगी तब सभी समस्याओं का हल खुद ब खुद हो जाएगा।

नारी अब पढ-लिखकर पुरुषों के समान सभी क्षेत्रो में काम कर रही है।संविधान और राजनीति की दृष्टि से नारी नागरिक है ,लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वह अब भी भोग्या है।आदिवासी लोग भारत की मूल संस्कृति के वाहक होते हुए भी असभ्य हैं। भारत में औपनिवेशिक संस्कृति की नींव डालनेवाले आर्यों ने हाशियेकृतों के मन में यह धारणा जडा दी कि आर्यों की पुरुष वर्चस्व संस्कृति ही श्रेष्ठ संस्कृति है। उनके द्वारा बनाई गयी जाति और नारी भोग संस्कृति भारत का शाप बन गयी है। इनके हाशियेकरण के पीछे एक लंबी ऐतिहासिक परंपरा है।हाशियेकरण के कारण वर्तमान से ज्यादा इतिहास में हैं।समाज में अपनी अस्मिता की स्थापना केलिए हाशियेकृतों को सबसे पहले इन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जाननी चाहिए।हाशियेकरण का नाम और निशान मिटाने केलिए इसकी मूल की पहचान हर एक हाशियेकृत को होना अनिवार्य है।

भारत की आबादी में एक बडा भाग हमेशा तिरस्कृत और बहिष्कृत रहा है।दलित ,नारी और आदिवासी भारतीय समाज में ऐतिहासिक काल से लेकर बहिष्कृत रहा है।हाशियेकरण की प्रवृत्ति संसार में सब कहीं दिखाई दे रही है।लेकिन इसमें स्थायित्व नहीं है।परिस्थिति के अनुसार इसमें बदलाव आता है।लेकिन भारत में हाशियेकरण ऐसा स्थायित्व पा लिया कि इसे दूर करने की हर कोशिश नाकाम होती रही ।भारत में हाशियेकृत वर्ग तो बहुत हैं, जैसे दलित ,आदिवासी, हिजड़ा ,अल्पसंख्यक ,नारी आदि।लेकिन इसमें दलित नारी और आदिवासी का हाशियेकरण सदियों पहले हुआ था और आज भी इसमें बडा परिवर्तन नहीं आया है।ये ऐतिहासिक काल से भारत में राजनीतिक,धार्मिक और सास्कृतिक दृष्टि से हाशियेकृत हैं।

समाज में अपने आपको दूसरों के समान स्थापित करने की इच्छा अस्मिता कहलाती है।यह जब व्यक्ति के मन में जाग उठेगी तभी समाज में उसकी अपनी पहचान होगी।नहीं तो वे दूसरों के दिये हुए लेबिल पर ही पहचाने जाएँगे।नवजागरण के समय तक दलित ,नारी और दलितों की स्थिति ऐसी ही थी।नवजागरण से आयी शिक्षा और समाजिक हलचल से बहुत बडा परिवर्तन समाज में आया। हाशियेकृत वर्ग के लोग अपनी अस्मिता की रक्षा केलिए लगातार संघर्ष करते रहे।इक्कीसवीं सदी पूरी तरह इस संघर्ष से भरी पडी है।

हाशियेकृत वर्गों ने मनुवादी संस्कृति को अपने बहिष्करण के मूल कारण माना है।क्योंकि इसमें जितना स्थान जानवर को दिया जाता है उतना स्थान इन मानव समूह को नहीं दिया जाता।बुद्ध से लेकर अंबेडकर तक बहुत सारे प्रभावशाली लोग हाशियेकृतों के सामाजिक उद्धार केलिए काम करते रहे। बुद्ध ने दलितों के दुखों को दूर करने केलिए उनकेलिए नयी धार्मिक अवलंब दिया ,फुले ने उनकी शिक्षा केलिए सामाजिक क्रांति चलायी और अंबेडकर हाशियेकृतों की राजनीतिक पहचान

केलिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। यही काम दलित साहित्य अब आगे ले जा रहा है।

समाज में समुचित स्थान हासिल करने केलिए लडाई लडने से पहले हाशियेकृतों को अपनी अस्मिता की पहचान करनी चाहिए ,क्योंकि वे अब पूरी तरह आर्य संस्कृति के गुलाम बने हुए हैं।इससे मुक्त हुए बिना उनकी मुक्ति संभव नहीं है।सही अस्मिता बोध के बिना लक्ष्य से गुम राह हो जाएँगे।दूसरों के बहकावे में भटक जाएँगे।तब यह लडाई किसी दूसरे के कहने पर निकलनेवाली लडाई न होकर अस्मिता बोध से उगनेवाली लडाई होगी।तब एक अंबेडकर नहीं हज़ारों अंबेडकर जनम लेंगे।दूसरों द्वारा की गयी कोशिशें कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहूँचेंगी।मुक्ति की चाह जितना उत्पीडन सहनेवालों में होती है,उतनी कभी भी दिलानेवालों में नहीं होती।यही अंतर अंबेडकर और गाँधीजी के दलित मुक्ति आंदोलन को अलग करता है।दलित साहित्य और गैर दलित साहित्य का अंदर भी यही है।

दलित साहित्य नयी सोच और विचार का साहित्य है।विचार ही समाज में परिवर्तन लाते हैं।विचार में क्रांति लाने की ताकत है।इस शक्ति को अंबेडकर ने दलितों के हाथ में विरासत के रूप में दिया है।पिछले दो दशकों से दलित साहित्य नई ऊँचाईयों को छूता हुआ नई मंजिलों पर चढ रहा है।

आधुनिक काल में मराठी दलित पैंथेर्स और उससे उद्भूत मराठी दलित साहित्य ने हिंदी दलित साहित्य को साहित्य बहुत अधिक प्रभावित किया।कविता,आत्मकथा,कहानी आदि विधाओं में सशक्त दलित रचनाएँ हुईं।हिंदी साहित्य के इतिहास में दलित साहित्य बीज रूप में विद्यमान था।कबीर और रैदास जैसे संतों की वाणी में दलित साहित्य का अंकुर दिखाई देता है।इसका आधुनिक रूप दलित कविताओं दिखायी देने लगा।हिंदी दलित आत्मकथाओं ने जनमानस और

अभिजात साहित्य को पूरी तरह हिलाकर रख दिया। अपने अपने पिंजरे और जूठन से शुरू होनेवाली दलित आत्मकथा दलित अस्मिता बोध के सशक्त परिचायक हैं।कहानियाँ दलित जीवन से जुडी छोटे से छोटे पहलुओं को भी सूक्षम ढंग से अभिव्यक्त करती हैं ।जीवनी शुरुआती दशा में है।इसमें रचनाएँ बहुत ही कम हैं। दलित आलोचना एक नये सौंदर्य सिद्धान्त को स्थापित करने में सफल हुई है।धर्मवीर ,कँवल भारतीय जैसे रचनाकार दलित साहित्य केलिए विशेष उपलब्धियाँ हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी दलित उपन्यास अंकुरित हुआ ।इनमें दलितों की अस्मिता का पहला दौर दिखाई देता है।इसमें दलितों के पिछडेपन के कारणों पर विचार किया है और उनसे बचने की राहों की खोज है।इसमें दलितों में व्याप्त नशेबाज़ी,आपस में झगडा करने की प्रवृत्ति,अशिक्षा ,अपने आपके पीछे की ओर धकेलने की प्रवृत्ति आदि पर व्यंग्य किया है।साथ ही साथ दलितों में रूढ हुई गुलाम मानसिकता पर भी प्रकाश डाला है।

दलितों को शोषित जीवन से निकालकर उनमें आत्मसम्मान , स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा करने की अदम्य इच्छा दलित उपन्यास का केन्द्रीय विषय है । यह शक्ति उपन्यास ने दलित मुक्ति आंदोलन से ग्रहण की है । दलित उपन्यासों में दलित उत्पीडन से ज़्यादा दलित अस्मिता को उपन्यास का केंद्र बनाया है । सभी हिंदी दलित उपन्यास अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित है । दलित अस्मिता की तलाश केलिए अंबेडकर दर्शन को ही दलित उपन्याकारों ने अपनाया है।दलितों की पीडा को उकेरना इनका लक्ष्य नहीं है। इसलिए अन्य दलित रचनाओं में मिलनेवाला आक्रोश दलित उपन्यासों में कम मिलता । इसका उद्देश्य इससे कुछ आगे है । यह दलितों के स्वाभिमान को जगाना चाहता है और आगे आने का रास्ता दिखाता है

।समाज दूसरे नागरिकों को जो इज्जत मिल रहा है उसकी प्राप्ति केलिए दलित को क्या करना चाहिए इस पर विचार करते हैं।

शिक्षा प्राप्त करने के बाद दलितों को अपने में या अपने सुखी जीवन में ही सिर गडाए नहीं बैठता।ज्यादा ज्ञान प्राप्त करके दूसरे दलितों में भी अस्मिता बोध जगाता है।दलित जीवन की सबसे बडी समस्या आर्थिक समस्या है। शिक्षित होकर ऊँचे ओहदों में बैठनेवाले दलित सवर्णों के बीच जगह ढूँढने के बजाय अपने पर गर्व करना चाहिए।इसके लिए शिक्षा से प्राप्त इतिहास बोध की जरूरत है।दलितों को अपनी परंपरा के इतिहास की सही पहचान मिल जाएगा तो उनमें अस्मिता के तत्व अपने आप ही समा जाएँगे।स्कूली शिक्षा के साथ उन्हें अपना होने की सीख मिलनी चाहिए।तभी हाशियेकृतों में जमी हीनता बोध मिटेंगे।उनके मन और मस्तिष्क पर आर्यों की श्रेष्ठता का भूत छाया हुआ है।दलितों को अपनी संस्कृति से मेल-मिलाप करने का मौका नहीं दिया ।दलितों को बचपन से ही आर्य संस्कृति की कहानियाँ ही सिखाते हैं।बचपन से ही उसके मन में यह बोध जगाते ही आर्य जो हैं वही श्रेष्ठ हैं।हम उसकी निचली कडी तो बनना भी पुण्य की बात है।सामाजिक,शैक्षिक और राजनीतिक माहौल से दलितों को यही शिक्षा मिल रही है।जो उसे दलित बनाये रखने के षड्यंत्र की पहली कडी है।दलितों को इतिहास हो या पुराण ,सब को पढकर समझकर ही बच्चों को सिखाना चाहिए।असल में ये ग्रंन्थ औपनिवेशिक आर्यों की जडें भारत में जमाने केलिए बनाये गये ग्रंथ हैं।जब तक इसका अंधानुकरण करता रहेगा तब तक दलितों और नारियों की मुक्ति संभव नहीं है।

सुअरदान में अंतर्जातीय सहयोग द्वारा आर्थिक सामाजिक ,शैक्षिक और संस्कृति के मानव विरोधी तत्वों से ऊपर उठने की राहें प्रस्तुत की है। इसमें सोनकर

की दलित चेतना के साथ उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण भी है।भारत की मूल भूत समस्याओं पर विचार करके उसके निवारण के उपाय भी प्रस्तुत किये हैं।

सदियों की दासता में लुप्त हो गए हाशियेकृतों की अस्मिता दोबारा प्राप्त करने केलिए वे अब अपने संगठित होकर काम कर रहे हैं।अकेले लडने पर इस दासता से मुक्ति नहीं मिलेगी।सभी उपन्यासों में संगठन की बात कहीं है। साथ ही साथ सवर्ण संभ्रांत हिंदू से पीडित मुसलमानों को भी मिलाकर दलितों की अस्मिता के साथ भारतीय समाज के अस्तित्व की भी तलाश करता है।भारतीय संस्कृति की बचाव केलिए दलितों और मुसलमानों को साथ देने का आह्वान रचनाकार करते हैं। दलितपन से मुक्ति पाने केलिए धर्मपरिवर्तन को अपनाने की बात नीला आकाश और ज़ख्म हमारे में कही है।साथ ही साथ इसकी निर्थकता भी व्यक्त की है ।लेकिन दलितों केलिए एक अलग धर्म की मांग का विचार भी इन उपन्यासों में मिलता है। भारतीय समाज में सवर्ण पुरुषों की हित केलिए लिखे गए हर एक नियमों के विरूद्ध दलित उपन्यासों में दलितों या नारी द्वारा संघर्ष दिखाया है।दलित समाज या नारी समाज पीढ़ी दर पीढ़ी लडता आ रहा है।अंतर बस इतना था कि पहले वे शिक्षित और संगठित नहीं थीं।सवर्ण उनकी इस कमज़ोरी का फायदा उठाते थे।

दलित उपन्यास वैयक्तिक नहीं सामाजिक हैं।इनके पात्र दलितों के बीच से आये हैं।दलित उद्धार केलिए ,दलित अस्मिता की तलाश केलिए वे सवर्णों की सहारा नहीं लेते।दलितों या हाशिएकृतों की सहारा बनकर हाशिएकृतों से ही लोग आगे आते हैं।दलित उपन्यास मनोरंजन केलिए नहीं लिखे हैं।इसलिए मानव मन को रमानेवाली कोमल भावनाएँ इसमें नहीं हैं।प्रेम का वर्णन भी इसमें अंतर्जातीय विवाह दिखाने केलिए किया है।वह भी उपन्यासकार यूँ ही कहकर जाते हैं,उसपर टिकते नहीं

हैं।संपूर्ण उपन्यास और उपन्यासकार अंबेडकर के महान व्यक्तित्व के सामने नतमस्तक होते दिखाई दे रहा है।

सारे उपन्यास शुद्ध अंबेडकरवादी हैं।डॉ. अंबेडकर भारत की असहिष्णुतापूर्वक हिंदू समाजिक व्यवस्था से बाहर निकलकर एक शोषण मुक्त समाज की कल्पना करते हैं। उन्होंने जिस समाज की कल्पना की है ,वह मात्र दलितों की नहीं है बल्कि भारतीयों की है।उन्हें ब्राहमणों से नहीं, ब्राहमणवादी मानसिकता से घृणा है।उनकी सहानुभूति दलित से ही नहीं ,हर जाति ,हर वर्ग के दमित शोषित लोग के प्रति है।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के बाद के हिंदी दलित उपन्यास अस्मिता की नयी राहों को प्रस्तुत करते हैं।शिक्षित ,निपुण और नौजवानों के निर्भीक कदमों को उजागर किया है।इक्कीसवीं सदी में हाशिएकृत बडे पैमाने में शिक्षित होने लगे ।इसने उनके अस्मिता बोध को सुदृढ बनाया और उनके लक्ष्य को स्थिर।अन्याय और अत्याचार को देखकर तुरंत दखल करते हैं और उन्हें बडी कुशलता से सुलझाते हैं।उनसे हमेशा एक पोसिटीव एनर्जी बिखेरते हैं।यह अपनों को प्रेरणा देने के साथ दुश्मनों को भी दोस्त बना देता है।दलित और नारी को सचेत करके एक नया आकाश तैयार करने केलिए प्रयत्नरत हैं।भारत देश को संसार का तिलक बनाने केलिए औपनिवेशिक संस्कृति को छोडकर भारत की अपनी संस्कृति को बढावा देने केलिए ज़ोर दिया है।अपनी अंतरात्मा को जगाकर दूसरों को अपने सामने हार मानने केलिए मज़बूर करता है।

सवर्णों केलिए बनायी गयी समाजिक व्यवस्था में दलितों का स्थान सेवकों का है ।इसलिए उसे शिक्षा से दूर रखा है ताकि उन्हें सेवकों की कमी नहीं रहे।फिर इस व्यवस्था को धर्म से जोड दिया। शिक्षा का प्राचार प्रसार सिर्फ नई पीढी तक सीमित नहीं रखना चाहता। संपूर्ण परिवर्तन केलिए प्रौढ शिक्षा को भी प्रोत्साहन देता

है।समाज के समग्र विकास केलिए नौजवानों के साथ साथ बूढें भी शिक्षित होना चाहिए ।नहीं तो वे नई पीढी को पीछे की ओर खींचेगे।नई और पुरानी पीढी के विकास से समाज का विकास तेज़ गति से हो जाएगा।

एक एक जाति को लिया जाय तो इसकी आबादी बहुत कम है।साथ ही साथ एक ही जाति के दलित अलग अलग प्रदेशों में अलग अलग नाम से जाना जाता है।इसलिए एक ही जाति के लोगों में भी संगठन नहीं है।इसलिए जातीयता से मुक्त होकर सभी दलितों को एकता के सूत्र में बाँधना है। सवर्णों से अलग रहकर नहीं सवर्णों के साथ रहकर वे अपनी अस्मिता ढूँढते हैं।इस तलाश के द्वारा वे सवर्णों के मन में परिवर्तन भी लाना चाहते हैं,और उन्हें यह सोचने केलिए मज़बूर करता है कि ये सर्वदा निकृष्ट या कमज़ोर नहीं हैं। इस मानसिक परिवर्तन ही दलितों या हाशिएकृतों की अस्मिता का बीगुल बजाएगी।दलित उपन्यास के नारी पात्र मोम की गुडिया नहीं है।वे लोहे से बनी ऐसी सजीव मूर्तियाँ हैं जिसमें नारी अस्मिता की विद्युत धारा प्रवाहित है।

दलित उपन्यास पलायनवादी नहीं हैं।यथास्थित को परिवर्तित करने केलिए शक्ति द्वारा संचलित संगठनात्मक संघर्ष के पक्षधर हैं।विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक सहयोग ,सद्भाव ,सहभागिता,सामंजस्य और समरसता द्वारा एक नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की कामना इसमें है।ब्राहमण के मुँह में जबर्दस्ती हड्डी रखकर इसका सोच नहीं बदला जा सकता। सदियों से कायम व्यवस्था को बदलने केलिए संयम का रास्ता अपनाना ही बेहत्तर है। इसके साथ साथ परिस्थियों को बदलने की कोशिश भी बनाये रखते हैं।

दलित उपन्यासों की भाषा , भाषा के पचडे में नहीं पडती।इसमें सरल भाषा का उपयोग ही किया है । दलित उपन्यास दलितों को अपने मन में रूढ हो गयी

धारणाओं को हटाकर अपनी ज़िन्दगी की ,शोषण की सच्चाई की जानकारी देने केलिए लिखे गये हैं। पीढियों से रूढ हो गयी धारणाओं को उखाड कर वहाँ नयी धारणाओं की स्थापना करना बहुत ही चुनौती पूर्ण कार्य है। दलितों में आधा प्रतिशत लोग ही शिक्षित हैं। कुछ कामचलाऊ शिक्षा से काम चला रहा है। इन लोगों में परंपरागत रीतिरिवाज और धारणाएँ गहराई में धँसी हुई हैं। इसमें अस्मिता का बोध सरल जनभाषा से ही जगाया जा सकता है।

दलित उपन्यासकार कथ्य के प्रति जागरूक हैं ।शिल्प के प्रति उन्हें कोई विशेष आग्रह नहीं है।उनकी भाषा आम जनता की भाषा है।पात्रों के अनुसार भाषा का संयोजन किया गया।शिक्षित दलित पात्रों और अशिक्षित पात्रों की भाषा में अंतर है। उपन्यासकारों को भाषा पर पूरा अधिकार है। चाहे वह बोलचाल की हो या साहित्यिक। भाषा में अनुभवों की प्रामाणिकता है।अस्मिता की स्थापना केलए इसमें नये ,प्रतीकों और बिंबों की सृष्टि की। मिथकों की नयी व्याख्या की ।इसके अनुसार मुख्यधारा साहित्य से हटकर एक नयी प्रतीकात्मक ,बिंबात्मक और मिथकीय भाषा का प्रयोग किया गया। लाक्षणिकता और काव्यात्मकता में यह किसी भी साहित्य से कम नहीं है ।उनकी भाषा कई जगहों में मन की गहराई को छूकर आँखों की पलकों में चूमती है। कट्टर सनातनवादी को भी अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार करने केलिए मजबूर करेगी।

दलित उपन्यासों में मन के अतल और वितल में जाकर मानसिक व्यापारों से उपन्यास केलिए विषय इसमें ढूँढा नहीं है। क्योंकि उनके सामने भूख , उत्पीडन और अस्मिता की सबसे बडी समस्याएँ मुँह भाए खडी हैं। इसलिए उनकी रचना में इन दुखों का ही वर्णन और इससे मुक्ति पाकर मानव की तरह जीने की लालसा ही मिलेंगी। इसलिए इसका सौंदर्य जीवन को खोल कर प्रस्तुत करने में है। परंपरागत

मानवता विरोधी धारणाओं को बेरहमी से तोडने में इसका सौंदर्य निहित है । भावों और विचारों को व्यक्त करने केलिए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग किया है।लेकिन बिंबों और प्रतीकों में घुमाव फिराव नहीं है । अन्य विधाओं की तुलना में दलित उपन्यास की शुरुआत अभी अभी हुई है इसलिए रचनात्मकता की कमी और कच्चापन अखरता है।फिर भी थमेगा नहीं विद्रोह का शिल्प हिंदी दलित उपन्यास केलिए आशावादी महसूस होता है।इसका शिल्प लब्धप्रतिष्ठित उपन्यासों जैसा है।

अस्मिता की तलाश सभी उपन्यासों का मूल तत्व है। इन उपन्यासों में प्रमुख रूप से दलित अस्मिता की तलाश ही दिखाया है। दलितों को अस्मिता बोध शिक्षा के द्‍वारा ही मिल सकता है।सदियों से उनपर होनेवाले शोषण को समझने केलिए शिक्षित होना है।तभी भारत की संस्कृति की नींव मानने वाले ग्रन्थों को वह पढ़ सकेंगे, समझ सकेंगे।तभी सैकडों साल की सामाजिक ,सांस्कृतिक ,आर्थिक और राजनीतिक दासता की पहचान होगी और उसे इस्तेमाल करनेवाली राजनीति से बच निकलकर कर अपना अस्तित्व बना पाएँगे।

सभी दलित उपन्यासों में अस्मिता की तलाश के लिए कुछ बिंदुओं पर विचार किया है।हाशियेकृतों को अपने के ऊपर हो रहे उत्पीडन की जानकारी होनी चाहिए।आज की ही नहीं, अतीत में व्यतीत बातों की भी जानकारी होनी चाहिए।दलितों पर जहाँ भी अन्याय देखें दलितों को एक जुट होकर इसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए।दलितों को अपनी चुप्पी तोडनी चाहिए।अन्याय का विरोध पढे लिखे नौजवानों की ओर से आना चाहिए।नारी को भोग्या न मानकर एक व्यक्ति के रूप में मानना चाहिए।सवर्ण दलितों के मन में अपनी संस्कृति की जो धारणाएँ ठूँस दी थीं।उन्हें एक एक करके निकालकर इससे मुक्त होना चाहिए।

दलितों को हिंदू मंदिर में प्रवेश करने नहीं देता तो दलितों को उसमें प्रवेश करने केलिए हठ करने के बदले इससे यह सीख लेनी चाहिए कि जहाँ अपना सम्मान नहीं है उसका तिरस्कार करना है।मूल निवासियों की संस्कृति का अपना महत्व है।दलित संस्कृति जो भारत की मूल संस्कृति है ,जिससे बौद्ध धर्म जैसे अंतर्राष्ट्रीय धर्म की उत्पत्ति हुई है,अपनी विशेषता है।हिंदू धर्म के पीछे भागना छोडकर अपनी संस्कृति के आदर्श को पहचाने।दलित संस्कृति में ऐसे मूल्य और आदर्श हैं, जो कि एक नया रूप और नई संस्कृति को जन्म देने की क्षमता रखते हैं।

हिंदी दलित उपन्यास का मूल तत्व मानवता की स्थापना है। मानवता का आधार प्रेम है। हिंदू धर्म में मानवता का विस्तृत वर्णन है ।लेकिन यह मानवता जानवर और आर्य जातियों तक ही सीमित है।अनार्य जाति और नारी केलिए इसमें अमानवीय व्यवहार का विधान है। इसलिए वर्णव्यवस्था का विरोध करते हुए भी सवर्णों से भाईचारे के साथ रहने का संदेश देते हैं।वे समाज से जुडना चाहते हैं ,उसे तोडने वे नहीं चाहते।

ब्राहमणवाद का घोर विरोध करनेवाले इन उपन्यासों में एक आक्रामक तेवर कम ही मिलता ।इसके बजाय ब्राहमणों को धीरे से समझाने की शैली इसमें अपनायी गयी है।पूरे उपन्यासों में शान्त भाव से अनुनय- विनय से समझाने का भाव छाया हुआ है।वे विद्रोह करते हैं ।लेकिन यह आक्रात्मक नहीं होते। उनके विद्रोह में भी संयम है।दलित उपन्यासों का मूल मंत्र ही विद्रोह में संयम है।इसलिए इसमें सवर्णों के प्रति गाली गलौच नहीं है। जिन व्यवस्थाओं से उन्हें प्रहार मिला है उन्हें तोडने केलिए पहले अपने पावों को मजबूत करते हैं और उन परंपराओं को तोडने केलिए शब्दों से ज्यादा बुद्धि का इस्तेमाल करते हैं।अपने पैरों पर खडे होकर सकारात्मक

विद्रोह करने का संदेश देते हैं।इसलिए उपन्यासों में विद्रोह होकर भी वह कभी भी आक्रात्मक नहीं होते।

हाशियेकृतों की अस्मिता केलिए जागृति,शिक्षा,संगठन,संघर्ष,सत्चरित्र आत्मसम्मान ,स्वावलंबन, शोषणों का विरोध, परंपरा में चुप्पी षड्यंत्र को पहचानकर विरोध करना अंतर्जातीय झगडा समाप्त करना ,अंतर्जातीय विवाह का प्रोत्साहन करना ,रिवाजों को छोडना, धार्मिक पाखंडों को तोडना,महाकाव्यों में दलितों केलिए प्रयुक्त मिथकों को सत्य की कसौटी पर कसकर उसकी व्याख्या नये सिरे से करना,जाति से मुक्त होना, सत्चरित का समर्थन, मानवता, अंधविश्वास का विरोध,सवर्ण राजनीति का पर्दाफाश, आरक्षण का समर्थन, निर्धनता के कुचक्र को तोडना ,अंबेडकर विचारधारा का प्रचार,सवर्ण दंभ पर प्रहार, अत्याचार का विरोध,मौन विद्रोह ,पुश्तैनी धंधों का विरोध, नई सोच, गांधीवाद पर प्रहार , पुनर्जन्म का विरोध ,एकल विरोध ,धर्मांतरण ,बेगारी का विरोध, पुरुषवर्चस्ववाद पर प्रहार ,धार्मिक व्यवस्था का विरोध,नारी शोषण का विरोध, निर्भीकता का साथ होना, वेश्यावृत्ति छोडना दासता का विरोध, ऊँच नीच का विरोध,कानून की जानकारी प्राप्त करना, सवर्ण मानसिकता में परिवर्तन, धर्मांधता से मुक्ति, तिरस्कारों का तिरस्कार, गुलामी का विरोध ,रीति रिवाज का विरोध, आरक्षण का अस्वीकार, दलित मुसलमान एकता- ,अंबेडकर के प्रति श्रद्धा,नयी जाति गावोन्मुखता, सामाजिक तत्वों की पुनर्व्याख्या, वामपंथी पर प्रहार,सवर्ण राजनीति पर प्रहार ,लक्ष्य केलिए कठिन परिश्रम ,हिंदुत्व बोध से मुक्ति, परिवार नियोजन,काम को जाति से मुक्त करना, दलित समाज सुधारकों के प्रति श्रद्धा, दलित नाम पर गर्व महसूस करना ,कामयाब दलितों का सहारा, नारी सबलीकरण, योग्यताओं को बढावा देना, नारी अस्मिता का नया रास्ता, पुरुष मानसिकता का विरोध,बालाश्रम का विरोध ,निकम्मे दलित युवाओं का सक्रिय बनना ,अधिकारियों से अपनी जरूरतों की माँग करना, बौद्ध धर्म की स्वीकृति आदि

अनेक राहें दलित उपन्यासकार खोज निकालते हैं।इन राहों से दलित या हाशिएकृतों की अस्मिता के अनेक रूप दलित उपन्यासों में दिये हैं।

भारतीय संस्कृति प्रत्यक्ष रूपमें सामाजिक ,सांस्कृतिक ,धार्मिक और राजनीतिक रूप में कह रही है कि दलित ,आदिवासी और नारी हिंदू समाज से बिलकुल अलग हैं।ऐसे में दलितों का कर्तव्य है कि वह अपना पहचान खुद दे। दलित उपन्यास यह पहचान देने के साथ साथ इस चेतना को हाशियेकृतों की आत्मा तक ले जाते हैं।साहित्य संस्कृति की अस्मिता का परिचायक है।इसलिए दलित उपन्यासकार उपन्यास द्वारा हाशियेकृतवर्गों की आत्मा में चेतना का संचार कर रहे हैं और उपदेश दे रहे हैं कि शिक्षित हो,जागृत हो ,संगठित हो और संघर्ष करो ,पर संयम के साथ।

संदर्भ ग्रंथ - सूची

आधार ग्रन्थ

1. अजय नावरिया - उधर के लोग - राजकमल प्रकाशन ,नयीदिल्ली 110002 - 2008
2. उमराव सिंह जाटव - थमेगा नहीं विद्रोह - -वाणी प्रकाशननई दिल्ली 110002 - 2008
3. कावेरी - मिस रमिया आकाश पब्लिशर्सएंड डिस्ट्रीब्यूटर्स , उत्तरांचल कालनी,लोनी बोर्डर, गाजियाबाद - 201102 2007
4. छप्पर - जयप्रकाश कर्दम -राहुल प्रकाशन,शाहदरा ,दिल्ली 110032 -1993
5. प्रेम कपाडिया - मिट्टी की सौगंध - भारतीय सामाजिक संस्थान , नईदिल्ली - 1995
6. मोहनदास नैमिशराय - आज बाजार बंद है -वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली 110002 - 2004
7. मोहनदास नैमिशराय - ज़ख्म हमारे वाणी ,प्रकाशननई दिल्ली 110002 2011
8. मोहनदास नैमिशराय - मुक्ति पर्व –अनुराग प्रकाशन,दरिया गंज ,नई दिल्ली 110002 - 2011
9. रूपनारायण सोनकर - सुअरदान - संयक प्रकाशन, नईदिल्ली 110063 - 2010
10. रूपनारायण सोनकर - डंक - अनिरुद्ध बुक्स ,दिल्ली 110033 - 2011

11. सत्यप्रकाश - जस- तस भई सवेर - कामना प्रकाशन ,नईदिल्ली 110093 - 1998

12. सुशीला टाकभौरे - नीला आकाश - विश्वभारती प्रकाशन,धनवटे चेम्बर्स,नागपुर 12 - 2013

13. सुशीला टाकभौरे - तुम्हें बदलना ही होगा - सामयिक प्रकाशन नईदिल्ली 110002 - 2015

समीक्षा - ग्रंथ

1. अभय कुमार दूबे - आधुनिकता के आईने में दलित-- वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली 110 002 - 2002
2. एस एल दोषी और पी.सी जैन - भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन , , नाशनल पब्लिशिंग हाउस .जयपुर दिल्ली110002
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटड नई दिल्ली 110002 2001
4. कँवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका - अमन प्रकाशन ,कानपुर-12 -2013
5. कालीचरण स्नेही - हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता - आराधना ब्रदेर्स ,कानपुर 208 006 - 2004
6. गेल ओमवेट - दलित दृष्टी - वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली 110 002 - 2011
7. चंद्रबली त्रिपाठी - भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास.. - दुर्गावती प्रकाशन -रामेश्वर निकेतन, गोरखपुर उ.पी.273001
8. डॉ.एन.जी दोडगौडर और डॉ. डि. बी पांड्रे (संपादक) -आधुनिक हंदी गद्य साहित्य में दलित संवेदना अमन प्रकाशन 2014

9. डॉ. एन. सिंह - दलित साहित्य के प्रतिमान - वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली 110 002 - 2012

10. डॉ.दोड्डा शेष बाबू - दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य -क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स ,कानपुर 208 016 -

11. डॉ. नामदेव - आलोचना की तीसरी परंपरा और जयप्रकाश कर्दम - अमन प्रकाशन, कानपुर, 208 012 - 2014

12. डॉ.पी .ए.रघुराम - समकालीन हिंदी कविता और अस्मिता-जवाहर पुस्तकालय, 2012

13. डॉ. पुरुषोत्त्म सत्य प्रेमी (संपादक - दलित साहित्य सृजन के संदर्भ .- कामनी प्रकाशन दिल्ली110093 1999 पवन प्रिंटिग

14. डॉ. पुरुषोत्त्म सत्य प्रेमी (संपादक) - हिंदी दलित साहित्य रचना और विचार -अतिशप्रकाशन ,दिल्ली -1100 64 - 2001

15. डॉ. प्रमोद कोवप्रत (संपादक) - हिंदी दलित साहित्य: एक मूल्यांकन ,वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , 2016

16. डॉ. प्रमोद कोवप्रत (संपादक) - हिंदी दलित साहित्य का विकास , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , 2016

17. डॉ. रश्मी चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य में दलित चेतना अवधारण एवं स्वरूप , सरस्वती प्रकाशन ,40-49 बौद्ध नगर नौबस्ता , कानपुर 21, 2014

18. डॉ.शौराज सिंह बेचैन और देवेन्द्र चौबे - चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य

19. डॉ.श्योराज सिंह बेचैन (संपादक) - सामाजिक न्याय और दलित साहित्य -. वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली 110 002 2014

20. डॉ.शरण कुमार लिंबाले - दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली 11002,-- 2000,2001

21. डॉ.सरजू प्रसाद मिश्र - हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ- अमनप्रकाशन ,रामबाग ,कानपुर12 उ.प्र , 2011

22. नारायण राठौड़ - सूरजपाल सिंह चौहान की कहानियों में दलित जीवन - जवाहर पुस्तकालय,मथुरा ,281001

23. मोहन सिंह - डॉ. भीमराव अंबेडकर व्यक्तित्व के कुछ पहलू - लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद -1 , 2001

24. रमणिका गुप्ता (संपादक) - आदिवासी कौन -- राधाकृषण नयी दिल्ली-110 017, 2008

25. रमणिका गुप्ता - दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सारोकार –समीक्षा प्रकाशन दिल्ली 110031 , 2001

26. राजकिशोर (संपादक) - हरिजन से दलित - वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली -110002 संस्करण2004

27. राजू .जी - उपन्यासकार सत्यप्रकाश के उपन्यासों में दलित समस्याएँ - जवाहर पुस्तकालय,मथुरा ,281001-2009

28. साक्षान्त मस्के - परंपरागत वर्ण व्यवस्था और दलित साहित्य - वाणी प्रकाशन दरियगंज नई दिल्ली 110 002 2009

29. हरपाल सिंह आरूष . - दलित साहित्य की भूमिका - जवाहर पुस्तकालय,मथुरा ,281001 - 2009

पत्रिकाएँ

1. आजकल - जनवरी 1991

2. आजकल - अप्रैल 1991

3. " - मई 1991

4. नागफणी - नवम्बर जनवरी - 2013

5. " - फरवरी अप्रैल - 2014

6. साहित्य अमृत - जून 2007

7. हंस - सितंबर - 1991

8. नया ज्ञानोदय - जुलाई - 2011